प्रधान संपादक

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए० (लंदन)

शिक्षा-प्रसार अफ़सर, संयुक्त प्रांत

संयुक्त संपादक

श्री० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०
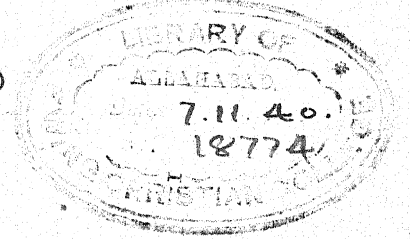
सहयोगी विशेष संपादक

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० (लंदन) रीडर, इतिहास, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०), एफ़० आर० ए० एस०, रीडर, गणित, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

श्री० वीरेश्वर सेन, एम० ए०, हेडमास्टर, गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्टस् एण्ड क्राफ़्टस्, लखनऊ।

डा० डी० एन० मजूमदार, एम० ए०, पी-एच० डी० (कैंटब), पी० आर० एस०, एफ़० आर० ए० आई०, लेक्चरर, मानव-विज्ञान, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

डा० शिवकण्ठ पाण्डेय, एम० एस-सी०, डी० एस-सी०, लेक्चरर, वनस्पति-विज्ञान, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

श्री० श्रीचरण वर्मा, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०, लेक्चरर, जीव-विज्ञान, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

श्री० वासुदेवशरण अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, क्यूरेटर, प्राविंशियल म्यूज़ियम ऑफ़ आर्कियालाजी, लखनऊ।

डा० सत्यनारायण शास्त्री, पी-एच० डी० (हाइडलबर्ग)।

श्री सीतलाप्रसाद सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०, लेक्चरर, अर्थशास्त्र, लखनऊ विश्वविद्यालय।

श्री० मदनगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, लेक्चरर, रसायन विज्ञान, कान्यकुब्ज इंटरमीडिएट कालेज, लखनऊ।

श्री० कुँवर सेन, एम० ए० (कैंटब), बार-एटला जूडीशियल मिनिस्टर, जोधपुर स्टेट; भूतपूर्व प्रिंसिपल लॉ कालेज, लाहौर।

डा० इबादुर रहमान ख़ाँ, पी-एच० डी० (लंदन), प्रिंसिपल, बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद; भूतपूर्व अध्यक्ष, भूगोल-विभाग, अलीगढ़-विश्वविद्यालय।

श्री० भैरवनाथ झा, बी० एस-सी०, बी० एड० (एडिन०) इंसपैक्टर ऑफ़ स्कूल्स, यू० पी०।

डा० विद्यासागर दुबे, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (लंदन), डी० आई० सी०, प्रोफ़ेसर, आर्थिक भू विज्ञान, तथा अध्यक्ष, ग्लास-टेकनालाजी डिपार्टमेंट, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

श्री० ब्रजमोहन तिवारी, एम० ए०, एल० टी०, लेक्चरर, कान्यकुब्ज इंटरमीडिएट कालेज, लखनऊ

श्री० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी० एल-एल० बी०, लेक्चरर, क्रि० र० इंटरमीडिएट कालेज, मथुरा।

श्री० रामनारायण कपूर, बी० एस-सी०।

श्री० श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०।

श्री० सुरेन्द्रदेव बालुपुरी।

आदि, आदि।

संयोजक और प्रकाशक

श्री० राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव,

एजूकेशनल पब्लिशिङ्ग कंपनी लिमिटेड,

चारबाग़, लखनऊ,

इस अंक की विषय-सूची

विश्व की कहानी

पृथ्वी की कहानी

मनुष्य की कहानी

पं० भृगुराज भार्गव द्वारा अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स, चारबाग़, लखनऊ, में मुद्रित तथा एजूकेशनल पब्लिशिङ्ग कम्पनी लिमिटेड, चारबाग़, लखनऊ, के लिए प्रकाशित

वक्तव्य और निवेदन

मंगलमूर्त्ति भगवान् की कृपा से आज हम हिन्दी-संसार के सन्मुख 'हिन्दी विश्व-भारती' लेकर उपस्थित हो रहे हैं। इस आयोजन में हम कितने सफल हुए हैं—इसका निर्णय हम अपने कृपालु और मर्मज्ञ पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं। हम यहाँ पर केवल अपने उद्देश्यों और अभिलाषाओं के विषय में कुछ निवेदन करके संतोष कर लेंगे।

हिन्दी जिस गति से उन्नति कर रही है उसको देखकर आश्चर्य होता है। उसे किसी भी युग में अन्य भाषाओं के समान राज्य का आश्रय प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्युत् उसकी उन्नति में अनेक बाधाएँ होती गईं। फिर भी हिन्दी का आन्दोलन वेग और गति पकड़ता गया। उसका एकमात्र कारण यही है कि यह आन्दोलन वास्तव में जनता का आन्दोलन है और उसके लिए कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्तियों और विद्वानों ने त्याग और लगन के साथ सतत परिश्रम किया है। वे पुरस्कार की अपेक्षा जनता और साहित्य की सेवा में आनन्द और संतोष अनुभव करते रहे हैं। उन्हीं असंख्य ज्ञात और अज्ञात सेवकों के कारण आज हिन्दी इस अवस्था में पहुँच गई है कि उसका साहित्य ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं में उन्नति कर रहा है। वह प्रगतिशीलता में भारत की किसी भाषा से पीछे नहीं है।

प्राचीन साहित्य में तो उसका उच्च स्थान निश्चित ही है, आधुनिक कलात्मक साहित्य का भी उसमें बाहुल्य है। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हिन्दी का साहित्य एकांगी नहीं प्रत्युत् बहुमुखी है। यदि उसमें उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं तो साथ ही 'विज्ञान' और 'भूगोल' के समान वैज्ञानिक पत्र और 'ना० प्र० पत्रिका' के समान अन्वेषण-संबंधी पत्र भी हैं। हिन्दी-जनता की रुचि बहुत ही विस्तृत और सर्वतोमुखी है। आज हिन्दी-जनता की ज्ञान-पिपासा अतृप्त हो रही है। वह उन्नति के जिस मार्ग पर अग्रसर है उसके लिए उसे आत्मचिंतन से लेकर भौतिक विज्ञान के चमत्कार और प्रकृति के रहस्यों की जानकारी तक की आवश्यकता है। हिन्दी के सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे हिन्दी-जनता की इस सराहनीय रुचि और सदिच्छा की पूर्त्ति करें। यही नहीं, आज के संसार की आवश्यकताएँ इस प्रकार की हैं कि हमारे देशवासियों को आधुनिक संसार की गति-विधि से भली भाँति परिचित रहना चाहिए। उन्हें संसार के राष्ट्रों में अपना उचित स्थान प्राप्त करना और अपने स्थान की मर्यादा की रक्षा करनी है। इसके लिए उनके पास प्राचीन वैभव और अपने आत्मज्ञान की विभूति तो है ही, अब उन्हें केवल इस जड़वादी संसार के मानव-जनित विज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता है।

उसी अभाव की पूर्त्ति के लिए 'हिन्दी विश्व-भारती' का आयोजन किया गया है। यह उद्योग किया गया है कि हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् ही इस यज्ञ के होता बनें। वे ही हिन्दी जनता की रुचि और आवश्यकताओं से भली भाँति परिचित हैं। वे ही हमारी सुंदर और कोमल भाषा में अपने भावों को भली भाँति व्यक्त कर सकते हैं। हमें उन्हीं के अनुभव और विद्वत्ता का लाभ उठाना चाहिए। हमें इस बात का गर्व है कि हम अपने देश के इतने सम्माननीय विद्वानों का सहयोग प्राप्त कर सके हैं।

'हिन्दी विश्व-भारती' ज्ञान-विज्ञान का केवल कोश ही नहीं, यह आधुनिक ज्ञान का ऐसा भण्डार है जो हमारे देशवासियों के लिए हस्तामलक का काम करेगा। वह विद्यार्थियों ही के लिए नहीं, किंतु वयस्कों के काम की भी पुस्तक है। उससे उनका मानसिक मनोरंजन ही नहीं, किंतु उनकी ज्ञान-तृषा भी शांत होगी।

यह पहला भाग आपके सामने उपस्थित है। इससे आपको विदित होगा कि उसको सुन्दर और उपयोगी बनाने में कुछ उठा नहीं रखा गया। केवल चित्रों के संग्रह करने ही में प्रचुर धनराशि का व्यय करना पड़ा है। सुन्दर छपाई का विशेष प्रबंध किया गया है, और बहुत अच्छे काग़ज़ के लिए विशेष आयोजन किया गया है। सारांश, इसका वाह्य और अभ्यंतर—दोनो ही को—सुन्दर और श्रेष्ठ बनाने में हम प्रयत्नशील हैं, और सदैव बने रहेंगे। यह सब होते हुए भी इस देश की आर्थिक अवस्था को देखते हुए इसका मूल्य बहुत कम रक्खा गया है। इसके प्रकाशन के लिए जो लिमिटेड कम्पनी बनी है, उसका मुख्य उद्देश्य इस पुस्तक से लाभ उठाना नहीं, प्रत्युत् जनता के सामने एक आदर्श प्रकाशन रखना है।

हम हिन्दी-जनता के प्रति अपना कर्त्तव्य भरसक कर रहे हैं। हमें आशा ही नहीं किन्तु विश्वास भी है कि हमारे कृपालु पाठक और हिन्दी के शुभचिंतक तथा जनता में ज्ञान-प्रसार के इच्छुक महानुभाव भी इस प्रकाशन के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करके हिन्दी और जनता की सेवा करेंगे।

अंत में हमें उन सभी महानुभाव सज्जनों और संस्थाओं—विशेषकर अपने सहयोगी लेखकों, संपादकों, चित्रकारों, तथा फ़ोटो-चित्र आदि से सहायता करनेवाली भारतीय और विदेशी वैज्ञानिक समितियों, वेधशालाओं और व्यापारिक संस्थाओं—के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना है, जिनके अमूल्य सहयोग, सत्परामर्श और सहानुभूति के विना हमारे लिए इस आयोजन को सफल बनाना कठिन ही नहीं, असंभव होता।

लखनऊ
श्रावण, १९९६ वि०

श्रीनारायण चतुर्वेदी

हिन्दी विश्व-भारती—क्या और क्यों ?

अपनी इस प्रगति की यात्रा में हम मानव आज दिन उस स्थिति पर आ पहुँचे हैं, जहाँ से भविष्य की ओर पाँव बढ़ाने के पहले एक बार अपने आसपास की इस दुनिया और स्वयं अपने आप पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेना हमारे लिए नितान्त आवश्यक हो गया है।

हमें देख लेना है, कितना रास्ता हम पार कर चुके, इस समय हम किस परिस्थिति में हैं, और इस जगह से यह दुनिया हमें कैसी दिखाई दे रही है। हमारे लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है ; क्योंकि अब हम यह दिन पर दिन अनुभव करने लगे हैं कि देह और अवयव की तरह इस दुनिया से हमारा रक्त और मांस का संबंध है— इसकी ओर से मुँह चुराकर या इसके प्रति आँखें बन्द कर पल भर के लिए भी हम अपनी सभ्यता की इमारत को खड़ा नहीं रख सकते।

मुश्किल से कुछ हज़ार, या संभव है कुछ लाख, वर्ष अभी बीत पाये होंगे, जब सहसा अपने हमजोली दूसरे जीवधारियों को पीछे छोड़कर हम एक दिन अपनी इस पगडंडी पर चल पड़े थे। हमारे मन में इस अद्भुत दुनिया को जानने और समझने की एक अजीब उत्कंठा जग उठी थी, और भीतर ही भीतर कुछ प्रश्न हमारे मस्तिष्क में खलबली मचाने लगे थे। अपने वे आरंभ के प्रश्न तो किसी न किसी तरह हमने हल कर लिये। पर लाख कोशिश करने पर भी अपनी उस प्रबल ज्ञान की प्यास को हम न दबा पाये। ज्यों-ज्यों पुरानी गुत्थियाँ सुलझती गईं, नए-नए प्रश्न आ-आकर हमारे सामने जुटते गये। और आज भी, जब कि अपने पेचीदे यंत्रों से हमने इस दुनिया के रहस्य की एक झाँकी देख पाने में सफलता पा ली है, अपने इतिहास के प्रभातकाल की ही तरह ज्ञान की एक प्रकाश-रेखा के लिए हम ज्यों-के-त्यों अंधकार में हाथ फटफटाते हुए लगातार पुकार रहे हैं—"तमसो मा ज्योतिर्गमय" (इस अंधकार से हमें प्रकाश की ओर ले चल)।

लड़खड़ाते और ठोकरें खाते जब पहले-पहल हम जंगलों से बाहर निकले थे तब तो यह दुनिया हमारे लिए कोई बहुत बड़ी न थी। साथी-संगी कुछ जानवर, पानी से घिरी थोड़ी-सी धरती और सिर पर चमकते हुए चाँद, सूरज और जुगनू-जैसे कुछ हज़ार तारे—यही थी हमारी उन दिनों की दुनिया ! किन्तु पिछले दो-तीन हज़ार वर्षों की अवधि ही में हमने अपने औज़ारों और यंत्रों से मानो फैलाकर इस छोटी-सी दुनिया को कितनी लम्बी-चौड़ी बना लिया है ! और इसके साथ-ही-साथ स्वयं हमने भी जिस अद्भुत नवीन सृष्टि की रचना कर डाली है, वही क्या कम अचरज की वस्तु है ! चींटी से हाथी बनकर आज हम न सिर्फ़ संसार के विकास की धारा में बहते हुए आगे बढ़ रहे हैं, बल्कि अपनी सृजन-शक्ति द्वारा उसे गति देते हुए किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर मोड़ते भी जा रहे हैं। उस प्रेरक शक्ति का मूल क्या हमारा वह ज्ञान ही नहीं है जिसे हमने अपनी जिज्ञासा के फल के रूप में पाया है ?

युग-युग की कठोर साध और पराक्रम से उपार्जित यह अनमोल ज्ञान-राशि ही हमारी इस जीवन-संग्राम-यात्रा का एकमात्र संबल है। इसी पर हमारे वर्त्तमान या भावी जीवन का स्वरूप निर्भर है। भारत में तो आज दिन हमें इस संबल की सबसे अधिक आवश्यकता है; क्योंकि यहाँ इस समय हम एक महान् युगान्तर की घड़ियों में से गुज़र रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक और सांपत्तिक दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ भारत आज मुक्ति के लिए जीवन-मरण के घोर संग्राम में प्रवृत्त है। किन्तु क्या उसकी यह साध कभी पूरी हो पायगी यदि वह दासता के सबसे घोर रूप अविद्या और अज्ञानांधता के चंगुल से अपनी मुक्ति न कर पाया ? ज्ञान का यह प्राचीन रश्मिकेन्द्र आज निरक्षरता के घोर शाप से ग्रस्त है। उसके अस्त्र-शस्त्र कुंठित हो गये हैं—वे पुराने पड़ गये हैं—और ज़ंग ने उन्हें चाट खाया है। फिर भी मोहवश वह इन्हीं टूटे हथियारों को लेकर जीवित रहने की विडम्बना में फँसा हुआ है ! क्योंकर इस घोर मृत्युरूपी अविद्या-पाश से उसका छुटकारा हो ?

भारत ही के आर्षग्रंथों में वर्णित एक प्रसंग में इस प्रश्न का बड़ा महत्त्वपूर्ण उत्तर निहित है। कहते हैं, एक बार जब असुरों (या अविद्या की शक्तियों) के आतंक से विश्व की रक्षा करने का सामर्थ्य किसी में न रहा, तब

अंत में ज्ञान की अधिष्ठात्री वीणापाणि भारती (विद्या या ज्ञान की शक्ति) ने ही स्वयं रणभूमि में उतरकर संसार की रक्षा की थी। आज भी जब कि अपने ही पैदा किए हुए अपने मस्तिष्क के जालों के कारण हमारी दृष्टि धुँधली पड़ गई है और विचारों में एक अजीब संकीर्णता छा गई है; जब कि व्यक्तिगत स्वार्थपरता ही हमारा एकमात्र व्यवसाय हो गया है और उसके कारण यह दुनिया हमारे लिए दुःखदैन्य का आगार बन गई है; जब कि ज्ञान-विज्ञान का भी उपयोग मुख्यतया मानव द्वारा मानव के शोषण और हत्या के लिए ही किया जाने लगा है और एक दृष्टि से मानव-जाति फिर से बर्बरावस्था की ओर अग्रसर होती दिखाई देने लगी है—पारस्परिक संघर्ष और सांस्कृतिक पतन की इस घड़ी में हम सिवा उसी अविद्यानाशिनी ज्ञानमूर्त्ति भारती के किसका आह्वान करें ? हमारी यह जड़ता और अज्ञान ही तो हमारे इस समस्त दुःख-दैन्य और संघर्ष की जड़ है। इससे छुटकारा पा जाने पर क्या फिर इस बात को समझना हमें कठिन होगा कि सब मनुष्य समान हैं और सबके हित ही में प्रत्येक का सच्चा कल्याण है ?

यही है 'हिन्दी विश्व-भारती' की कहानी का प्रारंभ। 'हिन्दी विश्व-भारती' कोरा एक ग्रंथ ही नहीं, यह युग-परिवर्त्तन की घड़ियों में से गुज़र रहे हम भारतवासियों की अंध विचारों या कूपमण्डूकता से मुक्ति पाने के लिए जगी हुई एक नयी साध है। यह हमारे लिए मानव-जाति के संचित ज्ञान को अपनी ही भाषा में पाने का प्रयास ही नहीं, वरन् अपने मस्तिष्क में छाये हुए विचारसंकीर्णता के जालों को झाड़-बुहारकर एक नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने और आनेवाली पीढ़ी के लिए रास्ता साफ़ कर जाने की एक क्रांति का प्रतीक है।

अब हम कुएँ में मेढ़क बनकर नहीं रहने के। अनंत आकाश में चिनगारियों की तरह चमकते हुए चाँद, सूरज, और तारे; क्षण भर में उमड़-घुमड़कर सिर पर छा जानेवाले बादल और उनमें कौंधती हुई बिजली; बादलों से भी ऊँचे सिर उठाए हुए हिमान्वित गिरिशिखर और उछल-उछलकर उनसे होड़ करती हुई सागर की लहरें; पृथ्वी को एक अजायबघर-सा बनाये हुए अनगिनत जानवर और पेड़-पौधे, और इन सबसे कहीं अधिक निराला और आश्चर्यजनक बर्बरावस्था के युग से हवाई जहाज़ और कल-कारख़ानों के इस युग तक बढ़ा चला आ रहा स्वयं हमारा ही अद्भुत् जीता-जागता जुलूस, एवं मानव द्वारा चिरंतन सौंदर्य और अनंत की खोज, कला का विकास, और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के सफल प्रयास—ये सब आज अपना रहस्य खोलने को बरबस हमें अपनी ओर खींच रहे हैं। उनको जान लेने की प्रबल उत्कंठा हमारे मन में जग उठी है। किंतु इन सबका ज्ञान क्योंकर हमें सुलभ हो जब तक अपनी ही भाषा में, अपने ही विश्वसनीय पथ-प्रदर्शकों द्वारा और अपने ही वातावरण के अनुरूप और अनुकूल रूप में इनकी कहानी हमें पढ़ने को न मिल सके ?

'हिंन्दी विश्व-भारती' आज उसी मनचाहे रूप में विश्व, पृथ्वी, और मनुष्य की संपूर्ण कहानी हमारे सामने ला रही है।

—कृष्णवल्लभ द्विवेदी

विश्व की कहानी

अनन्त ब्रह्माण्ड की एक झलक

जब से मनुष्य को दूरदर्शक के रूप में मानो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है, एक के बाद एक नवीन क्षेत्र सृष्टि के सुदूर धुँधले क्षितिज से ऊपर उठते हुए उसके सामने फैलने लगे हैं, जिससे उसके मन पर अब इस बात की गहरी छाप जम गई है कि यह विश्व सचमुच ही अनंत है। ऊपर मृगशीर्ष (Orion) नक्षत्रमण्डल में दिखाई पड़नेवाली महान् नीहारिका का माउण्ट विल्सन के १०० इंच शीशेवाले दूरदर्शक से लिया गया एक चित्र है। नंगी आँखों से देखने पर यह नीहारिका शायद एक धुँधले बिन्दुमात्र-सी दिखाई पड़ेगी, किन्तु इसका आकार इतना बड़ा है कि यदि हम लगभग २० करोड़ मील व्यास के एक गोले की कल्पना करें, और तब ऐसे १० लाख लोगों की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान करें फिर भी उक्त नीहारिका की लंबाई-चौड़ाई के सामने यह अपरिमेय आकार भी तुच्छ होगा! और हमारे इस विश्व-ब्रह्माण्ड में हजारों ऐसी और इससे भी बड़ी नीहारिकाएँ हैं, जो आकाश में बिखरी पड़ी हैं, तथा इतनी दूरी पर हैं कि १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकंड की गति से चलनेवाले प्रकाश को भी वहाँ से पृथ्वी तक पहुँचने में दस से तीस लाख वर्ष तक लगते हैं! [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

ज्योतिष—प्रारंभिक बातें

दृश्य जगत् के व्यापक रूप अनंत आकाश और उसमें एक दूसरे से लाखों-करोड़ों मील की दूरी पर शून्य में चक्कर काटते हुए ग्रहों और नक्षत्रों की अचरज-भरी कहानी।

सूर्य और चन्द्रग्रहण, पुच्छल तारे या चमकती हुई उल्काएँ हमें आश्चर्य में डाल देती हैं। हम सोचने लगते हैं कि तारे क्यों टूटकर गिरते हैं; पुच्छल तारे क्या हैं? उनमें क्यों लंबी-सी पूँछ होती है; सभी तारों में पूँछें क्यों नहीं होती हैं; पुच्छल तारे कुछ दिनों में अंतर्द्धान क्यों हो जाते हैं; कैसे लोग पहले से ही बतला सकते हैं कि ग्रहण किस दिन और किस समय लगेगा, इत्यादि।

परंतु ज्योतिष-संबंधी साधारण बातें भी कुछ कम आश्चर्य-जनक नहीं हैं। किसी भी स्वच्छ अँधेरी रात में तारों को देखो। कैसा सुंदर दृश्य आँखों के सामने उपस्थित होता है! पर विचार करो कि इन्हीं तारों के समान अन्य तारे पृथ्वी के अगल-बगल और नीचे भी हैं और उन्हीं के बीच तुम पृथ्वी पर सवार होकर बड़ी तेज़ी से उड़े चले जा रहे हो। असली बात यही है, पृथ्वी तारों के बीच आकाश में प्रचंड गति से सदा दौड़ रही है और तुम उस पर सवार हो! पृथ्वी हमको कितनी बड़ी जान पड़ती है, परंतु इन तारों के सामने वह धूल के एक कण से भी छोटी है!

आकाश में दौड़ती हुई पृथ्वी

जिस पर सवार हम ६६,६०० मील प्रति घण्टे की गति से शून्य में यात्रा कर रहे हैं!

पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों से जनता तक में ज्ञान फैल जाने के कारण अब कई बातों पर हमें आश्चर्य नहीं होता; परंतु प्राचीन मनुष्यों को ऐसी बातें भी अत्यंत रहस्यमयी जान पड़ती थीं। जैसे सूर्य का प्रति दिन पूर्व में उदय होना या ऋतुओं का क्रमानुसार नियमपूर्वक आते रहना, एक वर्ष में कितने दिन होते हैं—कितने दिनों बाद वर्षा ऋतु फिर आयेगी—ऐसी मोटी बातों का पता लगाने में भी हमारे पूर्वजों को अत्यंत कठिनाई पड़ी थी।

आधुनिक विज्ञान ने अनेक बातों का पता लगा लिया है; परंतु साथ ही अनेक नवीन समस्याएँ भी उपस्थित हो गई हैं, जिससे वैज्ञानिक भी आश्चर्यसागर में डुबकियाँ खा रहे हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह जानना चाहता है—क्यों? कैसे? क्या हो रहा है? क्या होगा। जिससे प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है, उसकी तो बात ही दूसरी है; परंतु जिससे प्रत्यक्ष में कोई लाभ होने की संभावना नहीं है, उसके जानने के लिए भी मनुष्य उत्सुक रहता है। सत्य क्या है, इसके जानने पर जो आनंद मिलता है, जो

तृप्ति मिलती है वही खोज के सारे परिश्रम का पुरस्कार है। संसार की मोह-ममता, नोच-खसोट में ज्ञान की खोज मनुष्य को ऊपर उठाती है और इस संबंध में ज्योतिष के अध्ययन से बढ़कर शायद ही कोई दूसरा ध्येय हो सकता हो।

ज्योतिष का अध्ययन हमारे पूर्वजों के लिए वांछित ही नहीं, आवश्यक भी था। पूजा-पाठ, खेती-बारी, बही-खाता, इन सभी के लिए ज्योतिष की मोटी-मोटी बातों का जानना आवश्यक था। परंतु ज्योतिष की बातें किसी-न-किसी को प्रकृति से ही सीखना था और जो लोग इन विषयों की खोज करते थे, वे ऋषि और ज्ञानी कहलाते थे, उनका सर्वत्र आदर होता था। धीरे-धीरे संहिताएँ और सिद्धांत बने, जिनके सहारे ग्रहण आदि तक टेढ़ी बातों की भविष्यद्वाणी की जा सकती थी। संसार के अन्य देशों में भी इसी प्रकार ज्योतिष के ज्ञान की वृद्धि हुई। अति प्राचीन काल में वाणिज्य खूब बढ़ा-चढ़ा था। लोग व्यापार के लिए दूर-दूर की यात्रा करते थे और इस प्रकार ज्ञान भी एक देश से दूसरे देश तक पहुँच जाता था। भारतवर्ष के अतिरिक्त बैबिलोनिया, चीन और मिस्र देश में भी ज्योतिष का ज्ञान उच्च कोटि का था। इसके बाद यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की और वहाँ का ज्ञान भारतवर्ष में भी फैल गया।

सोलहवीं शताब्दी में दूरदर्शक का आविष्कार गैलीलियो ने किया। तब से ज्योतिष में एक नवीन प्रकार का अध्ययन भी होने लगा। पहले सूर्य, चंद्रमा और ग्रह कैसे चलते हैं, किस समय उनकी स्थिति आकाश में कहाँ होगी, ग्रहण कब लगेगा, इत्यादि, बातों का अध्ययन होता था। दूरदर्शक के आविष्कार के बाद यह भी देखना संभव हो गया कि सूर्य और चंद्रमा का आकार क्या है, उनके पृष्ठों पर क्या-क्या है, कौन-सा ग्रह किस आकार का है, इत्यादि। धीरे-धीरे उनकी नाप-तौल का भी ज्ञान प्राप्त हुआ। कई आश्चर्यजनक बातों का पता

आकाश में पुच्छल तारे का अद्‌भुत् दृश्य

यह हेली के सुप्रसिद्ध पुच्छल तारे का मई ६, १९१०, को लिया गया चित्र है, जब वह अंतिम बार दिखाई दिया था। [फ़ोटो 'लिक वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

चला। शनि के चारों ओर एक वलय (छल्ला) है; शुक्र में वैसी ही कलाएँ दिखलाई पड़ती हैं, जैसी चंद्रमा में; मंगल में धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं, जो शायद नहरें हैं। संभव है ये कृत्रिम हों और वहाँ जीवधारी भी हों, इत्यादि।

गत साठ-सत्तर वर्षों में ज्योतिष-संबंधी अनुसंधान ने दूसरा मार्ग पकड़ा है। अब आकाशीय पिंडों की रासायनिक बनावट की जाँच होने लगी। जिस यंत्र से इन आश्चर्यजनक आविष्कारों का सफल होना संभव हुआ, वह वही छोटा-सा शीशे का टुकड़ा है, जो झाड़-फ़ानूसों में सजावट के लिए लगा रहता है। इसमें तीन पहलें होती हैं और इसलिए त्रिपार्श्व कहलाता है। इसके द्वारा देखने से चीज़ें रंग-बिरंगी दिखलाई पड़ती हैं और इन्हीं रंगों को देखने से आकाशीय पिंडों की रासायनिक बनावट, तापक्रम इत्यादि का पता चला। इन अनुसंधानों में फ़ोटोग्राफ़ी से भी पूरी सहायता ली जाती है।

पिछले तीस-चालीस वर्षों में तारों पर विशेष ध्यान दिया गया है। तारे ज्योतिषियों की दृष्टि में पहले केवल बिन्दु-सरीखे थे। न उनमें गति थी कि वे गणित-ज्योतिषियों को प्रिय लगते और न वे इतने बड़े थे कि उनकी विशेष जानकारी प्राप्त होने की संभावना देखकर भौतिक ज्योतिष-प्रेमी उनकी ओर झुकते। परंतु अब ज्योतिषियों के यंत्र इतने शक्तिशाली होते हैं और साथ ही अब गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्र का ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा है कि ऐसे रोचक प्रश्नों का भी उत्तर मिल गया है; जैसे, तारे गिनती में कितने हैं; वे कितनी दूर हैं; वे कितने बड़े हैं; कितने भारी हैं; उनकी भौतिक और रासायनिक बनावट क्या है; वे किस प्रकार जन्म लेते, युवा होते और मरते हैं; हमारी पृथ्वी और सूर्य का जन्म संभवतः कैसे हुआ होगा, इत्यादि।

इनमें से प्रायः सभी प्रश्नों का उत्तर अत्यंत आश्चर्यजनक है। पता चला है कि कुछ चमकीले तारे भी इतनी दूर हैं कि वहाँ से पृथ्वी तक प्रकाश के आने में लाखों वर्ष लगते हैं। यद्यपि प्रकाश इतना शीघ्रगामी है कि वह केवल एक सेकंड में १,८६,००० मील चल लेता है! ज्येष्ठा तारा इतना बड़ा है कि उसमें ७,००,००,००,००,००,००० पृथ्वियाँ समा जायँगी। कुछ तारे इतने हलके द्रव्य के बने हैं कि वे गुब्बारों में भरे जानेवाले गैसों से कहीं अधिक हलके हैं, और इसके विपरीत कुछ तारे इतने ठोस हैं कि यदि कोई अपनी अँगूठी में नग के बदले उनका एक टुकड़ा

हमारा निकट पड़ोसी—मंगल ग्रह

जिस पर दिखाई पड़नेवाली कृत्रिम-सी धारियों को कोई वैज्ञानिक नहरें बताता है और कोई हरे-भरे खेत या वन। इन्हीं के आधार पर वहाँ जीवधारियों के होने का भी अनुमान किया जाता है।

[फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

जड़वा ले तो अँगूठी तौल में आठ मन की हो जायगी!

प्रसिद्ध हास्यरस के लेखक मार्क ट्वेन ने अपनी कहानी 'कैप्टेन स्टॉर्मफ़ील्ड की आकाश-यात्रा' में एक घटना लिखी है, जिसमें अवश्य ही लेखक ने यथाशक्ति असीम अतिशयोक्ति की है। एक देवदूत गुब्बारे पर चढ़कर विश्व का नक़शा देखने गया, जो नाप में र्होड द्वीप (क्षेत्रफल लगभग १००० वर्ग मील) के बराबर था। अभिप्राय था सूर्य और इसके ग्रहों की स्थिति जानना। लौटने पर दूत ने कहा कि शायद नक़शे में सौर जगत् था तो, पर उसे संदेह यह हो रहा था कि कहीं वह किसी मक्खी का चिह्न न रहा हो!

परंतु अतिशयोक्ति के बदले कहने में कुछ कमी ही रह गई। आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर बने सारे भारतवर्ष के बराबर विश्व के मानचित्र में भी हमारा सौर जगत् केवल सुई की नोक के बराबर होगा। मार्क ट्वेन के

सूर्य-ग्रहण

जिसके समय की ठीक-ठीक पूर्व सूचना हमारे भारतीय ज्योतिषी अपने गणित-ज्ञान के आधार पर सदियों से देते चले आ रहे हैं। यह सूर्य के संपूर्ण ग्रहण का चित्र है। सूर्य और चन्द्र के ग्रहण मनुष्य को आदि काल ही से आश्चर्य में डालते रहे हैं और इनके सम्बन्ध में हर देश में भिन्न-भिन्न किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। [फ़ोटो 'लिक वेधशाला' की कृपा से प्राप्त।]
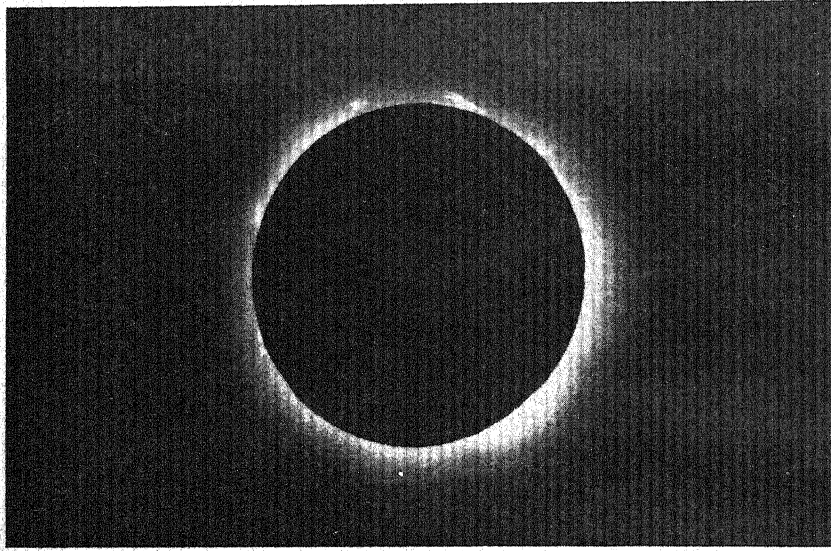
दूत को इस मानचित्र में हमारे सौर जगत् का देख पाना भी कठिन होगा। परंतु यदि वह कहीं इस चित्र में पृथ्वी को देखना चाहे, तो आजकल के बड़े-से-बड़े सूक्ष्मदर्शक यंत्र लगाने पर भी वह पृथ्वी को न देख सकेगा। इतने बड़े पैमाने पर भी पृथ्वी इतनी नन्हीं होगी !

निस्संदेह ज्योतिष अन्य विज्ञानों का पिता है। सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों के नियमित उदयास्त से, चंद्रमा के विधियुक्त घटने-बढ़ने से, और जाड़ा, गरमी, बरसात आदि ऋतुओं के नियमानुसार लौटने से ही पहले-पहल मनुष्यों ने यह सीखा होगा कि इस परिवर्तनशील संसार में कोई नियम भी है और नियमों का ज्ञान करना ही विज्ञान की उत्पत्ति का मूल कारण है। इसके अतिरिक्त जैसे तुच्छ धातुओं से सुवर्ण बनाने की खोज में रसायनशास्त्र और रोगों से मुक्ति पाने की चेष्टा में वैद्यकशास्त्र की उत्पत्ति
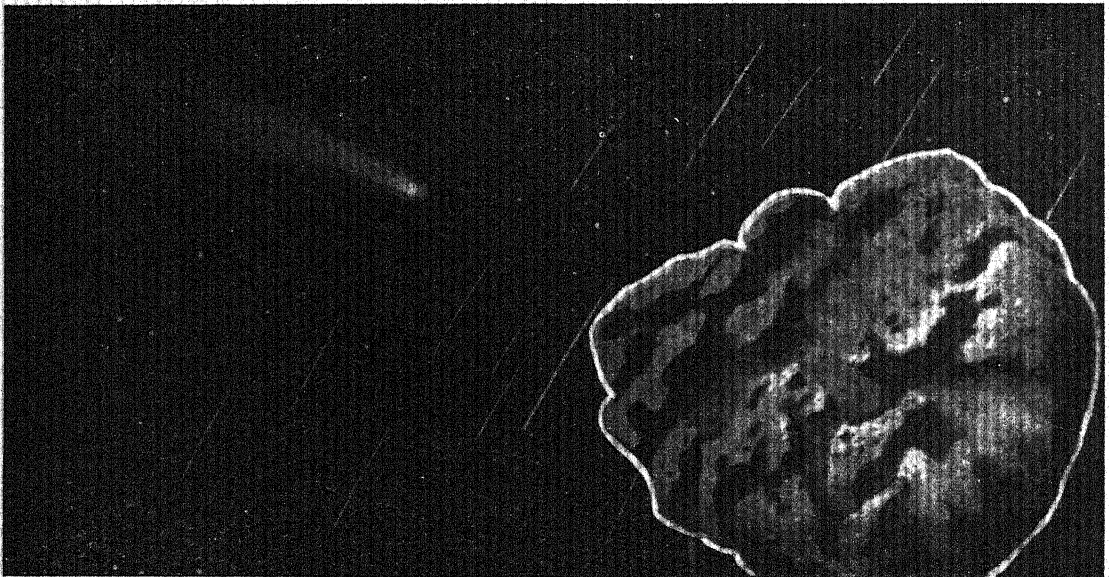
आकाश में टूटती हुई उल्काएँ और उल्कापिण्ड

इस चित्र के दाहिनी ओर का पत्थर-जैसा पिण्ड आतिशबाजी की तरह आकाश में टूटती हुई इन्हीं उल्काओं का पृथ्वी पर गिरा हुआ एक अंश है।
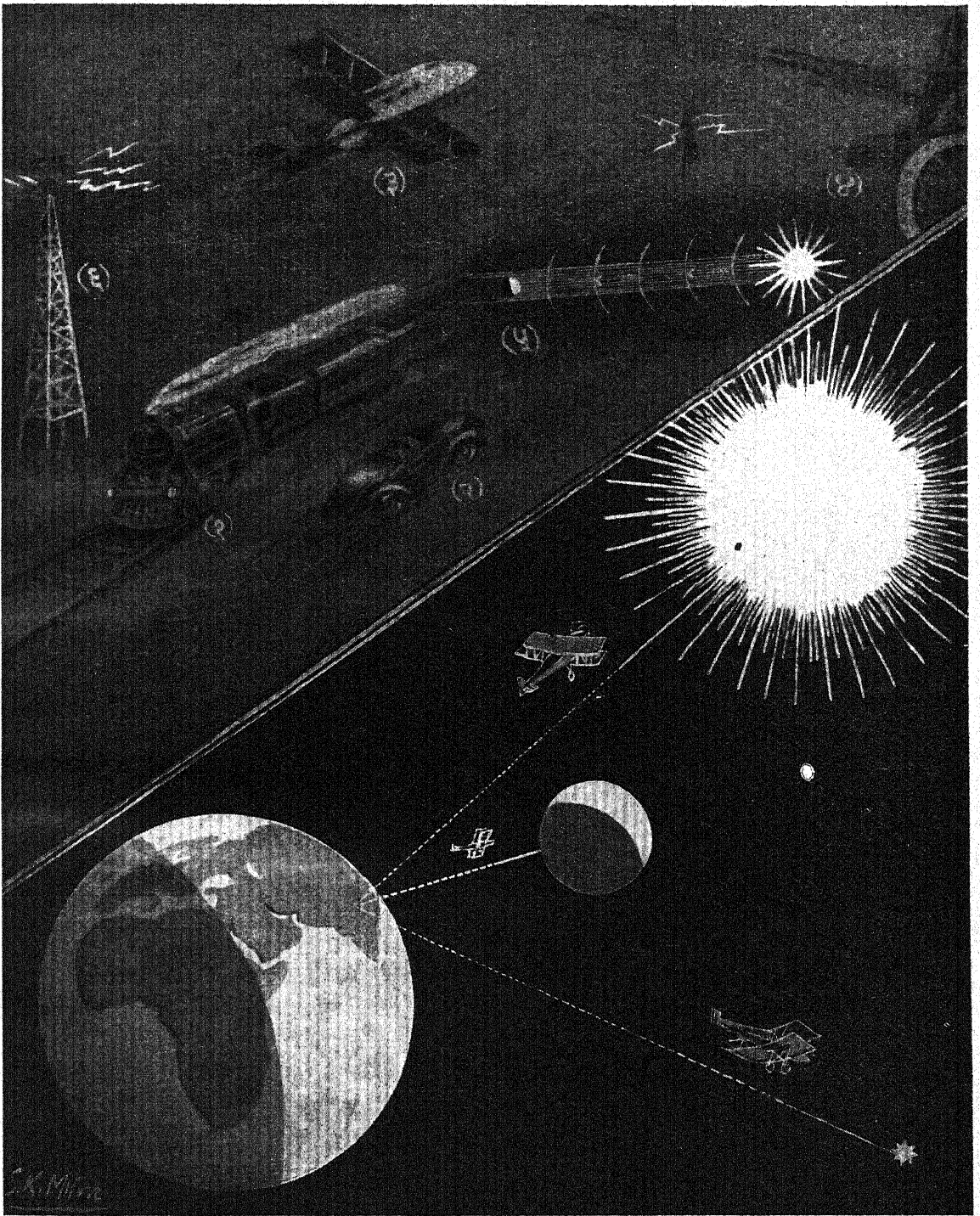
गति और दूरी की तुलना

रेल (चित्र में नं० १) प्रति घण्टा ६० मील, मोटर (नं० २) ३०० मील, हवाई जहाज़ (नं० ३) ४०० मील और तोप का गोला (नं० ४) १२०० मील तक की गति से यात्रा कर सकते हैं। किन्तु पृथ्वी और प्रकाश-किरण या विद्युत् इन सबसे कहीं अधिक अर्थात् क्रमश: लगभग १८½ और १,८६,००० मील प्रति सेकंड की गति से यात्रा करते हैं। यदि हम उपरोक्त ४०० मील प्रति घंटे की गति के हवाई जहाज़ द्वारा लगातार यात्रा करें तो चंद्रमा तक लगभग एक महीने में, सूर्य तक २७ वर्ष में, और सबसे नज़दीक तारे तक साढ़े सात हज़ार वर्ष में पहुँच पायेंगे।

हुई, उसी प्रकार ज्योतिष के प्रश्नों को हल करने में गणित-शास्त्र के अनेक अंगों की उत्पत्ति हुई और आजकल भी ज्योतिष के कारण गणित और भौतिक विज्ञान में उन्नति हो रही है।

क्या ज्योतिष की अनुपस्थिति में कोलंबस कभी यह समझ सकता था कि योरप से पश्चिम जाने पर भारतवर्ष या अन्य कोई देश अवश्य मिलेगा? कदापि नहीं। उसने बार-बार तारों, सूर्य और चंद्रमा को पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते देखा था। इससे उसने निश्चय किया कि वह भी यदि पश्चिम चलता जाय, तो अवश्य कभी-न-कभी भारतवर्ष पहुँच जायगा, यद्यपि यह देश योरप से पूर्व दिशा में है।

कोलंबस की बात तो पुरानी है। अब भी जहाज़ के कप्तानों को ज्योतिष की आवश्यकता नित्य पड़ा करती है। ज्योतिष ही के द्वारा समुद्र में जहाज़ की स्थिति का पता लगता है और इसके बिना लंबी समुद्र-यात्रा सफल हो ही नहीं सकती। पृथ्वी पर और वायु में भी यात्रा करनेवाले को ज्योतिषशास्त्र का यथेष्ट ज्ञान अवश्य होना चाहिए। नये देशों और रेगिस्तानों में रास्ता निकालने के लिए ज्योतिष की विशेष आवश्यकता पड़ती है। फिर, जब किसी देश की पैमायश करनी पड़ती है, तब ज्योतिष की शरण लेनी पड़ती है। समय का शुद्ध ज्ञान ज्योतिष के यंत्रों से ही होता है।

इतिहास को भी ज्योतिष ने बड़ी सहायता पहुँचाई है। कई एक तिथियों का, जिनका ठीक पता अन्य किसी भी प्रकार न चलता, ज्योतिष ने ही निर्णय किया है। प्राचीन और मध्यकालीन युग के अनेक सूर्य और चंद्रग्रहणों की चर्चा पुराने ग्रंथों में मिलती है। इन सब पर अन्य ऐतिहासिक सामग्री के साथ विचार करने से इतिहास की तिथियों को शुद्ध करने के लिए अमूल्य सामग्री मिलती है। ग्रहणों के आधार पर ही अति प्राचीन काल की तिथियाँ थोड़ी-बहुत निश्चित रूप से श्रेणीबद्ध की जा सकी हैं।

ज्योतिष के अध्ययन से मानसिक विकास होता है और आनंद मिलता है। हमारे प्राचीन ऋषिगण ने भी ज्योतिष की बड़ी प्रशंसा की है। ज्योतिष-वेदांग के ग्रंथकार ने लिखा है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

जैसे मोरों के मस्तक पर शिखा या साँपों के मस्तक पर मणि, उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों के मस्तक पर ज्योतिष स्थित है।

सूर्यसिद्धांत ने ज्योतिष को सब वेदांगों में श्रेष्ठ, परम पवित्र और रहस्यमय बतलाया है। भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि शब्दशास्त्र वेद भगवान् का मुख है, ज्योतिःशास्त्र आँख है, निरुक्त कान हैं, कल्प हाथ है, शिक्षा नासिका है, छंद पाँव हैं। इसलिए जैसे सब अंगों में आँख श्रेष्ठ होती है, वैसे ही सब वेदांगों में ज्योति-शास्त्र श्रेष्ठ है।

कुछ लोग ज्योतिष शब्द से सदा फलित ज्योतिष समझते हैं। उनके विचार में ज्योतिष वह विद्या है, जिसके आधार पर बतलाया जा सकता है कि किसी के भाग्य में क्या है, विवाह आदि के लिए शुभ मुहूर्त्त क्या है; परन्तु ज्योतिष का अर्थ अति प्राचीन काल में कुछ दूसरा ही था। इसमें संदेह नहीं है कि वेद और ब्राह्मणों के काल में ज्योतिष से गणित-ज्योतिष—वैज्ञानिक ज्योतिष—समझा जाता था। उस समय ज्योतिष का तात्पर्य उस विद्या से था, जिसमें सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति एवं स्थिति का अध्ययन किया जाता था। फलित ज्योतिष उस समय कोई जानता न था।
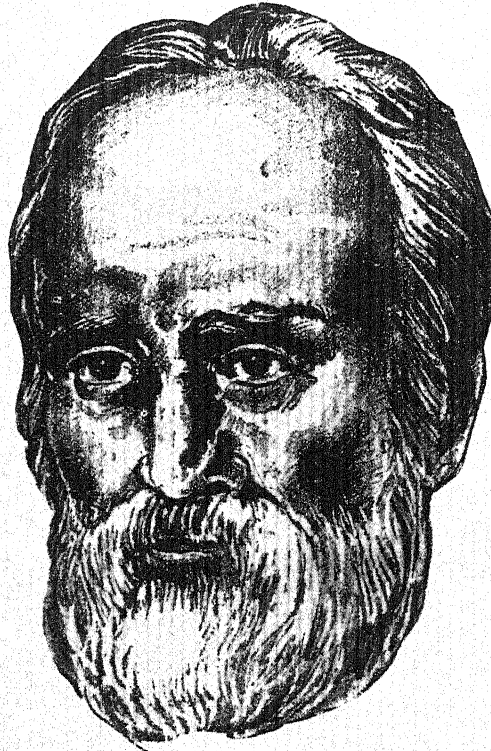
दूरदर्शक का आविष्कारक गैलीलियो
जिसने सामान्य दृष्टि से छिपे हुए अगणित नक्षत्रों और ब्रह्माण्डों की एक झलक देखना हमारे लिए संभव कर दिया।
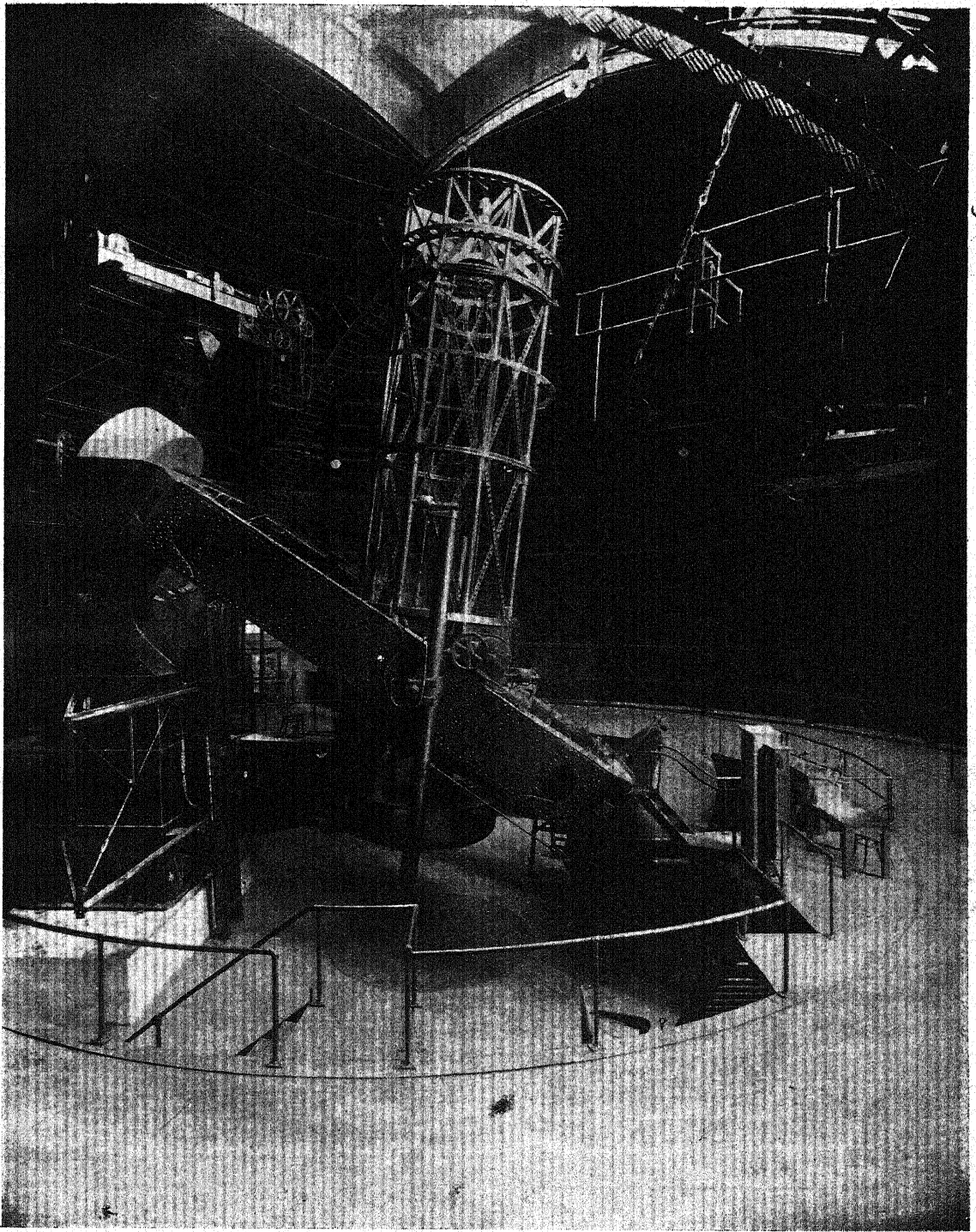
दुनिया का वर्त्तमान सबसे बड़ा दूरदर्शक

यह अमेरिका की प्रसिद्ध 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' में लगा है। इसके शीशे का व्यास १०० इंच और मोटाई १२ इंच है। इससे भी बड़ा एक दूरदर्शक बनाया जा रहा है, जिसके शीशे का व्यास २०० इंच होगा। गैलीलियो के खिलौने-जैसे छोटे-से दूरदर्शक से आज के इस भीमकाय १०० इंच या २०० इंच के दूरदर्शक के विकास की कहानी पिछले तीन सौ वर्ष की तुच्छ अवधि ही में मनुष्य के ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति की मूर्त्तिमान कथा है। [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]

कदाचित् यह कहना कि उस समय के ऋषि सूर्य आदि की स्थिति और मनुष्य के भाग्य में कोई संबंध जोड़ना अनुचित समझते थे, अधिक उपयुक्त होगा। पीछे ग्रीक लोगों के संपर्क से भारतवर्ष में भी फलित ज्योतिष का प्रचार हुआ। फलित ज्योतिष के अनेक शब्द स्पष्ट रूप से ग्रीक उत्पत्ति के हैं। और अन्य के प्रमाण भी हैं। सत्रहवीं, अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में ज्योतिष के अध्ययन का ह्रास इतना हुआ कि बहुत-से विद्यार्थी केवल उतना ज्योतिष पढ़ते थे, जितने की उनको फलित ज्योतिष के लिए आवश्यकता पड़ती थी। इसीलिए धीरे-धीरे ज्योतिष और फलित ज्योतिष में कोई अंतर ही न रह गया। लोग ज्योतिष से फलित ज्योतिष ही समझने लगे।

इस ग्रंथ में आरंभ से 'ज्योतिष' शब्द वैज्ञानिक ज्योतिष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भविष्य में भी जहाँ कहीं भी यह शब्द आयेगा, उसका यही अर्थ लगाना चाहिए।

दिनोंदिन ज्योतिष में विशेष यंत्रों के बिना नवीन बातों का पता चलाना कठिन होता जा रहा है। परन्तु अब भी कोरी आँख से या सौ-पचास रुपये के छोटे दूरदर्शक से कोई भी व्यक्ति आधुनिक अनुसंधानों में सहायता कर सकता है और यदि भाग्य उसकी सहायता करे, तो ख्याति प्राप्त कर सकता है। हज़ारों तारे ऐसे हैं, जिनकी ज्योति घटा-बढ़ा करती है। परंतु समयाभाव के कारण ज्योतिषी सबकी ज्योति के घटने-बढ़ने के नियम नहीं निकाल पाये हैं। गणित और भौतिक विज्ञान न जाननेवाले भी इसमें सहायता दे सकते हैं। फिर टूटकर गिरनेवाले तारों—उल्काओं—का वेध भी आसानी से किया जा सकता है और ज्योतिषी लोग सावधानी से किये गये ऐसे वेधों का स्वागत करते हैं। कोई तारा चंद्रमा के पीछे कब छिपा, इसका भी वेध जन-साधारण थोड़े-से अभ्यास के बाद सुगमता से कर सकते हैं, या वे नवीन पुच्छल तारों की खोज कर सकते हैं; परन्तु इन सबके लिए बड़े धैर्य की आवश्यकता है।

इन दिनों ज्योतिष में सर्व-साधारण की रुचि बढ़ती ही जा रही है और कितने धनी सज्जन ज्योतिष में खोज करने के लिए काफ़ी धन दे जाते हैं। दुनिया-भर में सबसे बड़ी वेधशाला, जो अमेरिका में माउण्ट विल्सन पर है, एक सज्जन के दान से ही स्थापित हुई है। कई धनी लोग अपने मकानों में निजी वेधशाला बनवा लेते हैं। हाल में ऐसी 'ग्रहशालाएँ' भी बनी हैं, जिनकी छतें अर्ध-गोलाकार होती हैं और सिनेमा-यंत्र की तरह बनी मशीन से इन छतों पर ग्रहों और नक्षत्रों के चित्र डालकर उनकी गति दृष्टिगोचर कराई जाती है।

ज्योतिष की बहुत-सी बातें और उनकी यथार्थता का प्रमाण प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति समझ सकता है। जिन सिद्धांतों पर तर्क करके और रीतियों का प्रयोग करके आधुनिक ज्योतिष ने तारों की दूरी, तौल, बनावट आदि का ज्ञान प्राप्त किया है, उनका समझना पाठक के लिए कठिन न होगा। इसलिए प्रस्तुत ग्रंथ में केवल ज्योतिष के परिणाम ही नहीं बतलाए जायँगे; वरन् इस बात के समझाने की भी चेष्टा की जायगी कि ज्योतिषीगण कैसे और क्यों किसी परिणाम पर पहुँचे हैं। मेरा विश्वास है कि परिणामों की अपेक्षा उनके प्राप्त करने की रीतियाँ अधिक मनोरंजक प्रतीत होंगी; जैसे, यह जानकर कि ध्रुवतारा २,५०,००,००,००,००,००० मील दूर है, इतना आनंद नहीं मिलता, जितना इसे समझ लेने में कि यह दूरी नापी कैसे गई।

यों तो सुशिक्षित मनुष्य को विद्या की सभी शाखाओं को थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए, परन्तु मनुष्य को कुछ-

जयपुर की वेधशाला

इस तरह की वेधशालाएँ उज्जैन, काशी और दिल्ली में भी हैं। भारतवर्ष में आधुनिक विज्ञान के विकास के पहले भी विशुद्ध ज्योतिष की ओर कितनी अधिक रूचि थी इसकी ये सजीव प्रमाण हैं।

सूर्य के प्रचण्ड स्वरूप की एक कल्पना

प्रकाश का जो चमकता हुआ गोला नित्य हमारी पृथ्वी के पूर्व क्षितिज पर उदय होते और पश्चिम में अस्त होते दिखाई देता है, वह वास्तव में हमारी इस पृथ्वी से कई गुना बड़ा एक प्रचण्ड आग का गोला है, जिसकी सतह पर हजारों मील ऊँची लपटें धू-धू करती हुई अपना ताण्डव किया करती हैं। सूर्य ही हमारी इस दुनिया के प्रकाश और उष्णता का मूल स्रोत है, जिसके अभाव में हमारी यह पृथ्वी जीवन और ज्योति दोनों से विहीन हो जायगी।

न-कुछ ज्योतिष अवश्य जानना चाहिए। बालक से लेकर बूढ़े तक सभी को ज्योतिष में रुचि होती है और प्रत्येक शिक्षित मनुष्य से कभी-कभी ज्योतिष-संबंधी साधारण प्रश्न कोई अवश्य कर बैठता है। अपने मन में भी इस प्रकार की कई एक बातों के जानने की इच्छा उत्पन्न हुआ करती है। उदाहरणार्थ, कौन नहीं जानना चाहता कि पुरोहित लोग जो मेष, वृष, मिथुन, कर्क इत्यादि गिनते हैं, उसका अर्थ क्या है? तारे क्यों गिरते हैं और वे क्या हैं? पुच्छल तारा जो आकाश में कभी-कभी आ जाता है, कहाँ से आता है और कहाँ लुप्त हो जाता है? आकाश-गंगा क्या है? ग्रहों और नक्षत्रों में भी प्राणी हैं अथवा नहीं? मंगल तक कोई उड़ जा सकता है अथवा नहीं? विश्व की उत्पत्ति पर वैज्ञानिकों का क्या मत है? क्या सचमुच चंद्रमा पृथ्वी ही का एक टुकड़ा है? फलित ज्योतिष कहाँ तक सच है? हमारे पूर्वज कितना ज्योतिष जानते थे? इत्यादि। ऐसे प्रश्न अत्यंत रोचक हैं। इन सबका उत्तर प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को दे सकना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रंथ की ज्योतिष-संबंधी लेखमाला को पढ़ने पर इन और ऐसे ही अन्य अनेक प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर पाठक को मिल जायगा। इस लेखमाला में ज्योतिष के उन सभी अंगों पर विचार किया जायगा, जो सर्वसाधारण के समझने योग्य हैं। चित्रों को अधिक संख्या में देकर पाठकों के पास दूरदर्शक या अन्य यंत्र न रहने की असुविधा को बहुत-कुछ मिटा दिया जायगा।
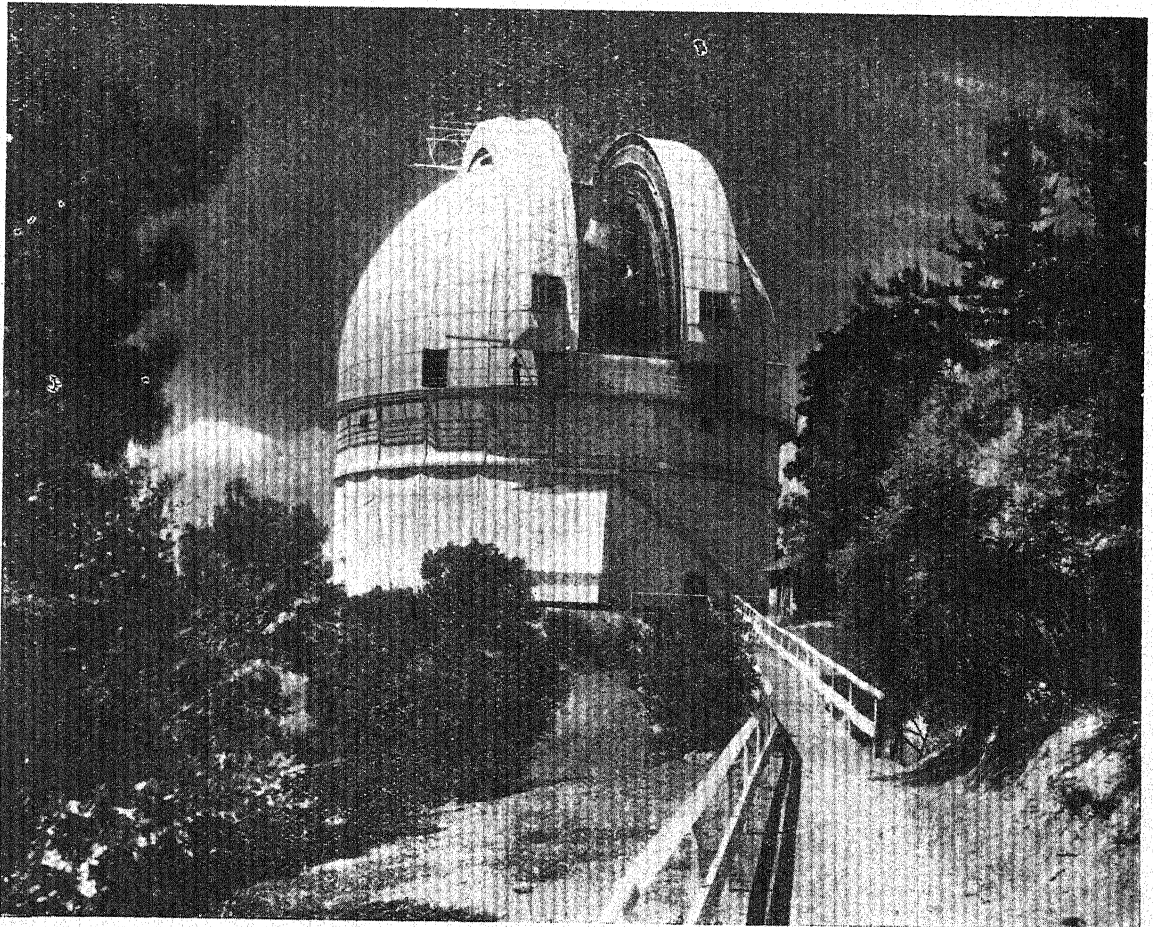
माउण्ट विल्सन की संसारप्रसिद्ध वेधशाला की मुख्य इमारत

जिसमें १०० इञ्च व्यास के शीशे वाला संसार का वर्तमान सबसे बड़ा दूरदर्शक रक्खा हुआ है। हमारा आज का ज्योतिष-संबंधी ज्ञान ऐसी ही वेधशालाओं में काम करनेवाले ज्योतिषियों के अनवरत परिश्रम का फल है। [फ़ोटो 'माउण्ट विल्सन वेधशाला' की कृपा से प्राप्त]
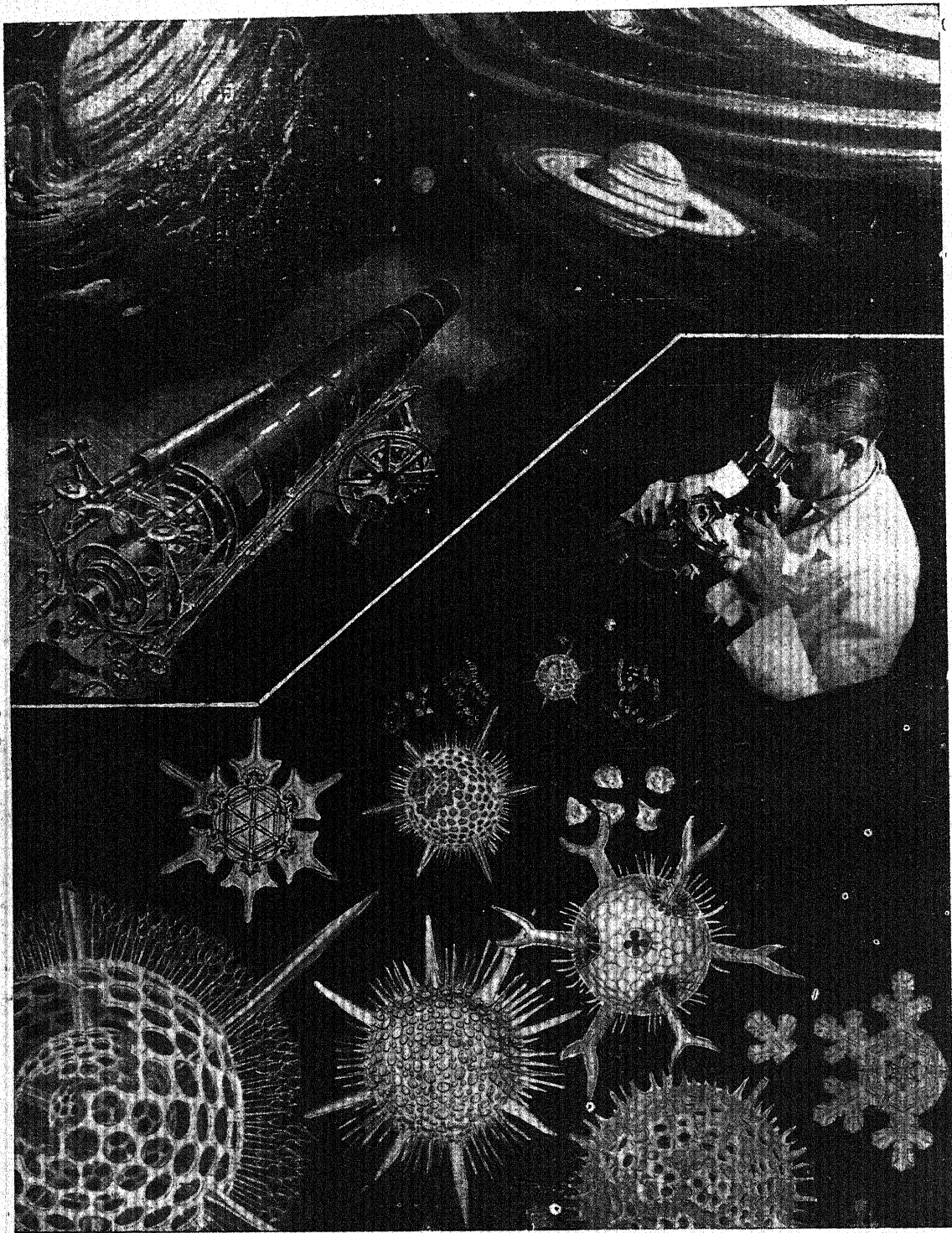
'अणोरणीयान् महतोमहीयान्'

'सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान्'—दार्शनिक की तरह आज वैज्ञानिक भी दूरदर्शक द्वारा करोड़ों मील दूर के अनगिनत नक्षत्रपुंजों तथा सूक्ष्मदर्शक द्वारा उतने ही अपरिमेय और अनंत अणु-परमाणुओं की एक साधारण-सी झलक देख पाकर ईश्वर के विराट् रूप के सम्बन्ध में उपनिषदों के उपरोक्त वाक्यों को सृष्टि पर लागू करते हुए दोहरा रहा है। वास्तव में, सृष्टिकर्त्ता की तरह उसकी यह अद्‌भुत कृति भी न केवल महानता में बल्कि सूक्ष्मता में भी अनंत है।
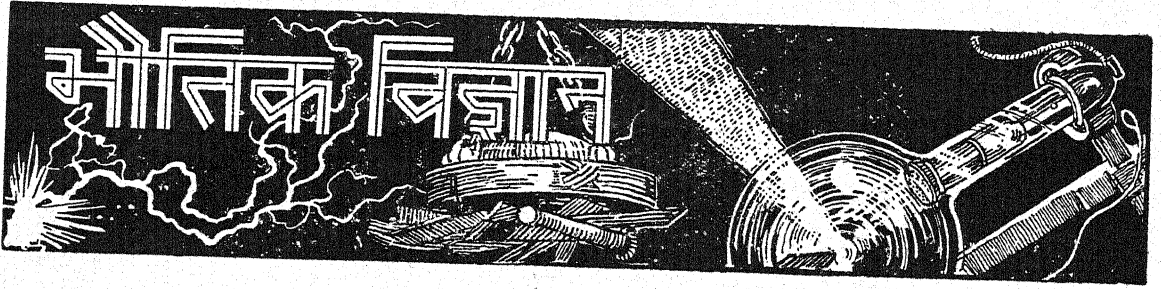
रहस्यमय जगत्

उन तत्वों और प्राकृतिक शक्तियों की कहानी जिनसे इस विशाल विश्व की रचना हुई है और जिनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सृष्टि का संचालन होता है।

नित्य ही तरह-तरह की घटनाएँ हमें चारों ओर देखने को मिलती हैं। कभी आसमान में बादल छा जाते हैं, तो कभी बिजली कौंधती है। कभी तो इतनी गर्मी पड़ती है कि पंखे के नीचे भी चैन नहीं मिलता, तो कभी इतनी ठंडक कि लिहाफ़ के भीतर भी हमारे दाँत कटकटाते हैं। तो ये बादल आते कहाँ से हैं? क्या सचमुच इन्द्रदेव इन्हें हमारे पास पुरस्कार-स्वरूप भेजते हैं? वर्षा एक ख़ास ऋतु में ही क्यों होती है। बिजली क्या इसीलिए कौंधती है कि देवराज इन्द्र क्रुद्ध होकर बादलों में बर्छी भोंक देते हैं? निस्संदेह प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मन में इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं। स्वभावतः वह जनना चाहता है कि क्यों जेठ की धूप में रक्खी हुई लोहे की कुर्सी इतनी तपने लगती है कि उस पर बैठना असंभव हो जाता है जबकि उसी की बग़ल में रक्खा हुआ लकड़ी का स्टूल गर्म नहीं हो पाता? क्यों गर्म चाय डालने से शीशे की गिलास टूट जाती है, जबकि काँसे की गिलास में ठंडी-गर्म हर प्रकार की चीज़ें पी जा सकती हैं? नंगे पैरों बिजली के तार छूने पर हमें ज़बर्दस्त झटका क्यों लगता है, जबकि लकड़ी की खड़ाऊँ पहनकर उस तार को हम निरापद छू सकते हैं? गर्मी के दिनों में कंघी करते समय बालों से चिनगारियाँ क्यों निकलने लगती हैं?

आकाश में विद्युत् की चमक

क्या सचमुच बिजली इसलिए कौंधती है कि इन्द्र क्रुद्ध होकर बादलों में बर्छी भोंक देते हैं?

इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न हमारे मन में उठते हैं और हज़ारों वर्ष से लोग इन प्रश्नों को हल करने की कोशिश कर रहे हैं। बाह्य जगत् की अनोखी समस्याओं के प्रति मनुष्य ने प्राचीन काल से ही गहरी दिलचस्पी दिखाई है। वह देखता है, भिन्न-भिन्न चीज़ें एक-सी ही परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न तरीक़ों से पेश आती हैं। मेज़ पर बर्फ़ रख दीजिए, तो गलने के

पहले तक वह मेज़ ही पर पड़ी रहेगी, किन्तु पानी मेज़ पर डालिए, तो समूची मेज़ पर फैलकर वह नीचे जा गिरेगा और पानी की भाप तो और भी क़ाबू में नहीं आती। खौलते हुए पानी की देगची का ढक्कन उठा लीजिए, तो भाप कमरे में चारों ओर फैल जायगी। फिर भी आप जानते हैं कि बर्फ़, पानी और भाप वास्तव में एक ही चीज़ के भिन्न-भिन्न रूप हैं। जाड़े के दिनों में घी जमकर पत्थर-जैसा कड़ा हो जाता है, किन्तु धूप दिखाने पर वही पिघलकर पानी ऐसा बन जाता है और आग पर चढ़ा देने पर वही वाष्परूप में परिवर्त्तित होने लगता है। तो क्या संसार की सभी वस्तुएँ पानी ही की तरह अनिवार्य रूप से तीनों रूप—ठोस, द्रव और वाष्परूप—धारण कर सकती हैं? श्वास लेने के लिए हम हवा का प्रयोग करते हैं, तो क्या हवा भी समुचित परिस्थितियों में पानी की तरह बोतलों में से उँडेली जा सकती है? तब तो हमारा यह कहना कि लोहा ठोस पदार्थ है और पारा द्रव, एक प्रकार से ग़लत है; क्योंकि वैज्ञानिक हमें बताता है कि दुनिया के सभी ठोस पदार्थ गर्म किये जाने पर द्रव या वाष्परूप में परिणत किये जा सकते हैं। किसी भी द्रव पदार्थ को लीजिए, उसमें थोड़ी ठंडक पहुँचाइए और उस पर ज़रा दबाव (Pressure) डालिए; बस, फ़ौरन् ही वह ठोस बन जायगा। उदाहरण के लिए आप दूध को आइसक्रीम की मशीन में डालते हैं, दूध के डिब्बे के चारों ओर बर्फ़ भरी रहती है। मशीन घुमाने पर बर्फ़ की ठंडक दूध में पहुँचती है और फ़ौरन् आपकी आइसक्रीम जम जाती है।
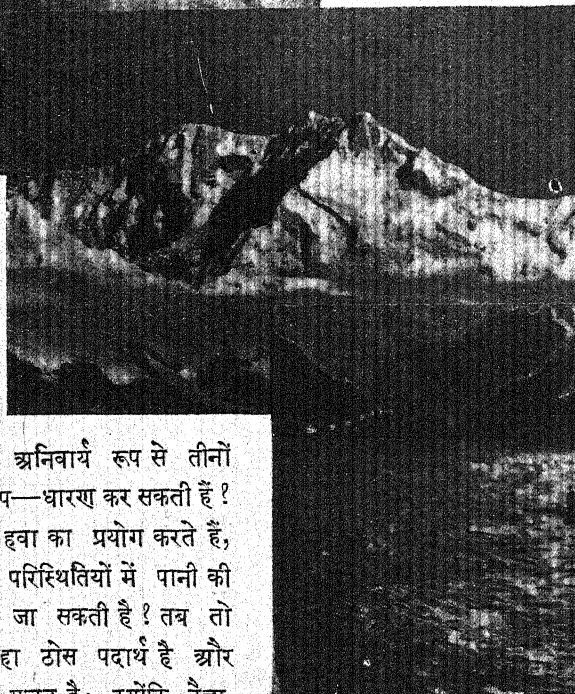
द्रव्य के तीन रूप

प्रकृति ही में हमें वायुरूप बादल, शिलारूप बर्फ़ और लहराते जल के रूप में एक ही द्रव्य जल के वायुरूप, ठोस और तरल ये तीन भिन्न रूप मिलते हैं।

निस्संदेह हम अपने आस-पास की चीज़ों में तरह-तरह का कुतूहल भरा हुआ पाते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के भीतर विचित्र यंत्रों की सहायता से बाह्य जगत् के इसी रहस्य का अध्ययन करता है। मनुष्य वास्तव में यह जानना चाहता है कि सैकड़ों-हज़ारों तरह की भिन्न-भिन्न चीज़ें जो हमें संसार में दिखाई देती हैं, आख़िर उनके पीछे मूल तत्त्व क्या है? चाक़ू, फ़ाउन्टेनपेन, घड़ी, मोटरकार आदि को मनुष्य ने फ़ैक्टरियों में बनाया है, किंतु लोहा, लकड़ी, पानी, वायु आदि का निर्माण कैसे हुआ? क्या उनके मूल तत्त्वों में किसी प्रकार की समानता है? प्राकृतिक रूप में जितनी वस्तुएँ पाई जाती हैं, क्या विधाता ने उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग मसाले से बनाया है। या उनकी तह में एक ही मूल तत्त्व है?

आज से हज़ारों वर्ष पहले भी मानव समाज जब अपनी शैशवावस्था से होकर गुज़र रहा था, तब मनुष्य ने इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने का सराहनीय प्रयत्न किया था। विज्ञान की नींव शायद तभी पड़ चुकी थी। उन दिनों लोगों के पास यंत्र न थे। अतएव केवल अपनी इंद्रियों

की सहायता से ही उन्हें प्रकृति का अध्ययन करना पड़ता था। अमुक वस्तु गर्म है या ठंडी, यह जानने के लिए उन्हें उस चीज़ को हाथ से छूना पड़ता था, उनके पास आधुनिक युग के थर्मामीटर न थे। यही कारण है कि उनका प्रकृतिज्ञान प्रायः अधूरा और ग़लत होता था। अनेक बातें उनकी समझ में ही नहीं आती थीं। फलस्वरूप वे मान बैठे थे कि प्रकृति रहस्यमय है। इस रहस्य को समझाने के लिए प्राचीन काल के विद्वानों ने पौराणिक कहानियों की रचना की। पृथ्वी कहाँ पर कैसे टिकी हुई है, इसका ठीक-ठीक जब वे पता न लगा सके, तो उन्होंने कल्पना की कि एक विशाल नाग—शेषनाग—के फण पर पृथ्वी रक्खी हुई है और जब कभी शेषनाग अपने फण हिलाते हैं, पृथ्वी पर भूचाल आता है। किंतु इन पौराणिक कहानियों को सच मानकर लोगों ने संतोष कर लिया हो, यह बात भी नहीं थी। प्रकृति के रहस्योद्घाटन का कार्य निरंतर जारी रहा। लोगों ने एक-एक कर पौराणिक कहानियों की निस्सारता देखी। वैज्ञानिक ने कल्पना की ऊँची उड़ान न उड़कर वास्तविकता की कठोर भूमि पर चलना सीखा। भौतिक विज्ञान का नवीन युग इसी ज़माने से आरंभ होता है। हरएक नया प्रश्न, हरएक नई समस्या अब प्रयोग की कसौटी पर कसी जाने लगी—कोरे अनुमान के दलदल से विज्ञान बाहर निकला। प्रयोग और शुद्ध तर्क इन दोनों की सहायता से विज्ञान ने दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक़्क़ी की। प्रकृति का प्रत्येक कार्य नियमित सिद्धांतों के अनुसार होता है, इस अखंड सत्य का आभास मनुष्य को मिला। अतः प्रकृति के नियमों की उसने पूरी जानकारी हासिल की और इस जानकारी से उसने पूरा लाभ भी उठाया। इन नियमों के आधार पर उसने तरह-तरह के यंत्र बनाये और अपनी इंद्रियों की शक्ति बढ़ाने में इनका प्रयोग किया। नेत्र की जहाँ पहुँच नहीं थी, वहाँ के लिए सूक्ष्मदर्शक और दूरदर्शक का निर्माण किया, कान जिन शब्दों को ग्रहण नहीं कर पाते थे, उनको सुनने के लिए बढ़िया क़िस्म के यंत्र बनाये। इस प्रकार अपनी निरीक्षण-शक्ति बढ़ाकर वैज्ञानिक ने प्रकृति से घनिष्ट संसर्ग पैदा किया। प्रकृति का भेद जान लेने के उपरांत वैज्ञानिक ने उसे अपने वश में करने का भी सफल प्रयत्न किया। ऊँचे-ऊँचे झरनों से उसने बिजली उत्पन्न की और उसे अपने घर में लाकर उससे दिया-बत्ती का काम लिया, चूल्हा गर्म कराया, यहाँ तक कि घर की चक्की भी उसी से चलवाई।

मनुष्य के मन में एक नये आत्मविश्वास का आविर्भाव हुआ। अज्ञानवश जिन चीज़ों को वह समझ नहीं पाता था, जिनसे वह डरता था, उन्हीं को पूर्णतया उसने अपने वश में कर लिया है। प्रकृति के सामने वह नगण्य नहीं है, इस बात का वह अब अनुभव करने लग गया है।

वैज्ञानिक अनुसंधान के रास्ते में वैज्ञानिकों को एकाग्र मन और अपनी शक्ति से काम करना होता है। प्रयोगशालाओं के भीतर वह रात-रात भर जागता है। यंत्रों की खुटखुट में उसे खाने-पीने की सुध नहीं रहती, उसे ओस की परवा नहीं होती और शायद ठंड भी उसे नहीं लगती। ऐसी अद्‌भुत लगन अन्यत्र आपको शायद ही मिलेगी। वैज्ञानिक की यह कठिन तपस्या सदैव सफल ही होती हो, यह बात भी नहीं है। अनुसंधान के क्रम में वैज्ञानिकों ने भी भूलें की हैं, और इस कारण उन्हें पीछे भी हटना पड़ा है, किंतु वे हताश कभी नहीं हुए।

पदार्थ-जगत् इतना विस्तृत है कि इसकी वैज्ञानिक मीमांसा करने के लिए इसे दो विभागों में बाँटना पड़ा। पदार्थ के बहिर्देश में जितने परिवर्त्तन होते हैं—उनका रूप, उनका ताप, उनका रंग, उनका भारीपन तथा अन्य बातें, जिनका ज्ञान हम इंद्रियों अथवा यंत्रों द्वारा कर सकते हैं—उन सबका अध्ययन भौतिक विज्ञान के ज़िम्मे है। और पदार्थ के मूल तत्त्व क्या हैं? एक पदार्थ एकदम दूसरे पदार्थ में कैसे परिवर्त्तित हो जाता है? क्या हज़ारों-लाखों चीज़ें, जो हमें संसार में दिखाई पड़ती हैं, वे सभी वास्तव में भिन्न-भिन्न पदार्थों से बनी हैं? अथवा संसार में केवल सौ-पचास ही मूल पदार्थ हैं, जिनके आपस के हेर-फेर से हम तरह-तरह की अनगिनत चीज़ें बना लेते हैं? इन मौलिक प्रश्नों का हल आपको रसायन विज्ञान में मिलेगा।

हमने देखा है कि भौतिक और रसायन विज्ञान दोनों ही पदार्थ का निरीक्षण करते हैं, केवल उनके दृष्टिकोण में अंतर है। एक का संबंध बाह्य रूपरंग से है, तो दूसरा पदार्थ के भीतर की बातों का पता लगाता है। अतः भौतिक और रसायन विज्ञान वास्तव में दो भिन्न-भिन्न चीज़ें नहीं हैं। ये दोनों बहुत दूर तक अलग-अलग नहीं चलते। आगे बढ़ने पर प्रकृति के मूल सिद्धांतों पर दोनों ही आ पहुँचते हैं, और तब भौतिक और रसायन विज्ञान के बीच की विभाजक रेखा भी मिट जाती है। प्रकृति के रहस्योद्घाटन के लिए दोनों ही हाथ-में-हाथ मिलाकर अनुसंधान के पथ पर चलते हैं। रसायन विज्ञान हमें बताता है कि

कुल ६२ मौलिक पदार्थ इस संसार में पाये जाते हैं। इन्हीं में से कुछ को लेकर प्रकृति या मनुष्य, पेड़-पौधों, आसमान के तारे, सूर्य, चंद्रमा, नदी, तालाब, हमारी काम की चीज़ें और स्वयं हमारे शरीर की रचना हुई है; और भौतिक विज्ञान आपको बताता है कि इन ६२ मौलिक पदार्थों का पारस्परिक संबंध क्या है, लोहे में चुम्बकीय शक्ति कहाँ से आ गई, इन मौलिक पदार्थों का वज़न, उनका आकार कैसा है, क्या मौलिक पदार्थों के अवयव में आकर्षण-शक्ति मौजूद है, विद्युत् और चुम्बकीय शक्तियों का इन अवयवों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, आदि, आदि।

वैज्ञानिक आपको बताता है कि मौलिक पदार्थों के अवयव भी गेंद की भाँति ठोस नहीं होते, वरन् उनके भीतर अधिकांश भाग एकदम खोखला रहता है। जिस प्रकार सूर्य के इर्द-गिर्द, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति आदि ग्रह चक्कर लगाते हैं, उसी तरह अवयवों के अंदर भी एक केंद्रीय अणु के चारों ओर दो-चार परमाणु चक्कर लगाया करते हैं। इन परमाणुओं की रफ़्तार भी बेहद तेज़ होती है। सभी पदार्थों के अवयवों के खोखलेपन का यह हाल है कि यदि समूचे संसार के पदार्थ को मींजकर हम इन अणु-परमाणुओं को एक दूसरे से मिला दें, तो हमें एक छोटी नारंगी के बराबर की चीज़ मिलेगी!

अणु-परमाणुओं की दुनिया में प्रवेश किये हुए अभी वैज्ञानिक को ४० वर्ष भी नहीं हो पाये हैं, किंतु इतने अल्प काल में ही उसने आश्चर्यजनक रहस्यों का पता लगा लिया है। आज दिन जहाँ दूरदर्शक के द्वारा उसने इस सृष्टि के व्यापक महान् रूप के अनंतत्व का आभास पा लिया है, वहाँ सूक्ष्मदर्शक उसे इस अद्भुत् विश्व के सूक्ष्म रूप—अणु-परमाणुओं—के अनंतत्व की एक झलक दिखाकर चक्कर में डाल रहा है। मनुष्य के चिरसंचित स्वप्नों को वह आज सच बनाने जा रहा है। उसके हाथ पारस पत्थर लग गया है। उसे पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में वह सभी मौलिक पदार्थों को भी एक दूसरे में परिणत कर सकेगा।
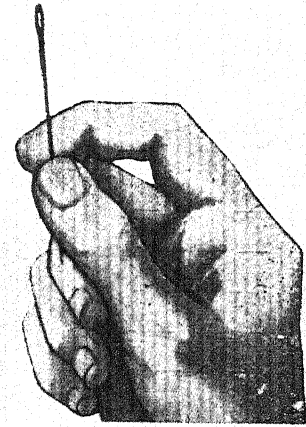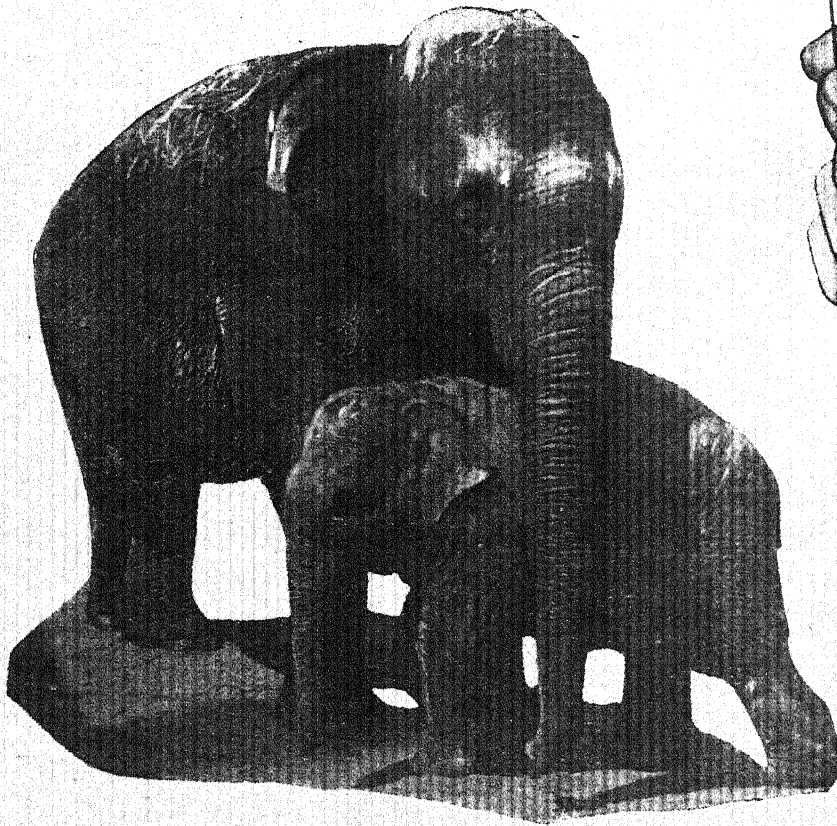
द्रव्य का खोखलापन

पदार्थों के अवयवों के खोखलापन का यह हाल है कि यदि इस हाथी और उसके बच्चे के शरीर के परमाणुओं को मींजकर एक दूसरे में मिला दें तो केवल इतना द्रव्य रहेगा जो एक सुई के छेद में से निकाला जा सके!

रसायन क्या है ?

जिससे इस अद्भुत विश्व की रचना हुई है उस मूल द्रव्य के विभिन्न रूपों, गुणों, और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होनेवाली रासायनिक क्रियाओं की विवेचना।

यदि हम थोड़ा-सा विचार करें, तो हमें इस बात का अनायास ही अनुभव हो सकता है कि सारी सृष्टि का निर्माण दो वस्तुओं से हुआ है। एक तो अनंत आकाश (endless Space) और दूसरे, उनमें स्थित वह वस्तु, जिसका अनुभव हम अपनी ज्ञानेंद्रियों से कर सकते हैं, जो जगह घेरती है और जिसका भार हम तौल कर निकाल सकते हैं। इस दूसरी वस्तु को हम द्रव्य (matter) कहते हैं। पत्थर, पानी, लकड़ी, हवा, लोहा, कोयला, हमारा शरीर आदि सभी द्रव्य से बने हैं। क्योंकि इनमें द्रव्य के सभी गुण पाये जाते हैं। लेकिन जब हम इस द्रव्य को परखते हैं, तो हमें उसमें सहस्त्रों प्रकार के रंग, रूप और गुण दृष्टिगोचर होते हैं। कोई लाल है, तो कोई पीला ; कोई चमकदार है, तो कोई धुँधला ; कोई ठोस है, तो कोई तरल, या वाष्परूप ; कोई मीठा है, तो कोई खट्टा ; कोई भारी है, तो कोई हलका ; किसी में गर्मी और बिजली दौड़ती है, तो किसी में नहीं ; किसी में एक ही प्रकार का द्रव्य पाया जाता है, तो किसी द्रव्य के विभिन्न प्रकारों का संयोग ; किसी में किसी प्रकार का परिवर्त्तन होता है, तो किसी में किसी प्रकार का।

मनुष्य सदा से ही द्रव्य के इन विभिन्न गुणों का निरीक्षण करता रहा है, और इन गुणों और अपनी बुद्धि के अनुसार द्रव्य के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण भी। किसी प्रकार के द्रव्य को उसने ठोस कहा, तो किसी को तरल ; किसी को धातु (metal) कहा, तो किसी को अधातु (non-metal) ; किसी को अम्ल (acid) कहा, तो किसी को खार (alkali)। जो वस्तु द्रव्य के दो या अधिक प्रकारों में पृथक् न हो सकी और जिसमें एक ही प्रकार का द्रव्य पाया गया, उसका नाम मूल तत्त्व (element) पड़ा ; और जो पदार्थ द्रव्य के दो या अधिक प्रकारों में पृथक् हो सका, अथवा जो द्रव्य के दो या अधिक प्रकारों से बना हुआ पाया गया, वह संयुक्त पदार्थ (compound) कहलाया। द्रव्य के नये-नये प्रकारों के आविष्कार और उनके गुणों के निरीक्षण के साथ उनका वर्गीकरण भी होता जा रहा है। मनुष्य द्वारा द्रव्य के वर्गीकरण का यह प्रयास रसायन-शास्त्र का एक अंग है।

परंतु इस निरीक्षणात्मक परीक्षा के बाद इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि आख़िर द्रव्य में इस विभिन्नता का कारण क्या ? क्या बात है कि हवा पानी से, शकर नमक से, लकड़ी लोहे से, पत्थर हीरे से, तथा सोना कोयले से इतना अधिक विभिन्न है ? इस जिज्ञासा ने मनुष्य की बुद्धि को द्रव्य की रचना (composition) की ओर आकर्षित किया। आज प्रारंभिक रसायन के जाननेवालों को भी यह ज्ञात है कि हवा मुख्यतः दो मूल गैसों, 'नाइट्रोजन' और 'आक्सिजन', का मिश्रण है ; पानी दो अदृश्य मूल गैसों, 'आक्सिजन', और 'हाइड्रोजन', के रासायनिक संयोग से बना है ; शकर, मैदा और रुई, ये तीनों वस्तुएँ पानी के अवयवों ('हाइड्रोजन' और 'आक्सिजन') और 'कार्बन' (कोयले का मूल तत्त्व) के संयोग से बनी हैं ; नमक, हमारे दैनिक जीवन की एक साधारण वस्तु है, दो ऐसे मूल पदार्थों से बना हुआ है, जिनसे साधारण लोग नितांत अपरिचित रहते हैं, यानी पहला 'सोडियम', जो एक विचित्र धातु है और जो हवा और पानी में रखने से इतनी शीघ्रता के साथ अन्य संयुक्त पदार्थों में परिणत हो जाती है कि उसे मिट्टी के तेल में रक्खा जाता है, और दूसरा 'क्लोरीन' जो पीलापन लिये हुए

और स्फुरित हो रही है। सृष्टि के सारे कार्यों का समावेश हम परिवर्त्तन में ही पाते हैं। स्वयं हमारा जन्म, जीवन और मृत्यु अविरत परिवर्त्तन के ही उदाहरण हैं। हमारे शरीर का निर्माण होता है, बचपन से यौवन और यौवन से वृद्धावस्था आती है, और फिर मृत्यु के बाद शरीर मिट्टी में मिल जाता है। इसी प्रकार पेड़ और पौधे उगते हैं, फूल खिलते हैं और फिर सूखकर अथवा मुरझाकर धूल में मिल जाते हैं। वास्तव में संसार की कोई भी वस्तु सदा के लिए अपरिवर्त्तित नहीं रह सकती। लकड़ी, कोयला तथा अनेक अन्य वस्तुएँ जलने से भस्म हो जाती हैं; लोहा खुले में छोड़ देने से मोर्चे में बदल जाता है; दूध रख देने से दही में परिणत हो जाता है; हवा हमारे फेफड़ों में पहुँचकर परिवर्त्तित रूप में बाहर निकलती है; भोजन के रूप में खाई जानेवाली वस्तुएँ शरीर के अंदर पचकर रक्त, मांस और हड्डियों में बदलती हैं;

सेब काटकर खुला रखने पर गेरुवा रंग का क्यों हो जाता है ?

कोयला हवा में रखने पर क्यों धधकता है ?

कोई भी जानवर दौड़ते-चलते वक्त आवश्यक शक्ति कहाँ से पाता है ? किस प्रकार उसका खाया हुआ आहार रक्त, मांस और हड्डियों में बदल जाता है ?

किसी बरतन में कुछ घंटे रखे रहने पर आप ही आप दूध जमकर दही-जैसा क्यों बन जाता है ?

भीगा चाकू हवा में रखने पर क्यों मोर्चा खा जाता है ?
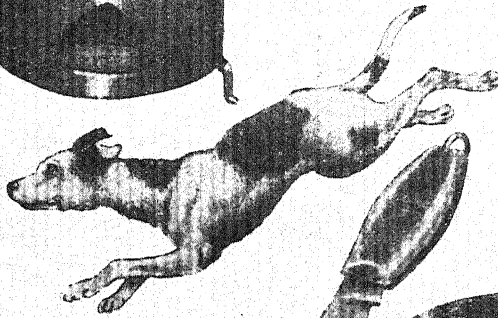
हलके हरे रंग की गैस होती है और जो सूँघने में कर्कश और विषाक्त होती है; लकड़ी में भी मुख्यतया कोयला और पानी के तत्त्व ('कार्बन', 'हाइड्रोजन' और 'ऑक्सिजन') ही रहते हैं; परंतु लोहा और सोना स्वयं मूल धातु हैं, जिनसे दो या अधिक वस्तुएँ नहीं निकाली जा सकतीं; संगमरमर पत्थर तीन मूल पदार्थों के संघात से बना है, अर्थात् 'कैल्शियम' धातु (जो चूने में रहती है), 'कार्बन' और 'आक्सिजन' गैस; किंतु हीरा शुद्ध कोयले ('कार्बन') का ही एक दूसरा रूप है। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के रचना-ज्ञान को प्राप्त करने का मानव प्रयास रसायन विज्ञान का दूसरा अंग है।

हमारा निरीक्षण केवल द्रव्य के रूप-रंग और गुणों ही तक सीमित नहीं रह सकता था। हम देखते हैं कि सारी द्रव्यमय सृष्टि भाँति-भाँति के परिवर्त्तनों द्वारा परिचालित

पौधा हवा और रोशनी ही में क्यों फलता-फूलता है ?

दियासलाई रगड़ने से क्यों आग पैदा हो जाती है ?

नित्य हमारे आस-पास होनेवाली रासायनिक क्रियाओं के कुछ उदाहरण

और हवा, पानी और खाद के परिवर्त्तनमय संयोग से पेड़-पौधों का कलेवर बन जाता है। इस परिवर्त्तन-शीलता पर दार्शनिक व साहित्यिक उद्गार प्रकट करने के बाद मनुष्य में उसके वैज्ञानिक कारणों को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई, और बड़ी ही कठिनाइयों और असफलताओं के बाद वह इन परिवर्त्तनों के रहस्य का ठीक-ठीक वैज्ञानिक उद्घाटन कर सका। इसके फलस्वरूप अब हम जानते हैं कि प्रत्येक मूल तत्त्व, जिससे भाँति-भाँति के द्रव्य बनते हैं, बहुत ही छोटे-छोटे कणों के समूहों से बना है। यह कण इतने छोटे होते हैं कि तेज़-से-तेज़ सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी हम उन्हें नहीं देख सकते। संसार के अनेकानेक परिवर्त्तन इन्हीं परमाणुओं की विभिन्न क्रियाओं, संयोग अथवा वियोग द्वारा हुआ करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए। कोयला जलता है तो कहाँ चला जाता है? वह ग़ायब नहीं होता और न उसका नाश ही होता है। वैज्ञानिक तथ्य तो यह है कि द्रव्य का नाश होता ही नहीं। वह कोयला तो ऐसे गैसीय पदार्थ में परिणत हो जाता है, जिसको हवा में मिलते हुए हम देख नहीं सकते। इस गैस का नाम 'कार्बन डाइआक्साइड' (carbon dioxide) है। 'कार्बन' मूल तत्त्व के दो परमाणु और हवा के 'आक्सिजन' मूल तत्त्व के दो परमाणुओं के संयुक्त होने से यह गैस बनती है और इस प्रतिक्रिया में गर्मी के रूप में इतनी शक्ति की उत्पत्ति होती है, जिससे हम पानी उबाल सकते हैं, खाना पका सकते हैं, या मशीन चला सकते हैं। कोयले में जो न जल सकनेवाली चीज़ें रहती हैं, वही राख के रूप में शेष रह जाती हैं। हमारे कुछ पाठकों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि ठीक इसी प्रकार से हमारे शरीर को गरमी और काम करने की शक्ति मिलती है। ऊपर यह बताया जा चुका है कि खाद्य पदार्थों, जैसे आटा और शकर में 'कार्बन' रहता है। यह 'कार्बन' हमारे रुधिर में संयुक्त होकर हमारे फेफड़ों में पहुँचता है। फेफड़े में साँस लेने से हवा पहुँचती है और उसकी 'आक्सिजन' 'कार्बन' से मिलकर 'कार्बन डाइआक्साइड' बना देती है जो साँस छोड़ने पर बाहर निकल आती है। इस प्रतिक्रिया में जो गर्मी पैदा होती है, वही हमारे शरीर को गर्म रखती है और हमें इंजिन की तरह काम करने की शक्ति देती है। जिस प्रकार इंजिन को परिचालित करने के लिए कोयले और पानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को जीवित रखने के लिए ऐसे खाद्य पदार्थों की ज़रूरत होती है, जिनमें कोयला (कार्बन) और पानी के

क्या द्रव्य का विनाश भी होता है?

जब लकड़ी या कोयला जलता है, तो केवल थोड़ी राख बच रहती है। तो बाक़ी का अंश कहाँ चला गया? वैज्ञानिक तथ्य यह है कि द्रव्य का नाश कभी नहीं होता। लकड़ी या कोयला के जलने में एक विशेष रासायनिक क्रिया मात्र होती है, जिससे उसका कुछ अंश ऐसे गैसीय पदार्थ में परिणत हो जाता है जिसे हम हवा में मिलते हुए देख नहीं सकते।

संयोग से बने हुए पदार्थ रहते हैं। चावल, आटा, शकर, आलू, साबूदाना, मक्खन आदि में मुख्यतः 'कार्बन' और पानी ही संयुक्त रूप में रहते हैं। अंतर केवल यही होता है कि मशीनों के पुर्ज़े कारीगर लोग बदलते रहते हैं, लेकिन शरीर के इस अभाव की स्वयं भोजन ही, प्रोटीन आदि अपने अन्य अंशों द्वारा, पूर्ति किया करता है। लकड़ी के जलने की क्रिया उतनी सादी नहीं है, जितनी कोयले की। लकड़ी में जो 'कार्बन' होता है, वह 'कार्बन डाइ-आक्साइड' गैस में परिणत होकर हवा में मिल जाता है, उसका पानी भाप के रूप में परिवर्त्तित होकर उड़ जाता है और उसकी 'हाइड्रोजन' भी हवा की 'आक्सिजन' से मिलकर जल-वाष्प में बदल जाती है। लकड़ी यदि थोड़ी हवा देकर ही जलाई जाती है, तो वह कोयले में बदल जाती है ; क्योंकि इस कोयले को जलाने के लिए पर्याप्त 'आक्सिजन' नहीं मिलती। पृथ्वी के अंदर कोयले की खानों की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है ; अंतर केवल इतना ही है कि पहला परिवर्त्तन शीघ्रता से होता है, किंतु दूसरा 'आक्सिजन' और गर्मी की कमी के कारण युगों में समाप्त होता है।

इस प्रकार मनुष्य और जंतुओं के फेफड़ों से और कोयला, लकड़ी आदि जलने से जो 'कार्बन डाइआक्साइड' गैस निकलती है, वही वनस्पति वर्ग का भोजन हो जाती है। पेड़ अपनी पत्तियों के छिद्रों (stomata) से साँस लेते हैं और जो 'कार्बन डाइआक्साइड' हवा के साथ मिलकर उनकी हरी पत्तियों में पहुँचती है, उसका कार्बन वे ले लेते हैं और 'आक्सिजन' बाहर निकाल देते हैं। इस कार्य को करने के लिए शक्ति उन्हें सूर्य की किरणों से मिलती है। और जिस यंत्र द्वारा यह कार्य होता है, वह पत्तियों का हरा पदार्थ 'क्लोरोफ़िल' (chlorophyll) है। इस 'कार्बन' का संयोग पेड़ों की जड़ द्वारा आये हुए पानी से होता है, जिससे पेड़ों में पाये जानेवाले पदार्थ—मैदा (माँड़ी), शकर, रेशे आदि—बन जाते हैं। जड़ द्वारा पानी के साथ-साथ जिस खाद का शोषण वृक्ष करते हैं, उससे उनके कलेवर के 'प्रोटीन', लवण आदि बनते हैं।

अब कुछ छोटे-छोटे परिवर्त्तनों को लीजिए। लोहा हवा और पानी में छोड़ देने से एक भूरे-लाल मोर्चे में बदल जाता है। इसका कारण यह है कि लोहे के दो परमाणु हवा और नमी के संपर्क से 'आक्सिजन' के तीन परमाणुओं से संयुक्त हो जाता है, और इस प्रकार जो संयुक्त पदार्थ बनता है, उसी को लोहे का मोर्चा अथवा 'फ़ेरिक आक्साइड' (लैटिन, फ़ेरम=लोहा ; फ़ेरिक=लोहे का) कहते हैं। 'मैग्नेशियम' धातु के रिबन के एक टुकड़े को चिमटी से पकड़कर जलाइए। वह चकाचौंध करनेवाले उजाले और सफ़ेद धुआँ के साथ जल उठता है और 'मैग्नेशियम' की जगह पर एक सफ़ेद बुकनी बन जाती है। यह परिवर्त्तन कैसे हुआ और यह कौन-सी वस्तु बन गई ? यह सिद्ध है कि यह परिवर्त्तन 'मैग्नेशियम' धातु और 'आक्सिजन' गैस के योग से होता है। 'मैग्नेशियम का एक परमाणु 'आक्सिजन' के एक परमाणु से संयुक्त होता है और 'मैग्नेशियम आक्साइड' का एक कण बन जाता है। इस प्रकार के, जैसे—'कार्बन डाइआक्साइड', पानी, 'फेरिक आक्साइड', 'मैग्नेशियम आक्साइड'—के कणों को अणु (molecule) कहते हैं। मूलतत्त्वों के भी अणु होते हैं। जैसे, आक्सिजन गैस के प्रत्येक अणु में दो परमाणु संयुक्त रूप में रहते हैं। साधारण दशाओं में 'आक्सिजन' गैस का अस्तित्व इन्हीं अणुओं में होता है।

यहाँ कुछ उदाहरणों द्वारा मैंने यह संक्षेप में बता दिया है कि वैज्ञानिक मनुष्य ने किस प्रकार सफलता के साथ पदार्थों के परिवर्त्तन के रहस्यों का उद्घाटन किया है। हम देखते हैं कि इस प्रकार के परिवर्त्तन द्रव्य के विभिन्न प्रकारों के संपर्क अथवा पृथक् होने से हुआ करते हैं। रसायन विज्ञान का तीसरा कार्य द्रव्य की इन क्रियाओं अथवा पारस्परिक प्रतिक्रियाओं पर प्रकाश डालना है।

अतः रसायन मनुष्य का वह वैज्ञानिक प्रयास है, जो द्रव्य के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण, उनकी रचना, तथा उनकी क्रियाओं और पारस्परिक प्रतिक्रियाओं से संबंध रखता है।

इस युग में रसायन विज्ञान का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। विभिन्न धातुओं, मशीनों और यंत्रों का बनाना इसी विज्ञान के प्रयोग से संभव है। सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, 'प्लैटिनम', 'रेडियम', 'अलुमीनियम', राँगा आदि बहुमूल्य धातुएँ ; शीशा, साबुन, रंग, रासायनिक खादें, शकर, औषधियाँ, सीमेंट, चूना आदि अनेकानेक उपयोगी चीज़ें ; मनुष्य के लिए नितांत उपयोगी, किंतु साथ-ही-साथ मानव-युद्ध को भीषण रूप देनेवाले विस्फोटक पदार्थ आदि, इस युग की सहस्रों वस्तुएँ इसी विज्ञान के द्वारा मनुष्य को उपलब्ध हो सकी हैं। मनुष्य का ऐसा कोई निर्माणात्मक कार्य नहीं है, जिसमें इस विज्ञान का प्रयोग न होता हो। यदि इस विज्ञान का विकास न हुआ होता, तो मनुष्य, वास्तव में, अब भी पत्थर के युग में ही पड़ा होता।

जिज्ञासा

एक अद्भुत पहेली की तरह हज़ारों वर्षों से मनुष्य के मस्तिष्क को उलझन में डाले हुए अचरज-भरे सृष्टि-प्रपंच के वास्तविक रहस्य के संबंध में अब तक के संचित तत्त्व-ज्ञान का विवेचन।

मैं कौन हूँ, यह सृष्टि क्या है, इसका बनानेवाला कौन है, यह कब बनी और कब इसका अन्त होगा, मैं स्वयं भविष्य में रहूँगा या नहीं, इससे पूर्व मेरा अस्तित्व था या नहीं, मैं सुखी क्यों हूँ, प्राणी दुःखी क्यों हैं, उनके कर्मों का फल होता है या नहीं, सच्चा सुख क्या है, मनुष्य का प्रकृति के साथ क्या संबंध है, इंद्रियों से होनेवाला ज्ञान विश्वास के योग्य है या नहीं—इस प्रकार के असंख्य प्रश्नों की जिज्ञासा से दार्शनिक विचार का जन्म होता है। मनुष्य को जब से अपने इतिहास का ज्ञान है, तब से आज तक कोई समय ऐसा नहीं हुआ, जब उसकी मननात्मक प्रवृत्ति ने उसे चैन से बैठने दिया हो। विचारों का बवंडर न केवल संसार के दुःखों से पीड़ित प्राणी को ही झकझोरता है, वरन् कभी-कभी सब प्रकार से सुखी मनुष्य के मन में भी उथल-पुथल मचा डालता है। यह आँधी जितनी बलवती होती है, उतनी ही गहराई से मनुष्य विचार करने पर विवश होता है। 'कस्त्वं कोऽहम्' की मीमांसा मनुष्य के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि अन्नवस्त्रादिक के द्वारा उसकी सामान्य रहन-सहन। गौतम बुद्ध के जीवन से हम इस नियम की सत्यता को समझ सकते हैं। एकछत्र राज्य का अपरिमित वैभव जिस विलास की सामग्री को उपस्थित कर सकता है, उसके बीच सुकुमारता से पले हुए राजकुमार सिद्धार्थ को कोई भी प्रलोभन विषयोपभोग के बंधन में बाँधकर नहीं रख सका। जिस समय मनुष्य के मन में ऊपर कहे हुए विचारों का चक्र चलता है, विषयों का मधुर आस्वाद उसे विष के समान जान पड़ता है। विचारों की वह झंझावात ही सच्ची जिज्ञासा है। इस प्रकार की जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। यह जिज्ञासा दिव्य अग्नि के समान है। इससे दग्ध मनुष्य का हृदय ही सत्य की प्राप्ति का एकमात्र पुण्य-स्थल है।

भारतीय दर्शन का सूत्रपात करनेवाले मनीषियों ने जिज्ञासा को बड़ा महत्त्व दिया है। 'जिज्ञासु' पद हमारे यहाँ एक विशेष अधिकार को सूचित करता है। जो जिज्ञासु नहीं है, जिसमें 'जानने' की भूख नहीं है, वह दार्शनिक ज्ञान का अधिकारी नहीं माना जा सकता। बहुधा जब हम अपने संबंध से अथवा अन्य किसी के संबंध से मृत्यु के नाटक के अति सन्निकट होते हैं, तब हमारी जिज्ञासा-वृत्ति जागरूक हो उठती है और उस समय 'कस्त्वं कोऽहम्' के प्रश्न हमें सच्चे और आवश्यक जान पड़ते हैं। हमारे साहित्य में जिज्ञासा-वृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण नचिकेता* है। उसकी जिज्ञासा का उदय भी यम के सान्निध्य में होता है। नचिकेता [न + चिकेतस्] शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसके अंदर जानने की उत्कट इच्छा हो परंतु जो जानता न हो। जिज्ञासा के वर को नचिकेता सर्वश्रेष्ठ समझता है:—

नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् [कठ उपनिषद् १ । २२]

---

* इसका उपाख्यान कठ उपनिषद् में है। यह वाजश्रवा ऋषि का पुत्र था। एक बार ऋषि ने दक्षिणा में अपना सर्वस्व दे डाला। तब पिता से यह बार-बार पूछने लगा कि 'मुझे किसको दे रहे हैं?' पिता ने रोष में कह दिया कि मैं तुम्हें मृत्यु को अर्पित करता हूँ। इस पर नचिकेता यम (मृत्यु) के पास चला गया। यम से उसने 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये। यम ने तरह-तरह के प्रलोभन देकर इस जिज्ञासा को छोड़ देने के लिए उसे फुसलाया, किन्तु नचिकेता ने अपनी टेक न छोड़ी और तीन दिन तक निराहार रहकर कठोर सत्याग्रह किया। अंत में यम ने उसे 'ब्रह्मज्ञान' का उपदेश दिया।

अर्थात् मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व है या नहीं, प्राणी का स्वरूप क्षणभंगुर है अथवा नित्य तत्त्ववाला है—इस प्रश्न के समान अन्य कोई प्रश्न नहीं है, इसीलिए इस शंका के समाधान का वरदान ही सर्वातीत है। नचिकेता के प्रलोभन के लिए यमराज उसके सामने अनेक कामनाएँ रखता है—चिरजीवी पुत्र-पौत्र, बहुत-से पशु-सवारियाँ, अमित धन-राशि, पृथ्वी का राज्य, सुंदर स्त्रियाँ, कल्पांत आयु—जितने भी मर्त्यलोक के दुर्लभ काम हैं, हे जिज्ञासु, उनको अपनी इच्छानुसार तुम चुन सकते हो। यही वैभव तो गौतम बुद्ध के सामने भी था। परंतु दार्शनिक प्रश्नों की मीमांसा इस लौकिक सामग्री से कभी संभव नहीं। नचिकेता ने जो उत्तर दिया था, वह उत्तर दार्शनिक संसार के प्रमुख तोरणद्वार पर आज भी अमिट अक्षरों में लिखा हुआ है—यदि मनुष्य का मरण ध्रुव है, तो उसके लिए ये अनित्य पदार्थ किस काम के हैं? इनसे इंद्रियों का तेज क्रमशः क्षीण होता रहता है। जीवन की अवधि स्वल्प है, इसमें नृत्य-गीत के लिए स्थान कहाँ? चाँदी और सोने के रुपहले-सुनहले टुकड़ों से कब मनुष्य का पेट भरा है *? सुनहरी दलदल में पड़ने से पहले ही उस महान् प्रश्न का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न करना उचित है।

यह मनःस्थिति ही सच्ची जिज्ञासा है। हमारे दार्शनिक साहित्य में कठ उपनिषद् का नचिकेता-उपाख्यान इसीलिए महत्त्वपूर्ण है। जितने ज्वलंत रूप में दार्शनिक जिज्ञासा का परिचय हमें यहाँ मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। इस बात में संदेह है कि संसार के दार्शनिक इतिहास में अन्य किसी भी देश में जिज्ञासा के महत्त्व और स्वरूप को समझने का ऐसा सुन्दर प्रयत्न किया गया हो। जिज्ञासा के साथ दार्शनिक विचारों की उद्भावना व्योमविहारी पक्षिराज गरुड़ की उड़ान के सदृश है। बिना सच्ची जिज्ञासा के तत्त्वज्ञान की उधेड़-बुन बुद्धि का कुतूहल-मात्र रह जाता है। दिमाग़ की पैंतरेबाज़ी से जिस दर्शन का जन्म होता है, उसे भारतीय परिभाषा के अनुसार 'दर्शन' कह सकना कठिन है। हम यह नहीं कहते कि इस प्रकार दिमाग़ पर ज़ोर डालकर दर्शन की सृष्टि यहाँ कभी नहीं की गई; हमारा आशय तो इतना ही है कि जिज्ञासा के बाद जो तत्त्व-ज्ञान की मीमांसा की जाती है, उसके और शुष्क दर्शन के भेद को ठीक तरह समझ लिया जाय।

यदि उपरोक्त दो प्रकार की परिस्थिति में पनपनेवाली दार्शनिक विचारधाराओं के भेद की गहरी छानबीन की जाय तो हम दो परिणामों पर पहुँचते हैं। पहला भेद तो दर्शन की परिभाषा से संबंध रखता है और दूसरा उसके फल से। यहाँ पर हमको दर्शन के लिए जो अँगरेज़ी शब्द है, उसके साथ भी परिचय प्राप्त करना चाहिए। अँगरेज़ी में दर्शन को philosophy (फ़िलासफ़ी) कहते हैं। पश्चिम की अन्य भाषाओं में भी प्रायः यही शब्द व्यवहृत होता। जिस प्रकार पाश्चात्य दर्शन का आरंभ सर्वसम्मति से यूनान में हुआ, उसी प्रकार 'फ़िलासफ़ी' शब्द भी यूनानी भाषा से लिया गया है। यूनानी शब्द philo-sophia का अर्थ है ज्ञान (*sophia*=wisdom) का प्रेम (*philo*=love)। ज्ञान का तात्पर्य बुद्धिकृत मीमांसा से है। तत्संबंधी रुचि ही philosophy है। इसके विपरीत भारतीय शब्द है 'दर्शन', जिसका अर्थ है 'देखना' अर्थात् तत्त्व का साक्षात्कार करना। ज्ञान के जिस विवेचन में सत्य या तत्त्व को स्वयं न देखा जाय, उसे 'दर्शन' कहना कठिन है। वही तत्त्व सत्य है, जिसके संबंध में हम यह कह सकें कि वह हमारा साक्षात्कृत है, यह हमारे अनुभव का विषय है अर्थात् यह हमारा 'दर्शन' है। बुद्ध भगवान् अपने उपदेशों में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया करते थे कि मैं जिस मार्ग का शास्ता हूँ, मैंने उसे स्वयं देख लिया है। जब तक किसी उपदेष्टा या ज्ञानी की ऐसी विश्वस्त स्थिति न हो, तब तक वह मानव जीवन के लिए असंदिग्ध या महत्त्वपूर्ण तत्त्व का व्याख्यान नहीं कर सकता। दर्शन का संबंध जीवन के साथ अति घनिष्ठ है। जीवन में आत्मकृत अनुभव के बिना तेजस्वी दर्शन का जन्म नहीं होता। इस देश में तो जिस समय भी दर्शन की पहली ज्ञान-रश्मियाँ प्रस्फुटित हुई थीं, उसी समय यह बात जान ली गई थी कि दर्शन का अर्थ साक्षात्कार है! हमारी परिभाषा में प्राचीनतम ज्ञानियों का नाम ऋषि है। संस्कृत-भाषा में जो अद्भुत निरुक्तशास्त्र की सामर्थ्य है, उसके द्वारा 'ऋषि' शब्द 'दार्शनिक' के अभिप्राय को यथार्थ रूप से प्रकट कर देता है। यास्काचार्य ने लिखा है:—

ऋषिर्दर्शनात् (निरुक्त २।११)

अर्थात् ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा (देखनेवाला)! शुष्क ऊहापोह करनेवाला तार्किक भारतीय अर्थ में 'दार्शनिक' की पदवी का अधिकारी नहीं बनता। दार्शनिक बनने के लिए 'दर्शन' होना चाहिए, अथवा और भी पवित्र शब्दों में कहें, तो 'ऋषित्व' होना आवश्यक है। इस देश की परिपाटी के अनुसार जो व्यक्ति अपने आपको ज्ञान का

* न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः (कठ उपनिषद् १।२७)

नचिकेता और यम

इस बात में संदेह है कि संसार के दार्शनिक इतिहास में अन्य किसी भी देश में जिज्ञासा के महत्त्व और स्वरूप को समझने का ऐसा सुन्दर प्रयत्न किया गया हो, जैसा कि हमारे दार्शनिक साहित्य में कठ उपनिषद् के नचिकेता-उपाख्यान में मिलता है। वास्तव में यह एक रूपक है। 'नचिकेता' शब्द यथार्थ जिज्ञासु का सूचक है और यह जिज्ञासा-वृत्ति मनुष्य में प्रायः मृत्यु (यम) के सन्निकट होने अर्थात् मृत्यु का भय उपस्थित होने पर जागरुक हो उठती है। [विशेष विवरण के लिए देखो पृष्ठ २१ के नीचे दिया हुआ नोट]

अधिकारी कहे, उसे यह कहने का सामर्थ्य पहले होना चाहिए कि 'मैंने ऐसा देखा है।' यजुर्वेद के शब्दों में सच्चा दार्शनिक वही है, जो यह कह सके—*'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्'* अर्थात् 'मैं इस महान् पुरुष को जानता हूँ, जो आदित्य के समान भास्वर और तम से अतीत है।' 'एवं मयाश्रुतं' कहनेवाले के पास स्वयं अपने दर्शन का अभाव है। जीवन तो आत्मानुभव का नाम है। दूसरे के दर्शन से अपनी तृप्ति त्रिकाल में भी संभव नहीं।

हमारे साहित्य में दर्शन के लिए प्राचीन शब्द 'आन्वीक्षिकी' प्रतीत होता है। चाणक्य के अर्थशास्त्र में विद्याओं का वर्गीकरण करते समय आन्वीक्षिकी पद का ही प्रयोग किया है। आन्वीक्षिकी शब्द में भी [अनु+ईक्ष] ईक्षण या देखने का भाव है। डॉ० बैटी हाइमान ने भारतीय विचार-प्रणाली की विशेषता का अध्ययन करते हुए इन परिभाषात्मक शब्दों के विषय में ठीक ही लिखा है—

"यदि हम पाश्चात्य शब्द Philosophy और उसके संस्कृत पर्याय पर विचार करें, तो दोनों का मौलिक भेद तुरंत प्रकट हो जाता है। यूनानी शब्द *philo-sophia* का शब्दार्थ है 'ज्ञान का प्रेम' अर्थात् मानव तर्क, उसका क्षेत्र, व्यवसायात्मक निश्चय एवं विशेषता की परख। इसके प्रतिकूल संस्कृत शब्द 'आन्वीक्षिकी' का तात्पर्य है पदार्थों का ईक्षण, अर्थात् सृष्टि के जितने पदार्थ हैं, उनके मार्ग से चलकर तत्त्व वस्तु की खोज या तत्त्व-निदिध्यासन। संसार के पदार्थ हमारे ईक्षण का विषय इसलिए बनते हैं कि हम उनके द्वारा तत्त्व का ध्यान कर सकें, केवल पदार्थों की छानबीन या वर्गीकरण ही हमारा ध्येय नहीं।"

सच्ची जिज्ञासा के कारण जो 'कस्त्वं कोऽहम्' प्रश्नों की मीमांसा की जाती है, उसके अनुसार 'दर्शन' शब्द की परिभाषा का ऊपर स्पष्टीकरण किया गया है। दर्शन का मानव जीवन पर जो परिणाम या फल होता है, उसका भी जिज्ञासा के साथ गहरा संबंध है। जिज्ञासु के लिए दर्शन बुद्धि का कुतूहल नहीं। वह कमरे के भीतर बंद होकर कुर्सी पर बैठा हुआ अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। उपनिषद् में जो यह कहा है कि यह आत्मतत्त्व केवल 'मेधा' या बहुत विद्या पढ़ने (बहुश्रुत होने) से नहीं मिलता, वह जिज्ञासु-मनोवृत्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए है। महाकवि जायसी ने इसी बात को सीधे-सादे शब्दों में यों कहा है—

का भा जोग-कथनि के कथे।
निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥

अर्थात् योग की कथा कहने-सुनने से क्या फल है? बिना दही को मथे घी नहीं निकल सकता। इसलिए भारतीय परम्परा के अनुसार दर्शन या साक्षात्कार की विधि ऐसी ही है, जैसे स्वयं दही मथकर घी निकालना। इस उक्ति से एक जीवन-क्रम का परिचय मिलता है। दूसरे शब्दों में दर्शन का फल 'साधना' है। साधना के ही नामान्तर 'तप' या 'व्रत' या 'दीक्षा' हैं। इसीलिए उपनिषदों ने कहा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अर्थात् सत्य, तप, सात्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहने से ही आत्मतत्त्व का दर्शन हो सकता है।

ये बातें साधना की ओर संकेत करती हैं। जीवन में दर्शन का फल है साधना का उदय। साधना की भावना से सात्विकी श्रद्धा का जन्म होता है। प्रश्नात्मक जिज्ञासा को अश्रद्धा या श्रद्धा का अभाव नहीं समझना चाहिए। जिज्ञासा का अभाव अश्रद्धा है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता से अनुभव का विषय बना सकना यही श्रद्धा का लक्षण है। आत्मविश्वास ही श्रद्धा है। जिज्ञासु को अपनी दृढ़ता में विश्वास होता है। यही उसका पाथेय है।

अपने में अविश्वास का होना यह अश्रद्धा का रूप है। प्रश्नों का उत्पन्न न होना तो तम या मूर्च्छा है। संदेह या प्रश्नों को परास्त करने की शक्ति ही जिज्ञासु की श्रद्धा कहलाती है। जिज्ञासा उत्पन्न हो जाने पर यदि जीवन के क्रम में परिवर्त्तन नहीं होता, तो मानो जिज्ञासु 'दर्शन' या साक्षात्कार के साथ अपना सीधा संबंध जोड़ने से बचना चाहता है। इस दृष्टि से दार्शनिक का जीवन एकान्ततः नैतिक बन जाता है।

दार्शनिक कैंट ने एक स्थान पर कहा है:—

'नीतिमय जीवन का प्रारंभ होने के लिए विचार-क्रम में परिवर्त्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है।'

भारतीय परिभाषा में इस प्रकार के जीवन-क्रम की संज्ञा तप है। इसीलिए तो यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक संप्रदाय जीवन की एक-न-एक साधना की शिक्षा देता है। ज्ञान, कर्म, उपासना अथवा वेदांत-सांख्य-योग सबके साथ एक जीवन-मार्ग का घनिष्ट संबंध है। इसी कारण भारतवर्ष में जीवन से विरहित कोई दर्शन नहीं पनप सका। जिस दर्शन का जीवन के साथ सबसे घनिष्ट संबंध था, वही विचार यहाँ सबसे अधिक फूला-फला।

पृथ्वी की कहानी

पृथ्वी के सम्बन्ध में कुछ धारणाएँ

आरंभ में मनुष्य के पास आज की तरह पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक जाने के साधन नहीं थे कि वह इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता, अतएव उसने कल्पना का सहारा लिया और पृथ्वी के आकार और आधार के सम्बन्ध में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित हो गईं। प्राचीन भारतवासियों का विश्वास था कि पृथ्वी ईश्वर की कला शेषनाग के मस्तक पर टिकी हुई है और उसके बीचोबीच सुमेरु-नामक कई लाख योजन ऊँचा पर्वत है। इस पर्वत के आस-पास थाली की तरह वलयाकार क्रमशः सात द्वीप और उनको घेरनेवाले सात सागर हैं। यूनानियों का विश्वास था कि पृथ्वी एक बड़ी चपटी छत की भाँति है जो बारह खंभों पर टिकी हुई है; ये खंभे 'हरक्यूलीज के खंभे' कहलाते थे। एक मत यह भी था कि शाप के वश एटलस नामक एक दैत्य पृथ्वी को उठाये हुए है। प्राचीन यहूदियों द्वारा पृथ्वी अण्डाकार विश्व का निचला भाग मानी जाती थी। इसी तरह और भी कई मत प्रचलित हो गए।

पृथ्वी के आधार और आकार का दर्शन

उस ग्रह की कहानी जिस पर पैदा होते, मरते, खेलते-कूदते और तरह-तरह के खिलौने बनाते-बिगाड़ते हुए हम इस ब्रह्माण्ड में अनंत शून्य की यात्रा कर रहे हैं।

अपनी क्रीड़ाभूमि पृथ्वी के संबंध में मनुष्य सदैव ही से कौतूहलपूर्ण प्रश्न करता आया है। पृथ्वी कितनी लंबी और चौड़ी है? उसका धरातल कितना गहरा है और उसके भीतर क्या है? पृथ्वी कहाँ और कैसे स्थिर है? वह कब और कैसे उत्पन्न हुई? उसके जन्मकाल से लेकर आज तक उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन हुए हैं? आकाश, तारे और नक्षत्र क्या हैं? सूर्य और पृथ्वी तथा अन्य नक्षत्रों में क्या सम्बन्ध है? आदि प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए मनुष्य अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा-वृत्ति के कारण आदि काल ही से प्रयत्नशील रहा है। प्रकृति की लीलाओं के अध्ययन और मनन के फल-स्वरूप मनुष्य का उपरोक्त विषयों संबंधी ज्ञान नित्य प्रति बढ़ता गया और धीरे-धीरे वह स्वयं ही अपनी अनेकों शंकाओं का समाधान करने योग्य हो गया। परंतु उसकी शंकाओं का कभी अन्त न होने आया। जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ा, जिज्ञासा भी बढ़ती गई।

पृथ्वी के सम्बन्ध में मनुष्य ने जो ज्ञान प्राप्त किया उसे हम 'भूगर्भ-विज्ञान' के नाम से पुकारते हैं। इस विज्ञान का जन्म मनुष्य की पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा के फलस्वरूप हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि पौराणिक काल के विद्वानों ने इस विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का निर्माण किया और पृथ्वी-संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये, परंतु भूगर्भ-विज्ञान के आधुनिक स्वरूप और सिद्धान्तों का विकास प्रारम्भ हुए अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ है। पृथ्वी-सम्बन्धी समस्त बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी विज्ञान की सहायता ली जाती है।

पृथ्वी के गर्भ की ओर

पृथ्वी के गर्भ में छिपी धातुओं की खोज में मनुष्य उसके धरातल के नीचे खानें आदि खोदकर यद्यपि अभी डेढ़-दो मील ही की गहराई तक पहुँच पाया है, फिर भी इसी प्रयत्न में उसे पृथ्वी के भीतर की रचना के सम्बन्ध में काफ़ी ज्ञान प्राप्त हुआ है।

आधुनिक विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ इस विज्ञान का भी विकास हुआ है, और इसका महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है।

भूगर्भ-विज्ञान को अन्य विज्ञानों से तो सहायता मिली ही है परन्तु सबसे बड़ी सहायता उसे मिली खानों की खुदाई से। जिस प्रकार खानों की खुदाई से भूगर्भ-विज्ञान

को सहायता पहुँची है, उसी प्रकार मनुष्य को भूगर्भ-विज्ञान ने सहायता पहुँचाई है। मनुष्य ने इस विज्ञान की बदौलत इस 'रत्नगर्भा' पृथ्वी से जो सम्पत्ति प्राप्त की है, वह अतुल और अनन्त है। आधुनिक विज्ञान को भी भूगर्भ-विज्ञान ने यथेष्ट सहायता पहुँचाई है और सभ्यता के विकास में तो उसका प्रधान हाथ रहा है। कल-युगी सभ्यता का आधार लोहा, कोयला आदि खनिज पदार्थों तथा धातुओं पर किस प्रकार निर्भर है, यह हम सब भली भाँति जानते हैं। हमारे पैरों के नीचे, पृथ्वी के भीतर क्या है, इसी का उत्तर खोजने की धुन में मनुष्य ने इस अपार धनराशि को पाया है। यदि यह कहा जाय कि मानवीय सभ्यता का जन्म पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा तथा भूगर्भ-विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ हुआ, तो असंगत न होगा।

यद्यपि मनुष्य ने पृथ्वी के सम्बन्ध में खोजबीन अति प्राचीन काल से ही आरम्भ की, तथापि उसका ज्ञान पृथ्वी की थोड़ी-सी गहराई तक ही सीमित है। गहरी-से-गहरी खान जो मनुष्य खोद पाया है एक या डेढ़ मील से अधिक गहरी नहीं है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी की इस नगण्य गहराई तक ही सीमित है। वह आज भी यह नहीं जान पाया है कि पृथ्वी के भीतर इस गहराई के बाद क्या है? उसने इस गहराई तक पहुँचने और वहाँ कार्य करने के जो प्रयत्न किये हैं, उनसे उसको यह ज्ञान अवश्य हो गया है कि पृथ्वी का चिप्पड़ किस पदार्थ का बना है। गहराई में जाने पर इस पदार्थ में किस प्रकार परिवर्त्तन होता जाता है, यह उसने सीखा और इसी आधार पर उसने, पृथ्वी के गर्भ में क्या हो सकता है, इसकी कल्पना की है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी का पिण्ड ७६०० मील व्यास के एक विशाल गोले के रूप में है, जिसके नीचे और ऊपर के सिरे चपटे हैं। इस पृथ्वी-पिण्ड के चारों ओर वायुमण्डल का २०० मील के लगभग गहरा पर्त चढ़ा हुआ है। पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग उन्नीस करोड़ सत्तर लाख वर्ग मील है। इसका ७१ प्रतिशत भाग महासागर, समुद्र आदि के रूप में जलमग्न है। शेष भाग भूतल है। भूतल का भाग कई प्रकार के पदार्थों से मिलकर बना है। इन पदार्थों में से कुछ तो सर्वत्र पाये जाते हैं और कुछ किसी विशेष स्थान पर ही। मुख्यतः तीन प्रकार के पदार्थ हैं, जो भूतल को बनाते हैं। एक तो वे जो पर्वत-श्रेणियों में पाये जाते हैं। हिमालय आदि
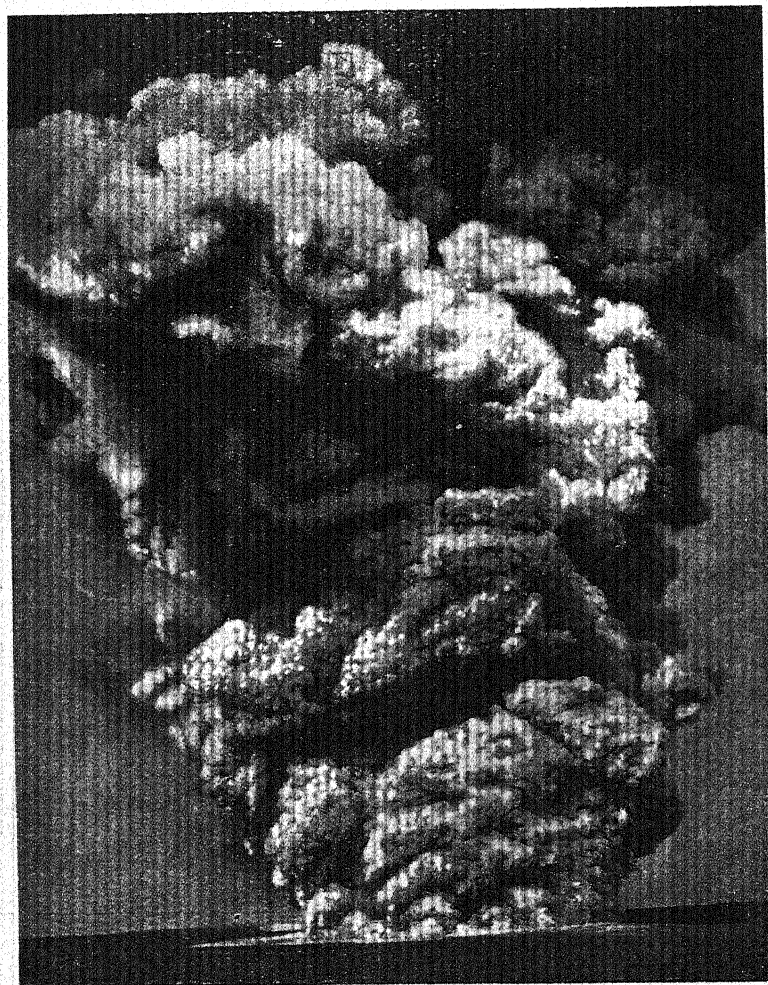
ज्वालामुखी का उद्गार

जो प्रचण्ड आग, धुँआ और पिघली हुई लावा उगल-उगलकर पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई भीषण अग्नि और उसकी लीला की कहानी हमें सुनाता है।

पर्वतों की चट्टानें परतीले शिलाखण्डों की बनी हैं। इन शिलाओं के पर्तों पर कहीं-कहीं ऐसे चिह्न पाये जाते हैं, जिन्हें देखकर अनुमान होता है कि ये प्रस्तरखण्ड किसी समय जल के भीतर रहे होंगे। ये शिलाखण्ड मिट्टी तथा बजरी-जैसे पदार्थ के बने हैं और जमकर गर्मी के दबाव अथवा किसी अन्य कारण से कठोर हो गये हैं, इसके पदार्थ, जो भूतल के बनाने में लगाये गये हैं, वे हैं जो आग्नेय चट्टानों के रूप में कहीं-कहीं पाये जाते हैं। दक्षिण भारत का पठार इसी प्रकार की चट्टानों से बना है। इन चट्टानों के देखने से यह प्रतीत होता है कि किसी समय ये द्रव पदार्थ के रूप में बहती हुई थीं और जमकर कठोर हो गई हैं। तीसरे प्रकार के पदार्थ मिट्टी, बालू, कंकड़ आदि हैं, जो लगभग सारे भूतल में पाये जाते हैं।

धरती खोदने से भी हमें विचित्र प्रकार के अनुभव होते हैं। कहीं तो चट्टानें इतनी कठोर हैं कि उन्हें साधारण औज़ारों की मदद से खोदना असम्भव हो जाता है और विस्फोटक पदार्थों द्वारा उनको तोड़कर खोदना पड़ता है। कहीं पर चट्टानें बहुत ही नरम हैं तथा कहीं पर थोड़ा खोदते ही जल निकलने लगता है। कुछ भागों में खोदने पर केवल मिट्टी-ही-मिट्टी निकलती है और कहीं पर कोयला तथा लोहा-जैसा काला पत्थर। कहीं पर स्फटिक की शिलायें और कहीं पर खनिजभरी चट्टानें। कहीं गन्धक-मिश्रित जल और कहीं मिट्टी का तेल आदि द्रव पदार्थ।

पृथ्वी किस प्रकार निरंतर बदल रही है

यह प्रकृति की अपनी ही क्रिया-प्रक्रिया के फलस्वरूप पर्वतखण्डों में बनी हुई इन सैकड़ों फ़ीट लम्बी विशाल मेहराबों से अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

पृथ्वी के धरातल पर भी विचित्र दृश्य देखने में आते हैं। कहीं तो हिमालय-जैसी गगनचुम्बी पर्वत-श्रेणियाँ, कहीं गंगा-जमुना के मैदान के सदृश समतल भाग, कहीं सहारा-सा मरुस्थल, कहीं दक्षिण भारत-सी कठोर भूमि। कभी भूतल से किसी स्थान पर गरम पानी की धाराएँ बह निकलती हैं, कभी हरा-भरा मैदान मरुभूमि में परिणत हो जाता है। कभी विशालकाय भूमिखण्ड समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाते हैं, तो कभी धराखण्ड समुद्र से निकलकर पर्वतों का रूप धारण कर लेते हैं। कभी ज्वालामुखी पर्वत आग्नेय उद्गार से पृथ्वी-मण्डल को कँपा डालते हैं, तो कभी भूचाल मनुष्य-निर्मित नगरों को तहस-नहस कर देते हैं। पर्वत-श्रेणियाँ कहीं ऊपर उठती हैं, कहीं

नदियों द्वारा कट-कटकर मिट्टी में मिलती जाती हैं। नदियाँ कहीं तो नर्मदा की भाँति सैकड़ों फ़ीट गहरी घाटियों में बहती हैं, कहीं मैदानों में।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति की लीलाओं द्वारा पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता रहता है। कितने युगों से पृथ्वी का रूप बदलता आया है और उसका प्रारम्भिक रूप कैसा था, यह किसी ने नहीं देखा। आज जो शक्तियाँ उसके रूप को बनाती-बिगाड़ती हैं, वे आदि युग में भी इसी प्रकार कार्यशील थीं अथवा नहीं, इसका हमें पता नहीं। आदि मानव ने पृथ्वी का जो रूप देखा था, वह कैसा था, इसका भी हमें कुछ ज्ञान नहीं। इन्हीं बातों को जानने का प्रयत्न भूगर्भ-विज्ञान की सहायता से किया जाता है। जिस प्रकार मनुष्य अपना सामाजिक तथा राजनीतिक इतिहास जानने के लिए मानवीय सभ्यता के चिह्नों को एकत्रित करता है और उनका तात्पर्य समझने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार भूगर्भ-विज्ञानवेत्ता पृथ्वी के इतिहास को जानने के लिए उन साधनों का आश्रय लेता है, जो प्रकृति ने उसके लिए पृथ्वी पर अंकित कर रक्खे हैं। प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक अंग पर उसका इतिहास स्वयं उसी से लिखाया है। नदी-तट के बालू के कणों से लेकर विशाल पर्वत-श्रेणियाँ तक अपनी कहानी सुनाने को तैयार हैं। समुद्र गरज-गरजकर अपनी गहराई और भीतर बनने-वाले पर्वतों के जन्म का हाल सुनाने को तैयार है। ज्वालामुखी का उद्गार बताना चाहता है कि भूगर्भ में क्या छिपा है। भूचाल पृथ्वी की किसी आन्तरिक उथल-पुथल का परिचय देता है। इस प्रकार इनमें से प्रत्येक पृथ्वी की आत्मकथा का एक-एक अध्याय छिपाये हुए हैं। जो कोई भी इनके पास पहुँचता है, उसी को अपने पृष्ठ खोलकर दिखाने के लिए ये तत्पर हैं। इस महान् आत्म-कथा को पढ़ने के लिए आवश्यकता है हम उसके प्रत्येक अंग को ध्यानपूर्वक देखें और फिर उसका मनन करें। आज जो घटनायें हो रही हैं, उन्हीं की सहायता से उसके इतिहास की खोज करें। वर्त्तमान ही के पास भूत-काल की कोठरी की कुंजी है—इसी सिद्धान्त पर भूगर्भ-विज्ञान का अध्ययन निर्भर है।

पृथ्वी के विकास के इतिहास का अध्ययन मनुष्य ने आदि युग से ही आरम्भ किया था। यद्यपि हमारी आज की धारणा हमारे पूर्वजों से सर्वथा भिन्न है तथापि हमें भी यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि हमारी ही बात सबसे अन्तिम है। मनुष्य का ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, उसका मत भी बदलता जाता है। पृथ्वी के सम्बन्ध में मनुष्य के विचार समयानुकूल किस प्रकार बदलते रहे हैं, इसका इतिहास बहुत ही मनोरंजक है।

सभ्यता के आदि युग में जब लोगों का विचरण पृथ्वी के थोड़े-से भाग तक ही सीमित था, उनका विश्वास था कि पृथ्वी चौरस है और इसकी गहराई अनन्त है। पृथ्वी की लम्बाई-चौड़ाई की कल्पना उन लोगों ने नहीं की। परन्तु जब उनके पर्यटन का क्षेत्र बढ़ा और वे समुद्र के किनारे तक पहुँचने लगे, तब पृथ्वी के बारे में उनका विचार भी बदलने लगा। वे पृथ्वी को समुद्र में तैरनेवाली एक विशालकाय वस्तु समझने लगे। अनन्त जलसागर में तैरनेवाली विशालकाय पृथ्वी जब उन्हें तनिक भी हिलती-डुलती न प्रतीत हुई, तब उनका विचार हुआ कि पृथ्वी तैरती नहीं है, वरन् अचल है और एक विशाल वृक्ष की भाँति है, जिसकी जड़ें अनन्त जलराशि के नीचे तक चली गई हैं और किसी अदृश्य स्थान पर जकड़ी हुई हैं।

यह विचार अधिक काल तक स्थिर न रह सका और लोगों के विचारों में फिर परिवर्त्तन हुआ। उन्होंने पृथ्वी के आधार की खोज करना आरम्भ की और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी एक बड़ी चौरस छत की भाँति है, जो बारह खम्भों पर स्थित है। ये खम्भे किस आधार पर टिके हैं, इस सम्बन्ध में वे चुप रहे। परन्तु कुछ लोगों ने यह सिद्धान्त फैलाना आरम्भ किया कि यज्ञ, हवन, बलि-दान आदि धार्मिक कृत्यों के बल पर ये खम्भे स्थित हैं। यदि पृथ्वी पर धार्मिक कृत्य बन्द हो जायँ, तो ये खम्भे एक दिन भी स्थिर न रह सकेंगे और पृथ्वी गिरकर अनन्त पाताल के गर्भ में विलीन हो जायगी। इसी कल्पना के आधार पर भूकम्प का सिद्धान्त ठहराया गया। अर्थात् जब धार्मिक कृत्यों में कमी हो जाती है, तब इन खम्भों की शक्ति क्षीण हो जाती है और पृथ्वी डगमगा जाती है। इसीलिए आजकल भी धर्मात्मा लोग भूकम्प के समय धार्मिक अनुष्ठानादि करने में लिप्त हो जाते हैं। पुराने विचारों के हिन्दुओं में ऐसे ही कुछ विश्वास अब भी प्रच-लित हैं। कैथोलिक मतावलम्बी अब भी पृथ्वी को चपटी मानते हैं। इसी विश्वास के आधार पर योरप में कई ऐसे विद्वानों को जीवित जला तक दिया गया, जो पृथ्वी को गोल कहने का साहस करते थे।

भारतवर्ष में भी पृथ्वी के सम्बन्ध में विभिन्न कालों में विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। हमारे शास्त्रों में पृथ्वी को अचला, अनन्ता, स्थिरा आदि नामों से पुकारा गया है।

इससे पृथ्वी की स्थिति और विस्तार का तो ज्ञान होता है, परन्तु उसके आकार और आधार का पता नहीं लगता। कुछ लोगों का सिद्धान्त था कि पृथ्वी गोल छिलके की भाँति है और चार हाथियों की पीठ पर अवस्थित है और हाथी एक विशाल कच्छप की पीठ पर खड़े हैं। इसी कारण सम्भवतः इसका नाम 'काश्यपी' पड़ा। चीन देश में भी इसी प्रकार का कुछ विश्वास प्रचलित था। तिब्बत के लामा पृथ्वी को मेढ़कों पर रक्खा हुआ मानते हैं।

भागवत पुराण की वाराह अवतार की कथा के प्रसंग में यह कहा गया है कि भगवान् ने पृथ्वी को रसातल से खोज निकाला और जल के ऊपर रख दिया और तब से वह वहीं पर रक्खी हुई है। पृथ्वी के आधार के विषय में कहा जाता है कि वह शेषनाग के फन पर रक्खी हुई है। शेषनाग ब्रह्माजी के आदेश से परोपकारार्थ इस 'चल' पृथ्वी को अपने सिर पर बिना परिश्रम के इस प्रकार धारण किये रहते हैं कि वह तनिक भी हिलती-डुलती नहीं!

आगे चलकर कुछ विद्वानों ने पृथ्वी की अण्डाकार कल्पना की। इस धारणा के अनुसार भी पृथ्वी आधी समुद्र के भीतर जलमग्न है और शेष पर मनुष्य रहते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार पृथ्वी का भिन्न-भिन्न आकार सिद्ध करने की चेष्टा की। किसी ने पृथ्वी को नल के समान, तो किसी ने छः पहलवाली माना। किसी ने पृथ्वी को ख़रबूज़े के समान माना, तो किसी ने ताम्बूलाकार। कोलम्बस ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि पृथ्वी शंखाकार है।

प्रसिद्ध विद्वान् भास्कराचार्य ने बारहवीं शताब्दी में यह सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है और उसमें आकर्षण-शक्ति है। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की परस्पर आकर्षण-शक्ति के कारण ही सब ग्रह निरन्तर निराधार घूमा करते हैं। इस मत की पुष्टि आधुनिक विद्वानों ने भी की है।

पृथ्वी की अद्भुत् आत्मकथा का एक पृष्ठ

प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक अंग पर उसकी जीवन-कथा स्वयं उसी से लिखवाई है। ऊपर के चित्र में आयर्लैंड के उत्तरी समुद्रतट पर प्रकृति द्वारा रची हुई खंभों के टुकड़ों जैसी शिलाओं का अद्भुत् दृश्य है। ये शिलाएँ हज़ारों-लाखों वर्ष पूर्व किसी समय पिघली हुई लावा के एक विशेष रीति से जम जाने से बनी थीं। आज दिन तो ये ऐसी मालूम होती हैं, मानों किसी विशाल घाट के खण्डहर हों!

आधुनिक मतानुसार पृथ्वी नारंगी के समान गोल है और उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों के पास वह चपटी हो गई है। कुछ विद्वानों की गवेषणा तथा खोज के परिणामस्वरूप पृथ्वी का एक नवीन ही आकार माना गया है, जो न पूर्णतया गोल है और न अण्डाकार। इस आकार को 'थिव्याकार' कहें तो ठीक है, क्योंकि उसका अपना निराला ही आकार है। इस आकार की कल्पना इस कारण की गई है कि पृथ्वी का कोई भी अक्षांश—यहाँ तक कि विषुवत् रेखा भी—पूर्ण वृत्त नहीं है।

पृथ्वी के आकार और आधार के विषय में तो लोगों ने भाँति-भाँति की कल्पना की, परन्तु उसके भीतर क्या है, इसके बारे में लोग बहुत कम जान पाये। कुछ लोगों ने पृथ्वी को खोखला और कुछ ने पृथ्वी को ठोस माना। मार्शल गार्डनर नामक भूविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् के मतानुसार पृथ्वी खोखला पिण्ड है। इसका छिलका ८०० मील मोटा है। इसके भीतर भी एक सूर्य है, जो इसे गर्म रखता है। पृथ्वी के भीतर क्या है—इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध रासायनिक अरीनिउस का कहना है कि धरती धातु से बना हुआ एक भारी गोला है। इस गोले के भीतर उग्र आँच से उत्तप्त पदार्थ भरा है और इसका गर्भ वायव्य रूप में है। उसकी यह कल्पना ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार के आधार पर अवलम्बित है। उसका कहना है कि पृथ्वी के अत्यन्त गहरे भागों में भार के खिंचाव से खिंचकर सोना, चाँदी, प्लेटिनम आदि धातुएँ जमा हो गई हैं। फ़ारसी सभ्यतावालों के मतानुसार कारूँ अपना ख़ज़ाना लेकर पृथ्वी में धँस गया है और आज भी धँसता जाता है। वह कारूँ का ख़ज़ाना यही हो सकता है। इस अतुल धनराशि के चारों ओर वायव्य रूप में लोहे का बहुत बड़ा पर्त है। पृथ्वी का लगभग आधा पिण्ड लोहे का है। वायव्य लोहे के इस अनल-मण्डल का व्यास लगभग ६ हज़ार मील है। इसके ऊपर ६ सौ मील मोटा चट्टानों के वायव्य का स्तर है। इसके ऊपर १६० मील धधकती आँच से सफ़ेद गले हुए पत्थरों का तल है। इन सबके ऊपर लगभग १०० मील मोटा वह चिप्पड़ है, जिस पर हम लोग रहते हैं। अरीनिउस के सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिक भी अपने मत का आधार मानते हैं।

पृथ्वी-पिण्ड वायुमण्डल से लगभग २०० मील तक घिरा हुआ है। पृथ्वी के सम्पूर्ण ऊपरी तल का क्षेत्रफल लगभग १९ करोड़ ७० लाख वर्ग मील है। इसमें से लगभग १४ करोड़ वर्ग मील भूमि महासागरों, समुद्रों, और झीलों से घिरी है। शेष भूमि में यूरेशिया, अफ़्रीका, अमरीका आदि महाद्वीप फैले हैं। केवल प्रशान्त महासागर ही आधी पृथ्वी पर फैला है। इसकी औसत गहराई लगभग १४००० फ़ीट है। धरातल के किनारों का भाग सागर में शनैः-शनैः डूबता हुआ अचानक अतुल गहराई में विलुप्त हो जाता है। सागर-जल की मात्रा इतनी प्रचुर है कि यदि पृथ्वी के ऊँचे-नीचे भाग सब बराबर कर दिये जायँ, तो सम्पूर्ण धरातल जलमग्न हो जाय और लगभग ८६०० फ़ीट गहरे जल का वेष्ठन (पर्त) चढ़ जाय।

सागर की सबसे अधिक गहराई ३५००० फ़ीट से भी अधिक है। और भूतल के सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर की ऊँचाई २९००० फ़ीट से कुछ अधिक है। इस प्रकार हमारे चिप्पड़ के ऊपरी तल पर कुल १२ मील के लगभग ऊँचाई-नीचाई है। पृथ्वी के ७९०० मील लम्बे व्यास की तुलना में १२ मील की ऊँचाई-नीचाई नगण्य-सी है। इस प्रकार आधुनिक मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी के ऊपरी चिप्पड़ के भी एक छोटे अंश तक ही सीमित है। पृथ्वी के चिप्पड़ की अपेक्षा मनुष्य को समुद्र के भीतर का ज्ञान अधिक है। समुद्र के भीतर मनुष्य आसानी से जा सका है। समुद्रतल भी पृथ्वी के धरातल की भाँति समतल नहीं है। धरातल की भाँति समुद्रतल पर भी नीची-ऊँची भूमि, घाटियाँ और पहाड़ियाँ-सी हैं।

पृथ्वी जिस रूप में आज हमें दिखाई पड़ रही है, वह इस प्रकार कैसे हो गई, यह जानने के लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी का जन्म कैसे और कब हुआ? जन्म के पश्चात् पृथ्वी में क्या-क्या परिवर्तन हुए तथा उसका आकार किस प्रकार बदलता रहा? यह पता लगाना ही भूगर्भशास्त्र का काम है। आगे के अध्यायों में हम बतावेंगे कि किस प्रकार पृथ्वी का जन्म हुआ और फिर पृथ्वी पर धरातल तथा सागरतल का निर्माण किस प्रकार हुआ—पर्वत कैसे और कब बने, भूचाल क्यों आते हैं तथा ज्वालामुखी पहाड़ क्या हैं? नदियाँ कब और कैसे बनीं और फिर मनुष्य पृथ्वी पर कहाँ से और कैसे आया? हम ऊपर बता चुके हैं कि इन बातों का पता भूगर्भ-विज्ञान की सहायता से इसी सिद्धान्त पर लगाया गया है कि 'जो आज हो रहा है वैसा ही कल भी हो चुका होगा।' इस सिद्धान्त, कल्पना, और तर्क के बल पर मनुष्य ने अपनी पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा को शान्त करने की चेष्टा की है। यह आगे चलकर मालूम होगा कि वह सत्य के कितने निकट पहुँच गया है।
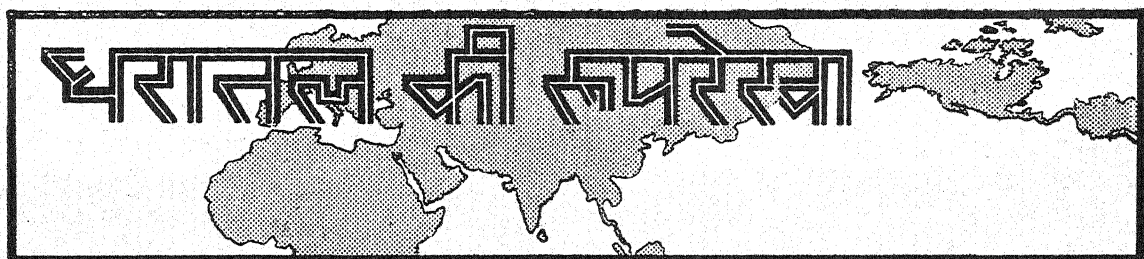
नई और पुरानी दुनिया

पृथ्वी की सतह पर के जल और स्थल के उस विशाल क्षेत्र के व्यापक भौगोलिक रूप का दिग्दर्शन, जिसे हम अपनी 'दुनिया' कहकर पुकारते हैं और जो हमारे नक़शों में दो गोलार्द्धों के रूप में चित्रित किया जाता है।

अपने निवासस्थान भूपृष्ठ अथवा पृथ्वी के धरातल के विषय में मनुष्य ने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसे 'भूपृष्ठ' अथवा 'भूगोल' विज्ञान के नाम से पुकारा जाता है। भूगोल के अध्ययन से हमें धरातल की प्राकृतिक बनावट का ज्ञान प्राप्त होता है। भूगोल शास्त्र के अध्ययन से हमें यह ज्ञान होता है कि धरातल का कितना भाग जलमग्न है और कितना सूखा भूखण्ड; भूखण्ड का कौन-सा भाग चौरस मैदान है और कहाँ पर विशाल पर्वत-शृंखलाएँ हैं; किस प्रकार ऋतु-परिवर्त्तन होता है और कैसे वर्षा होती है; कौन-से भाग शीतप्रधान हैं और कहाँ पर भीषण गर्मी पड़ती है; कहाँ पर नदी, झील और हरे-भरे मैदान और कहाँ पर जलविहीन मरुभूमि है? केवल इतना ही नहीं, हम इसके द्वारा यह भी जान सकते हैं कि भूपृष्ठ की प्राकृतिक अवस्था में विभिन्नता क्यों है? सर्वत्र एक ही सी ऋतु, एक ही सी पैदावार, एक-सी वनस्पति तथा एक ही से पशु-पक्षी और मनुष्य क्यों नहीं होते हैं? कहीं पर शीतलता, तो कहीं पर उष्णता की पराकाष्ठा क्यों है? समस्त भूपृष्ठ पर एक ही सी वायु क्यों नहीं चलती और कहीं पर कम और कहीं पर अधिक वर्षा क्यों होती है?

भूपृष्ठ शास्त्र के अध्ययन करनेवालों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी एक बड़ा गोला है। जब हम जल या स्थल पर यात्रा करते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है, मानों पृथ्वी चपटी है। पर अब से कई हज़ार वर्ष पहले ही लोग समझ गये थे कि पृथ्वी चपटी नहीं है। यह हमें चपटी इसलिए मालूम होती है कि हम एक समय में इसका बहुत ही थोड़ा भाग देख सकते हैं। पृथ्वी का व्यास इतना विशाल है कि उस पर हमारी स्थिति आध मील व्यासवाली एक विशाल गेंद पर रेंगनेवाली मक्खी के समान है।

एक समय था जब लोगों की धारणा थी कि पृथ्वी चपटी है। उन दिनों लोग अपनी धारणाओं पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि किसी प्रकार भी उनका विरोध सहन नहीं कर सकते थे। पृथ्वी के आकार के विषय में जब कुछ विद्वानों ने प्रचलित मत के विरुद्ध यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पृथ्वी गोल है, तब लोगों ने उनका बड़ा तिरस्कार किया। कुछ लोगों को इसी कारण बड़ी यंत्रणायें और कष्ट झेलने पड़े। परन्तु धीरे-धीरे लोगों के विश्वास में परिवर्त्तन हुआ और उन्हें भी यह विश्वास हो गया कि वास्तव में पृथ्वी गोल है।

आधुनिक खोज और आविष्कारों के युग में लोगों का ज्ञान उतना परिमित नहीं है जितना उन दिनों था, जब यात्राओं के साधन नहीं थे। उन दिनों लोगों का ज्ञान केवल देश के उसी भाग तक सीमित था, जहाँ तक वे आसानी से आ-जा सकते थे। आजकल तो लोगों ने सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली है और यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी का आकार नारंगी से मिलता-जुलता है। ज्योतिष-विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी आकाशमण्डल के अन्य ग्रहों के समान ही एक ग्रह है और सब ग्रहों की भाँति गोले के आकार की है। पृथ्वी के गोल होने के क्या प्रमाण हैं, यह हम अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक सिद्ध करेंगे। यहाँ पर इतना
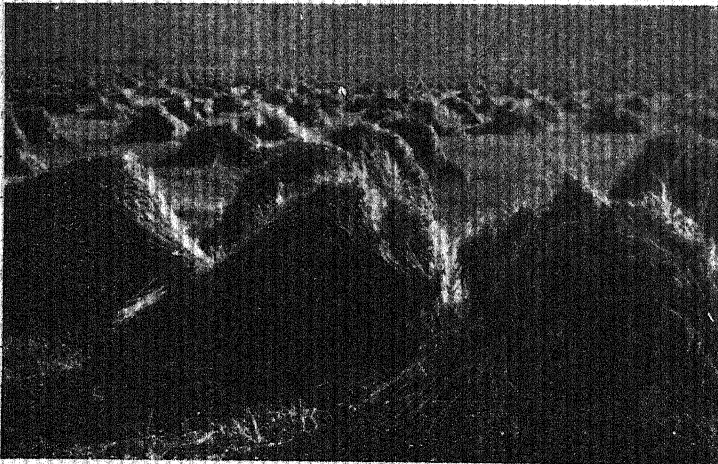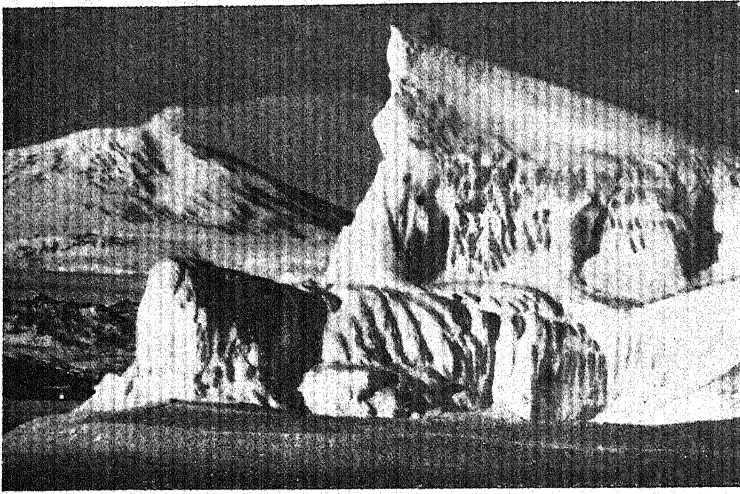
कह देना पर्याप्त है कि पृथ्वी गोल है, परन्तु इसका आकार पूर्णतया गोले के समान नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि उसके धरातल को ऊँचे-ऊँचे पर्वत, गहरी घाटियाँ, सागर आदि ऊबड़-खाबड़ बनाये हुए हैं। पृथ्वी के विशाल गोले के आकार के सामने यह ऊँचाई-नीचाई नगण्य-सी है। इसलिए धरातल की इस ऊँचाई-नीचाई का पृथ्वी के आकार पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार नारंगी गोल होते हुए भी ऊपर और नीचे के सिरों पर कुछ चपटी होती है तथा पेटे का भाग कुछ अधिक गोलाई लिये होता है, उसी प्रकार हमारी पृथ्वी भी नीचे और ऊपर के सिरों पर कुछ-कुछ नारंगी के समान ही चपटी है और इसके पेटे का भाग भी कुछ अधिक गोलाई लिये है। यदि पृथ्वी की परिधि नापी जाय, तो पेटे की परिधि शेष भाग की परिधि की अपेक्षा कुछ अधिक और ऊपर-नीचे के चपटे भागों पर नापी गई परिधि शेष की अपेक्षा कुछ कम होगी।

पृथ्वी की सम्पूर्ण परिक्रमा

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रदेश (१)

(ऊपर) ध्रुवों के आस-पास का शीत कटिबन्ध का प्रदेश, जहाँ केवल बर्फ़-ही-बर्फ़ है।

(बीच में) चीड़ के वनोंवाला प्रांत जहाँ जाड़ों में भीषण सर्दी रहती है।

(नीचे) घास के मीलों लंबे मैदान जहाँ वृक्ष नाममात्र को भी नहीं हैं, किन्तु अच्छी खेती होने लगी है।

करने से ही उसकी नाप की जा सकती है। आजकल इतनी लम्बी यात्रा करने के अनेकों साधन उपस्थित हैं। परन्तु प्राचीन काल में पृथ्वी की परिक्रमा करना सर्वथा असम्भव था। इसलिए लोग पृथ्वी के आकार और परिमाण के विषय में बहुत दिनों तक अनभिज्ञ रहे। २००० वर्ष से ऊपर हुए इराटस्थनीज़-नामक एक यूनानी विद्वान् ने सर्वप्रथम पृथ्वी के परिमाण की गणना की थी। उसकी गणना के अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई ३००० मील है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने लगभग सम्पूर्ण पृथ्वीतल को कई बार नाप डाला है। उनके अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई लगभग २५००० मील है।

पृथ्वी के चिपटे सिरों का नाम ध्रुव है। ऊपर का सिरा 'उत्तरी ध्रुव' और नीचे का सिरा 'दक्षिणी ध्रुव' कहलाता है। ध्रुवों के मध्य पृथ्वी के व्यास की लम्बाई ७८९९ मील है। मध्य में उसकी लपेट पर पूर्व-पश्चिम का व्यास ७९२६ मील के लगभग है। सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल १९ करोड़
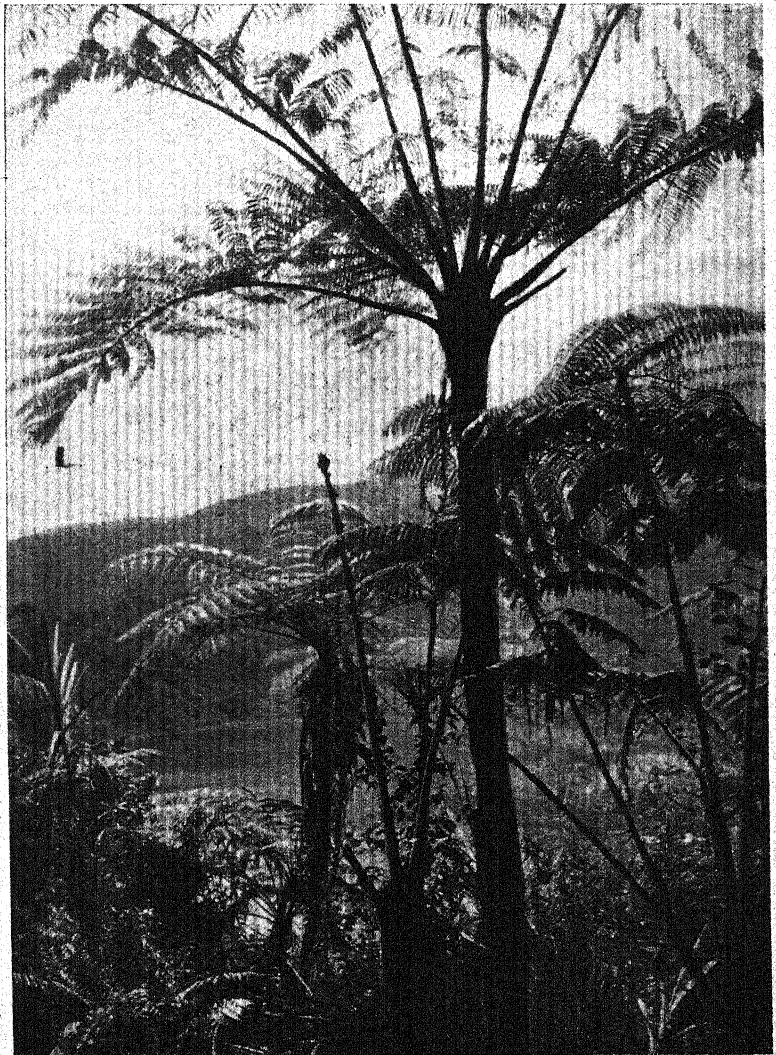
पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रदेश (२)

(ऊपर) उजाड़ मरुप्रदेश या रेगिस्तानी हिस्सा, जहाँ खजूर के वृक्षों को छोड़कर न कोई पेड़-पौधा होता है, न घास ही उगती है। आँधी के कारण यहाँ बालू के बड़े-बड़े टीले रोज़ बनते-बिगड़ते रहते हैं। (नीचे) उष्ण कटिबंध का प्रदेश, जहाँ प्राय: साल भर सूर्य चमकता रहता है, गहरी वर्षा होती है और घने वन पाये जाते हैं।

७० लाख वर्ग मील है। धरातल का दो-तिहाई से अधिक भाग जल-वेष्ठित है। शेष स्थल भाग है।

आधुनिक काल में धरातल के स्थल भाग को कई भू-खण्डों में विभाजित किया गया है। इन भूखण्डों या महाद्वीपों के नाम और क्षेत्रफल निम्न तालिका से प्रकट होंगेः—

महाद्वीप	क्षेत्रफल	
एशिया	१,७०,००,०००	वर्ग मील
योरप	३७,५०,०००	,,
अफ्रीका	१,१५,००,०००	,,
उत्तरी अमेरिका	८०,००,०००	,,
दक्षिणी अमेरिका	७०,००,०००	,,
आस्ट्रेलिया	३०,००,०००	,,
पालीनीशिया	५,००,०००	,,
अटलाण्टिक तथा हिन्द महासागर के द्वीप	२,५०,०००	,,
ध्रुव प्रदेश	२०,००,०००	,,
सम्पूर्ण स्थल का क्षेत्रफल	५,३०,००,०००	वर्गमील

जिस प्रकार स्थल भाग के खण्डों का नाम महाद्वीप रख लिया गया है, उसी प्रकार धरातल के जलमण्डित भाग के भी कई खण्ड किये गये हैं और प्रत्येक 'महासागर' के नामसे पुकारा जाता है। बड़े-बड़े महासागर पाँच हैं। इनके नाम, क्षेत्रफल आदि निम्न तालिका के अनुसार हैंः—

पृथ्वी के दो गोलार्द्ध—'पुरानी' और 'नई' दुनिया

महासागर	क्षेत्रफल	
प्रशान्त (पैसिफ़िक)	६,५०,००,०००	वर्गमील
अटलाण्टिक महासागर	३,५०,००,०००	,,
हिन्द महासागर	२,५०,००,०००	,,
आर्कटिक या हिम-महासागर	२५,००,०००	,,
अण्टार्टिक या दक्षिणी महासागर	३५,००,०००	,,
सम्पूर्ण क्षेत्रफल	१३,१०,००,०००	वर्गमील

इन विशाल जलखण्डों के अलावा पृथ्वीतल पर सागर आदि अनेकों और भी छोटे जलखण्ड हैं। इसी प्रकार महाद्वीपों के अतिरिक्त अनेकों छोटे स्थलखण्ड हैं, जो द्वीप या 'टापू' के नाम से पुकारे जाते हैं।

सम्पूर्ण भूपृष्ठ अथवा भूगोल को आज दो भागों में विभाजित समझा जाता है। एक भाग में उत्तर, मध्य और दक्षिण अमेरिका हैं और दूसरे में योरप, एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया हैं। पहले विभाग के पूर्व में अटलांटिक और पश्चिम में प्रशान्त महासागर हैं। दक्षिण में दक्षिण महासागर और उत्तर में उत्तरीय या हिम महासागर हैं। इसी प्रकार दूसरे विभाग के उत्तर में उत्तरीय या हिम महासागर और दक्षिण में हिन्द तथा दक्षिण महासागर हैं और पूर्व तथा पश्चिम में क्रमशः प्रशान्त तथा अटलांटिक महासागर हैं। आस्ट्रेलिया के ईशान कोण में पैसिफ़िक महासागर के विशाल वक्षःस्थल पर नक़्शे में कई नन्हें-नन्हें टापू देखे जाते हैं। इन सबके समूह को पालीनीशिया कहते हैं। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों अथवा मेरुओं पर भी बर्फ़ से ढका स्थल का बड़ा विस्तार है।

एक समय था, जब एशियावाले गोलार्द्ध के लोगों का भूगोल-विषयक प्राप्त ज्ञान केवल एशिया, योरप, तथा अफ्रीका तक सीमित था। पूर्वी गोलार्द्ध के लोगों को जब अमेरिका आदि का ज्ञान हुआ, तब उन्होंने उसको 'नई दुनिया' के नाम से पुकारना आरम्भ किया। तब से पूर्वीय गोलार्द्ध 'पुरानी दुनिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
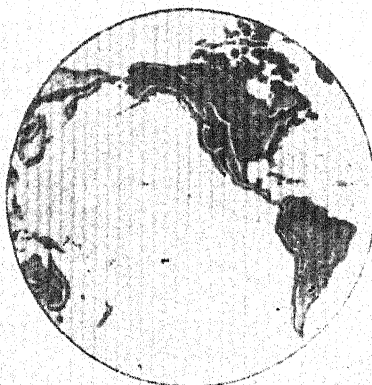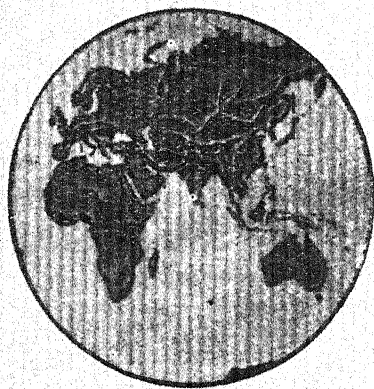
धरातल का स्थल और जल के अतिरिक्त एक तीसरा महत्त्वपूर्ण भाग और भी है। इसे हम 'वायुमण्डल' के नाम से पुकारते हैं। वायुमण्डल पृथ्वी को दो सौ मील की ऊँचाई तक मण्डित किये हुए है। वायुमण्डल में क्या है और धरातल से उसका क्या सम्बन्ध है, इसका विस्तीर्ण हाल हम आगे बतायेंगे।
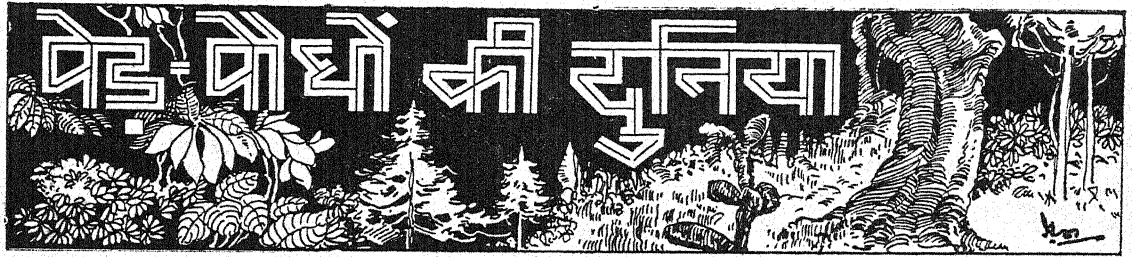
सजीव सृष्टि

जिनके बिना हमारी यह पृथ्वी एक विशाल मरुप्रदेश के समान होती और किसी भी प्राणी का उस पर पैदा होना या जीवित रहना असंभव होता, उन पेड़-पौधों की कहानी।

सजीव और निर्जीव जगत्

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं—एक सजीव और दूसरे निर्जीव। मनुष्य, पशु, पक्षी, पतिंगे, वृक्ष, लता, घास, काई, फफूँदी आदि की गणना सजीव सृष्टि में, और मिट्टी, पत्थर, सोना, लोहा, अनेक धातु और उपधातु आदि की निर्जीव में है। इसी प्रकार विश्व में जितनी वस्तुएँ हैं, चाहे वे जिस काल या दशा की हों, या तो वे सजीव होंगी या निर्जीव। सम्भव है, इस विषय पर हम लोगों में कुछ मतभेद हो। प्रायः इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान यथार्थ नहीं होता। हम में से कुछ लोग मनुष्य तथा अन्य साधारण पशुओं को ही जीवधारी समझते हैं और ऐसे लोग छोटे-छोटे अनेक जीवों को सजीव सृष्टि में सम्मिलित करने में सहमत न होंगे। वृक्षों के विषय में तो बहुतों की यही धारणा है। परन्तु यह हमारा भ्रम है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से पता चलता है कि वृक्षों में केवल प्राण ही नहीं वरन् इनकी जीवनी भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितनी हमारी आपकी अथवा किसी अन्य जीव की। इनमें भी आहार, विहार, तन्द्रा, निद्रा, संतति-समवर्धन आदि विशेषताएँ हैं। इनके भी शत्रु, मित्र, सहचारी, सहायक होते हैं। इनमें भी घोर जीवन-संग्राम और शत्रु तथा आपद-काल के लिए प्रबंध और देशकालानुसार परिवर्त्तित होने की योग्यता है। यह भी ताप और तुषार का अनुभव अथवा इनसे बचने का प्रयत्न करते हैं। इनमें भी हमारी-आपकी भाँति उत्तेजना-शक्ति और प्रतिक्रियाशीलता है। लज्जावती के पौधे से कौन नहीं परिचित है? 'यथा नाम तथा गुणम्।' इसकी एक पत्ती को स्पर्श करके देखिए। आपका हाथ छू जाने की देर है, एक-एक करके अनेकों पत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं; और यदि कहीं आघात कठोर है, तो कई डालें मूर्च्छित हो जायँगी। थोड़ी देर तक इस दशा में रहने के पश्चात् वे पुनः पूर्ववत् दशा को प्राप्त हो जायँगी। आप लोगों ने चकवड़ (*Cassia tora*) का पौधा अवश्य देखा होगा। यह वर्षा ऋतु

लज्जावती या छुईमुई का पौधा
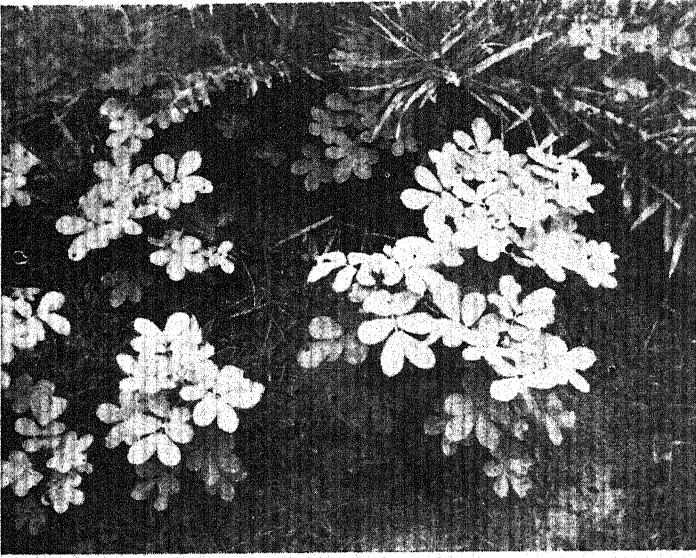
चकवड़ का पौधा

(बाईं ओर) दिन के समय, जब उसके पत्रक जाग्रत रहते हैं ; (दाहिनी ओर) रात के समय, जब पत्रक निद्रित होते हैं ।
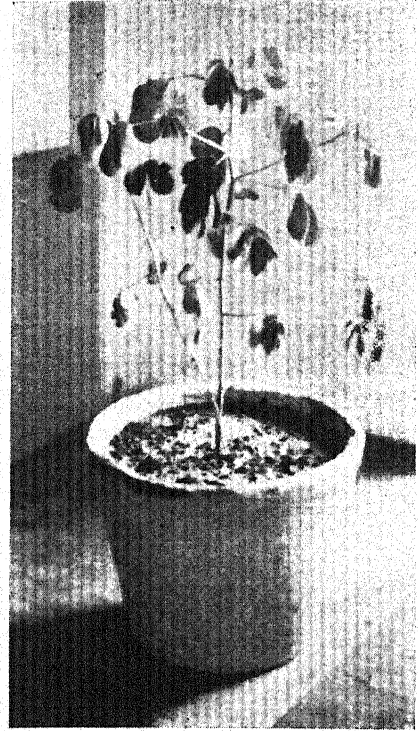
में हमारे बाग़ों तथा खेतों में उपजता है। कदाचित् आपने इसकी विचित्रता की ओर ध्यान न दिया हो। यदि अब कभी अवसर मिले, तो जिस स्थान पर इसके पेड़ हों, सूर्य अस्त होने पर अवश्य जाइए। इस समय यह आपको निद्रित दशा में मिलेगा। इसके पत्रकों (leaflets) को, जो आमने-सामने होते हैं, आप सुषुप्तावस्था में एक-दूसरे के बाहुपाश में देखेंगे। प्रातःकाल प्रकाश फैलते ही ये निद्रा छोड़ दिनचर्य्या में लग जाते हैं।

कितने ही तो ऐसे वृक्ष हैं, जो बगुले की भाँति दूसरे जीवों का शिकार भी करते हैं। तुंबिलता *(Nepenthes)* नाम की लता, जो भूमध्यरेखा के निकटवर्त्ती जंगलों में होती है, इनमें से एक है। इस लता की तुंबिकाकार बहुरंगी पत्तियों में एक प्रकार का रस भरा रहता है। बेचारे पतिंगे इन पत्तियों के रूप से आकर्षित होकर दुर्भाग्यवश यहाँ आ पहुँचते हैं और तुंबी में प्रवेश करते ही अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं।

तुंबियों के मुख पर एक प्रकार का ढक्कन होता है और उनके गले पर अन्दर की ओर रोयें, तथा उनकी अंदर की दीवार लसलसी होती है। इस कारण पतिंगे का बाहर निकलना असम्भव हो जाता है। साथ-ही-साथ ज्यों ही शिकार अंदर पहुँचा, पत्ती से एक प्रकार के द्रव पदार्थ का संचार होता है, जैसे हमारे-आपके मुँह में किसी स्वादिष्ट पदार्थ के सामने आने पर प्रायः होता है। यह रस आगंतुक कीड़े को हज़म कर तुंबिलता *(Nepenthes)* के उदर में पहुँचता है।

इस प्रकरण में हम वृक्ष-सम्बन्धी कुछ प्रश्नों पर विचार करेंगे, परन्तु इस विषय का उल्लेख करने से प्रथम सजीव और निर्जीव प्रकृति की विवेचना तथा वृक्षों और पशुओं के अंतर तथा समानता की आलोचना करना अत्यंत आवश्यक है।

जीवन अथवा प्राण क्या है, यह ऐसी गूढ़ समस्या है जिसको आज तक कोई सुलझा नहीं सका। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसकी ओर मनुष्य का ध्यान परम्परा से चला आता है, परन्तु फिर भी इसका यथार्थ उत्तर नहीं मिल सका। इस प्रश्न के अन्तर्गत अनेकों वाद-विवाद, कल्पना और सिद्धान्तों पर विचार तभी किया जा सकता है, जब हम सजीव पदार्थों की विशेषता अथवा इनकी जीवनी और रहस्य से भली भाँति परिचित हों। अतः हमको सर्वप्रथम इस ओर ध्यान देना चाहिए।

सजीव सृष्टि की विशेषता

यद्यपि हम प्राण की यथार्थ व्याख्या नहीं कर सकते, तब भी हमको साधारण सजीव वस्तुओं को निर्जीवों से पृथक् करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। इसका कारण यह है कि सजीव प्रकृति में कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें कुछ बातें तो ऐसी हैं, जिनका सादृश्य निर्जीव जगत् में भी रासायनिक क्रियाओं द्वारा होता रहता है और कुछ ऐसी हैं, जिनका आधार प्रकृति-विज्ञान के नियमों पर है। परन्तु कुछ ऐसी बातें भी हैं, जो इन दोनों से पृथक् हैं।

यदि हम अपने चारों ओर वर्तमान सजीव वस्तुओं पर विचार करें, तो सबसे पहले हमारा ध्यान उनके आकार और आकृति की ओर आकर्षित होगा। भाँति-भाँति के पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, कीड़े-मकोड़े, घास आदि, जितनी भी सजीव वस्तुएँ हम देखते हैं, उन सबका रूप और आकार निश्चित है। बीज बोने के पहले हम जानते हैं कि गेहूँ का पौधा किस प्रकार का होगा; अथवा मुर्गी या सारस किस प्रकार के अंडे देगी, और उनमें से किस रूप के बच्चे उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार हिरन, मोर, बिल्ली, या आम, करौंदा, नींबू, गुलाब, बेला, चमेली आदि के नाम लेते ही आपके सामने इनके चित्र अंकित हो जाते हैं। यही बात सारी सजीव सृष्टि के संबंध में है, चाहे वे पशु हों या वृक्ष। इनके आकार और आकृति निर्णीत हैं। परन्तु निर्जीव वस्तुओं के विषय में ऐसा नहीं है। 'मिट्टी' कहने से हमें एक वस्तु-विशेष का ज्ञान अवश्य होता है, परन्तु हम इसके आकार या आकृति के विषय में कुछ निश्चय नहीं कर सकते। सड़क की धूल, पास की दीवाल अथवा कुम्हार के बनाये खिलौने आदि-जैसी अनेकों वस्तुएँ मिट्टी की हैं। यही बात पत्थर, चीनी, काँच, ताँबा, चाँदी, सोने आदि के विषय में भी है। सारांश यह कि कुछ निर्जीव पदार्थ, जैसे रवा (crystal), नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र को छोड़कर अधिकांश की आकृति या आकार परिवर्त्तनीय हैं, परन्तु जीवधारियों के रूप और आकृति अपरिवर्त्तनीय।

तुंबिलता
जो एक मांसाहारी पौधा है।

वर्धन भी जीवधारियों की एक प्रधानता है। एक छोटा-सा बालक हमारे देखते-देखते बढ़कर पूरे डील-डौल का मनुष्य हो जाता है, और आम की गुठली अथवा नीम की निंबौरी अंकुरित होकर विशाल वृक्ष का रूप धारण करती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं, सब में एक-न-एक समय बढ़ने की शक्ति होती है। परन्तु इस क्रिया का औपम्य निर्जीव पदार्थों में रासायनिक क्रियाओं द्वारा भी हो सकता है। यदि हम पोटैशियम डाइक्रोमेट (*Pottasium-dichromate*) के डले को तूतिया के घोल में रक्खें, तो चन्द मिनट पश्चात् तूतिया के डले के ऊपर एक छोटा खोल बन जायगा, जो धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा हो जायगा। यदि यह आवरण किसी प्रकार फट भी जाय, तो स्वयं इसकी मरम्मत भी हो जायगी। नमक, फिटकरी अथवा अन्य रवा भी बढ़ते हैं। ऐसी दशा में हम बड़ी अड़चन में पड़ जाते हैं। हम भली भाँति जानते हैं कि कृत्रिम खोल अथवा रवा में जीवन का नाममात्र भी लगाव नहीं, परन्तु फिर भी इनमें बढ़ने और घाव भरने का गुण उपस्थित है। आप तर्कना कर सकते हैं कि आवरण की बाढ़ में आहार की पाचन आदि क्रियाएँ, जिनके द्वारा शरीर की रचना और कार्य करने के लिए सामर्थ्य (energy) प्राप्त करना सजीव सृष्टि की प्रधानता है, नहीं होतीं। यह बात यथार्थ है। जीवधारियों के शरीर के अन्दर कुछ ऐसी क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनमें भोजन की खपत होती है। और
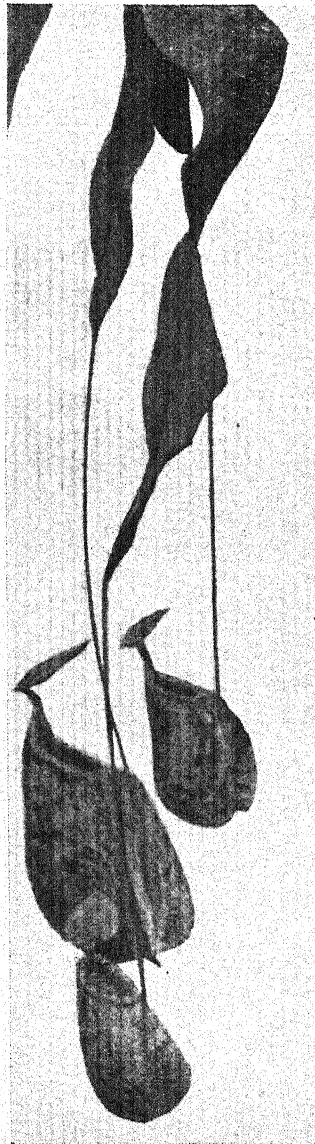
आज से कुछ वर्ष पहले यह समझा जाता था कि ये क्रियाएँ सजीव सृष्टि की विशेषता हैं, परन्तु प्रेरक रस (enzymes) का पता लगाने से अब हम जानते हैं कि इनमें से अधिकांश शरीर के बाहर भी इन द्रव्यों द्वारा की जा सकती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भोजन के पचाने की क्रियाएँ कुछ नियमित अथवा अनुसंधानीय प्राकृतिक तथा रासायनिक नियमों के अनुसार ही होती हैं और सजीव सृष्टि की विशेषता नहीं कही जा सकतीं।

अब आप प्रश्न करेंगे कि इस कृत्रिम लिफ़ाफ़े में संतानोत्पादन की सामर्थ्य नहीं है। यह भी सत्य है। जीवों का मुख्य ध्येय संतानोत्पादन ही है। इनमें भाँति-भाँति की विलक्षणता प्रायः वंशवृद्धि के ही कारण होती है। फूलों का रंग-बिरंगा होना, उनकी अनोखी आकृति और अनेकों परिवर्त्तन, इनमें धीमी तथा तेज़ गंध का प्रसार अथवा मधु का संचार आदि का अभिप्राय संतान-उत्पत्ति ही है। वृक्षों की भाँति पशुओं में भी संतान-वृद्धि के अनेकों साधन वर्त्तमान हैं। परन्तु सभी प्राणी तो संतान उत्पन्न नहीं कर सकते। खच्चर-जैसे कितने ही जीव हैं, जिनमें यह सामर्थ्य नहीं होती, फिर भी इस योग्यता का अभाव उन्हें जीवधारी होने से वंचित नहीं करता।

प्राणियों में एक और विशेषता है, जिसे हम गति कहते हैं। आप देखते हैं कि पशु, पक्षी, मछली, मेंढक, कीड़े-मकोड़े आदि जहाँ चाहते हैं, स्वच्छन्द विचरते हैं। आगे चलकर हम देखेंगे कि वृक्षों में भी यह शक्ति किसी सीमा तक वर्त्तमान है। परन्तु निर्जीव पदार्थ, जैसे कुर्सी, मेज़, पलंग, टोपी, पत्थर, आदि में यह शक्ति नहीं होती। आप तर्कना कर सकते हैं कि नदी अथवा समुद्र में जहाज़ और नाव, सड़क पर मोटर अथवा आकाश में विमान और बादल आदि भी तो चलते-फिरते हैं। परन्तु इसमें भेद है। हमारे, आपके तथा पशुओं और वृक्षों के चलने और बादल आदि निर्जीव पदार्थों के चलने में बड़ा अंतर है। आकाश में उड़नेवाली पतंग को उड़ानेवाला जिस समय वायु के सहारे उसे इधर-उधर घुमाता है, उस समय हम इसको आकाश में पक्षी की भाँति मँडलाते अवश्य देखते हैं, परन्तु यदि डोर चरखी से टूट जाय अथवा उड़ानेवाले के हाथ से छूट जाय, तो पतंग के पतन को कोई शक्ति नहीं रोक सकती। उसे हवा और पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति जिधर चाहेगी, ले जायगी। परन्तु पतंग के साथ उसी आकाश में उड़नेवाले कबूतर या बाज़ की यह हालत नहीं। इनको आकाश में भ्रमण करने के लिए डोर अथवा उड़ानेवाले की आवश्यकता नहीं। ये हवा के अनुकूल या प्रतिकूल स्वच्छन्द उड़ते हैं और जहाँ चाहते हैं, जाते हैं। यही हाल रेल अथवा वायुयान का भी है। रेलगाड़ी पटरी के सहारे इंजिन की शक्ति पर ड्राइवर की प्रेरणा से तेज़ी से चली जाती है। दुर्भाग्यवश नदी का पुल टूटा है। एक धड़ाके की आवाज़ हुई। इंजिन आगे के कई डिब्बों समेत नदी की धारा में जा गिरा! उसके पुर्ज़े-पुर्ज़े अलग हो गए। साथ ही अनेकों मनुष्य घायल हो गए और कितने ही के प्राण गए। परंतु उसी सड़क पर जानेवाले मुसाफ़िरों अथवा गाय-बैलों की यह हालत नहीं होती। यह पुल को टूटा देख ठहर जाते हैं और उस रास्ते को छोड़ दूसरे मार्ग की शरण लेते हैं। इंजिन में चलने

स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस

जिन्होंने वनस्पति-सम्बन्धी अपनी खोज से संसार के वैज्ञानिकों को चकित कर भारत का गौरव बढ़ाया है।
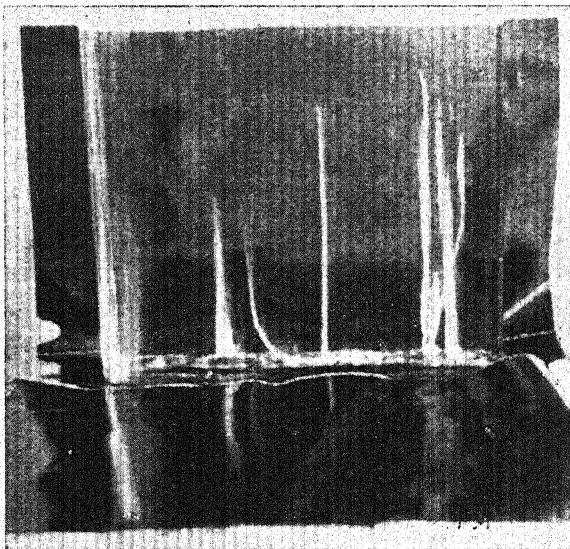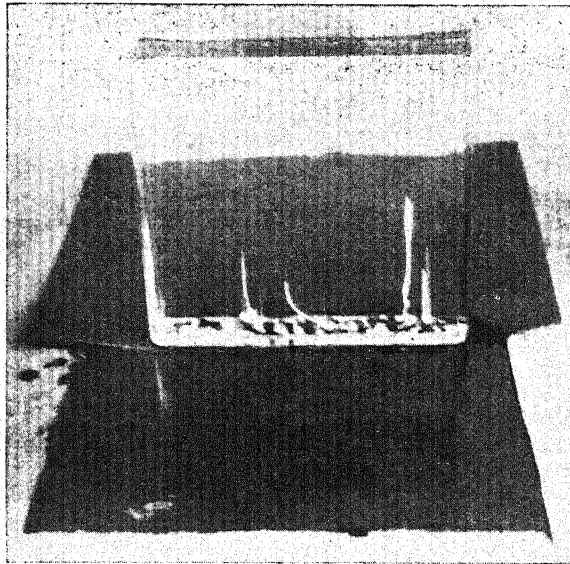
कृत्रिम उद्भिज

यह एक प्रकार के रासायनिक घोल में से आप ही आप पैदा कराया गया है। ऊपर का चित्र प्रयोग के दो-तीन मिनट बाद का है।

नीचे का चित्र ऊपर ही के चित्र में प्रदर्शित "कृत्रिम उद्भिज" का प्रयोग आरंभ होने से १० मिनट बाद का चित्र है। गौर करने की बात है कि कितने शीघ्र यह 'उद्भिज' अपने आप बढ़ जाता है। फिर भी सजीव पौधे की बढ़ती और इसकी बढ़ती में गहरा अंतर है। सजीव पौधा अपने आप ही अपने कलेवर के भीतर होनेवाली स्वाभाविक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप बढ़ता है। इसके विपरीत इन चित्रों में प्रदर्शित जड़ पदार्थ से तैयार किया हुआ उद्भिज बाहरी क्रिया ही का परिणाम है।

उगता हुआ बीज

इस चित्र में क्रमशः जिस प्रकार वनस्पति का बीज अंकुरित होता और फिर धीरे-धीरे उसमें से पौधे का आरंभिक विकास होता है, यह दिखाया गया है। ये बीज मक्का और सेम के बीज हैं। गौर कीजिए, इनकी जड़ें किस तरह नीचे ही की ओर जा रही हैं!

की शक्ति अवश्य है, परंतु दूसरे की प्रेरणा से। वह अपने सामने उपस्थित भय को नहीं देख सकता और न उससे बचने का उपाय ही सोच सकता है। इसी प्रकार और भी अनेकों उदाहरण हैं। सारांश यह कि जीवधारी अपनी इच्छा और प्रेरणा से चलते हैं, और निर्जीव दूसरे की।

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि लजावती की पत्तियाँ स्पर्श करते ही मूर्च्छित हो जाती हैं। आप जानते हैं कि आकाश में विद्युत् का प्रहार होते ही खेतों में चरते हुए मृगों का झुंड भयभीत होकर तितर-बितर हो जाता है। वाटिका में विहार करते हुए विहंगों में कोलाहल मच जाता है, और खाट पर सोता हुआ अबोध बालक चौंक पड़ता है। परंतु खेत की मेड़, वाटिका के फ़ौवारे अथवा बालक की खाट पर स्पष्टतया कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा क्यों होता है? क्या कभी आपने इसकी ओर ध्यान दिया है? इन सारी घटनाओं की जड़ में एक ही रहस्य है और यह भी सजीव प्रकृति की प्रधानता है। यह जीवों की उत्तेजना-शक्ति और प्रतिक्रिया है। यह गुण लजावती, हरिण, विहंग, बालक अथवा अन्य जीवों में उपस्थित है, परन्तु किसी में कम, किसी में अधिक। आघात के अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों का भी प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है। आप देखते हैं कि बीज बोते समय बीज चाहे कैसे फेंके जायँ, उनकी जड़ सदैव नीचे और शाखाएँ ऊपर को जाती हैं। इसी प्रकार पत्तियाँ वायु में फैलती हैं। आपने कदाचित् यह भी देखा हो कि खिड़की में रक्खे हुए गमले में लगे हुए पौधे की पत्तियाँ और बाग़ में पत्थर अथवा अन्य वस्तु के नीचे दबी हुई घास की डालें बाहर को प्रकाश की ओर बढ़ती हैं। इसी प्रकार अनेकों उदाहरण हैं। इस संबंध में भी तर्कना की जा सकती है। हम-आप सभी जानते हैं कि वर्षा ऋतु में शीशी में रक्खा हुआ नमक नम हो जाता है। केल्शियम क्लोराइड (Calcium Chloride) पिघलकर पानी हो जाता है। जगत्-सुविख्यात स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस, एफ़० आर० एस०, के प्रयोगों द्वारा तो यहाँ तक प्रमाणित हो चुका है कि पत्थर तथा ताँबा-लोहा आदि उत्तेजित भी किये जा सकते हैं। थोड़ी देर तक बराबर उत्तेजित किये जाने के पश्चात् थक भी जाते हैं और कुछ काल तक आराम करने के पश्चात् फिर उत्तेजित किये जा सकते हैं। परन्तु जीवन-शक्ति का यहाँ तृणवत् लगाव नहीं।

उपरोक्त वाद-विवाद से आप बड़ी अड़चन में पड़े होंगे। वास्तव में जीवों में कोई ऐसा लक्षण नहीं, जिसे हम प्राणिमात्र की विशेषता कह सकें। क्योंकि कोई भी ऐसी प्रधानता नहीं, जो सभी जीवों में उपस्थित हो और सभी निर्जीव पदार्थों में न हो, या जिसकी हम प्रकृति-विज्ञान अथवा रसायन-शास्त्र द्वारा व्याख्या न कर सकें, अथवा जिसका अनुकरण प्रकृति-विज्ञान अथवा रासायनिक क्रियाओं द्वारा न किया जा सके। हमें सजीव वस्तुओं को निर्जीव से पृथक् करने के लिए सभी बातों पर ध्यान देना पड़ता है और सभी गुणों का विचार करना पड़ता है।

अतः सजीव वस्तु वह है, जिसका निश्चित आकार और रूप हो, जिसमें बढ़ने की सामर्थ्य हो, जो गतिवान्, उत्तेजनीय और प्रतिक्रियाशील हो। जिसमें संतानोत्पादन की योग्यता हो और जो अपने शरीर की रचना उससे भिन्न पदार्थों से कर सकता हो। जो परिवर्त्तनशील हो और अपनी स्थिति को परिस्थिति के अनुकूल परिवर्त्तित कर सके। इसके अतिरिक्त आप आगे चलकर देखेंगे कि समस्त प्राणियों के शरीर एक अथवा अनेकों सजीव कोष्ठ के बने हैं। ये कोष्ठ पूर्ववर्त्ती सजीव कोष्ठों से ही उत्पन्न हो सकते हैं, अन्य भाँति नहीं। इन कोष्ठों में जीवन-रस, जिसे हम प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं, प्रवाहित रहता है, और प्राणियों की सारी विशेषताएँ इस विलक्षण वस्तु के ही गुण हैं। इस वस्तु का आज तक संश्लेषण नहीं हो सका और न इसका यथार्थ विश्लेषण ही हो सकता है। परन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि जीव और प्रोटोप्लाज़्म अभिन्न हैं। जीव से पृथक् प्रोटोप्लाज़्म और प्रोटोप्लाज़्म से पृथक् जीव नहीं देखे गये।

शरीरतत्त्व-विद्या, वनस्पति-विज्ञान और जंतु-विज्ञान

शरीर के ज्ञान को हम शरीरतत्त्व-विद्या (Biology) कहते हैं। प्राणियों के जीवन-संबंधी सभी प्रश्नों पर इसमें विचार किया गया है। जीवों के भेद, आकृति, आकार, प्रसारण, इनका बाहरी जगत् से संबंध, उद्भव, नाश, विकास आदि सभी बातों का इसमें उल्लेख है। इस शास्त्र के वनस्पति-विज्ञान (Botany) और जन्तु-विज्ञान (Zoology) दो अंग हैं। जन्तु-विज्ञान के अन्तर्गत जानवरों की जीवन-शैली और वनस्पति-विज्ञान के अन्तर्गत वृक्ष-संबंधी बातों का वर्णन है। इन दोनों ही से हमारा अत्यन्त घनिष्ट संबंध है। वृक्ष और पशु सजीव सृष्टि के दो भाग हैं। संसार के सारे प्राणी इन्हीं दो भागों में विभाजित हैं। वैसे तो हम सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओं पर विचरनेवाली गिलहरी पशु। परन्तु विश्व की सारी सृष्टि को इस प्रकार पृथक् करना सरल बात
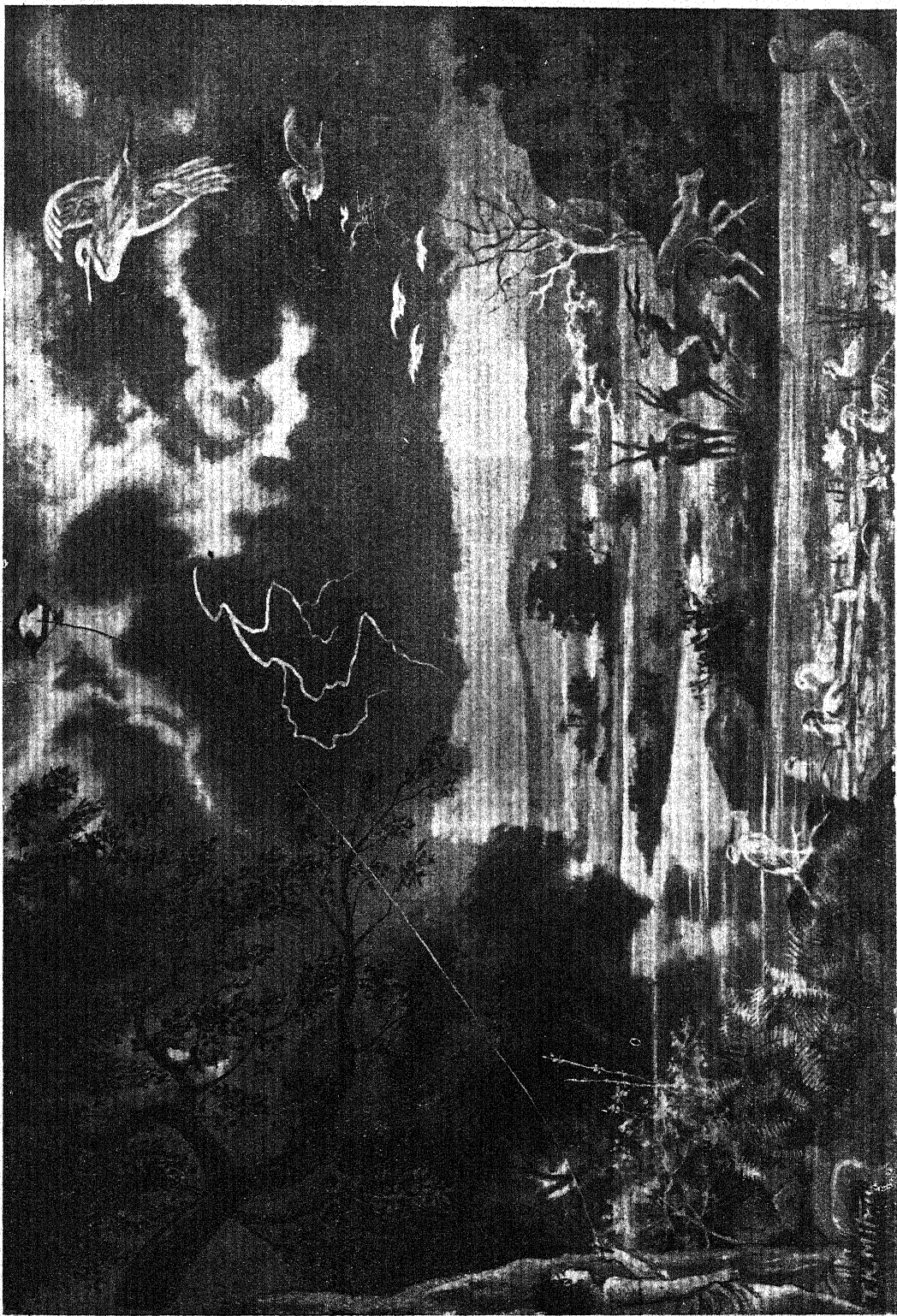
जड़ और चेतन वस्तुओं में भेद और समानता

आकाश में जड़ पतंग और चेतन पक्षी दोनों ही उड़ते हैं, किंतु फिर भी दोनों में समानता नहीं है। पतंग पक्षियों की तरह अपनी इच्छा से नहीं उड़ सकती। इसी तरह बिजली की चमक से मृगों का झुंड सहम जाता, पर जमीन या पानी पर उसका ऐसा कोई असर नहीं होता है। [विशेष बातें लेख में देखिए]

नहीं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जिनमें पशुओं के गुण हैं, और इसी प्रकार कुछ पशु ऐसे हैं, जिनमें वृक्षों के गुण वर्तमान हैं। इस प्रकार की विलक्षण रचना को वनस्पति-वैज्ञानिक (Botanists) वृक्षों में और जंतु-वैज्ञानिक (Zoologists) पशुओं में सम्मिलित करते हैं। परन्तु इन जीवों के विषय में यह निर्णय करना कि ये पशु हैं अथवा वृक्ष, अत्यन्त कठिन है। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसी रचना को तीसरी श्रेणी में रक्खा जाय और इनके मतानुसार जीवों के तीन भाग हैं। ये तीन भाग पशु, वृक्ष और प्रोटिस्टा (Protista) हैं। प्रोटिस्टा (Protista) में ऐसे छोटे-छोटे जीवों की गणना है, जिनमें पशु और वृक्ष दोनों ही के गुण विद्यमान हैं। परन्तु ऐसे विधान से भी हमारी कठिनाई का अन्त नहीं होता। जितनी कठिनाई हमें वृक्षों को पशुओं से पृथक् करने में होती है, प्रायः उतनी ही कठिनाई हमको प्रोटिस्टा को वृक्षों से और पशुओं से भिन्न करने में भी होती है। इसलिए ऐसा करने से कोई लाभ नहीं। अतः हम सजीव सृष्टि के वृक्ष और पशु दो ही अंग मान कर विचार करेंगे। हाँ, एक बात और है। वह यह कि यद्यपि हम जानते हैं कि सारे पशु एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं और इस नाते मनुष्य भी एक पशु है, परन्तु हम या आप कोई भी अपने को अन्य पशुओं में सम्मिलित करने में सहमत न होगा। हम स्वाभिमान और अहंकार के कारण अपने को अन्य पशुओं से पृथक् मानने के लिए विवश हैं। इसीलिए हम प्राणियों के तीन भेद मानेंगे। इस प्रकरण में हम वृक्ष-संबंधी प्रश्नों पर विचार करेंगे।

पशुओं और वृक्षों में अन्तर

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि पशु और वृक्ष दोनों ही में प्राण हैं और इस कारण दोनों ही में समानता है। परन्तु साधारण पशुओं और वृक्षों की ओर ध्यान देने से हम देखते हैं कि समानता होते हुए भी इनमें विभिन्नता है। ऐसे वृक्षों और पशुओं को हम सुगमता से अलग कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओं पर विचरनेवाली गिलहरी पशु। दोनों ही में प्राण है, दोनों ही क्रियाशील हैं, दोनों ही को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है, दोनों ही साँस लेते हैं, दोनों ही संतान उत्पन्न करते हैं। सारांश यह कि जितनी भी सजीव सृष्टि की विशेषताएँ हैं, दोनों ही में विद्यमान हैं। परंतु फिर भी दोनों में अंतर है। सबसे प्रथम बात तो यह है कि आम का पेड़ स्थायी है। जिस स्थान पर उसका पेड़ उगा है अथवा लगा दिया गया है, वहीं पर उसकी सारी लीलाओं का अंत भी होगा। उसे जहाँ हमने दस वर्ष पूर्व देखा था, वह आज भी वहीं है और जब तक जीवित है, वहीं रहेगा। परन्तु गिलहरी के विषय में यह बात नहीं। अभी यह इस डाल पर है, पलभर में दौड़कर दूसरी डाल पर चली जाएगी। अथवा आम के पेड़ से जामुन के पेड़ पर और फिर मैदान में अथवा आपके मकान की छत पर पहुँच जायगी। यही बात अधिकांश पशुओं और वृक्षों के विषय में भी है। मनुष्य, घोड़ा, गाय, बैल, सारस, मोर, मछली, तितली आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वयं सुगमता से विचरण करते हैं। और आम, जामुन, संतरा, अनार, कचनार, चना, मटर आदि अधिकांश वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते। परन्तु यह बात साधारण पशुओं और वृक्षों के संबंध में ही कही जा सकती है, सर्वदा लागू नहीं होती। कितने ही ऐसे पशु हैं, जो चट्टानों की भाँति स्थायी हैं और इसके विपरीत कुछ ऐसे वृक्ष हैं, जो स्वच्छन्द विचरते हैं। कितने ही छोटे-छोटे उद्भिज, जिन्हें हम ख़ुर्दबीन की सहायता बिना नहीं देख सकते, जल में बड़ी कुशलता से तैरते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ जानवर हैं, जो चट्टानों से चिपटे हुए समुद्रों और नदियों में पड़े रहते हैं।

वृक्षों और पशुओं में दूसरी विभिन्नता इनकी भोजन-क्रिया है। दोनों ही को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। दोनों ही को बाढ़ के लिए अन्य पदार्थों के साथ कार्बन (Carbon) और नाइट्रोजन (Nitrogen) की आवश्यकता होती है। परन्तु इन दोनों तत्त्वों को प्राप्त करने की पशुओं और वृक्षों की रीति पृथक् है।

वृक्ष वायु-मण्डल की कार्बन का उपयोग करते हैं। इनमें यह विशेषता इनके हरे रंग के कारण है, जो पर्णहरित (Chlorophyll) नामक पदार्थ की उपस्थिति से है। यह द्रव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी बदौलत वृक्ष ही की नहीं, वरन् समस्त संसार की स्थिति है। वृक्षों की अगणित पत्तियों में करोड़ों कारख़ानों से भी अधिक धन्धे का फैलाव है। यह नन्हीं-नन्हीं हरित पत्तियाँ वायु-मण्डल की कार्बन और अपनी जड़ों द्वारा संचित जल से सूर्य के प्रकाश में समस्त सृष्टि के लिए भोजन तैयार करती हैं और साथ ही वायु को भी शुद्ध करती हैं। यदि ये हरित वृक्ष न होते तो असम्भव नहीं कि संसार की जीवन-लीला का लोप हो गया होता।

वृक्षों की नाइट्रोजन प्राप्त करने की रीति भी पशुओं से विभिन्न है। वृक्षों की सूत्रवत् जड़ें पृथ्वी के

अन्दर बहुत दूर तक फैली रहती हैं। इनके द्वारा ये मिट्टी में विद्यमान नमकों से नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। परन्तु मनुष्य तथा अन्य जीव वायु की कार्बन डाइआक्साइड से (CO_2) कार्बन और पृथ्वी के नमकों से नाइट्रोजन नहीं प्राप्त कर सकते। ये इन पदार्थों के लिए वृक्षों तथा अन्य पशुओं पर ही निर्भर हैं। इनको ये गेहूँ, चना, मटर, मक्का तथा अन्य अनाजों से अथवा पत्तियों और फलों से या अन्य पशुओं के मांस, अंडा, दूध-ऐसे पदार्थों से ही प्राप्त कर सकते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जो हवा की कार्बन-डाइआक्साइड अथवा नमकों की नाइट्रोजन का उपभोग नहीं कर सकते। इनको ये वस्तुएँ इसी रूप में मिलनी चाहिएँ, जैसे पशुओं को। इनमें से तुंबेलता (*Nepenthes*) के विषय में ऊपर बताया जा चुका है। अमरबेल (*Cuscuta*) भी इन्हीं में से एक पौदा है। प्रायः आपने इसको अन्य वृक्षों पर जाल फैलाये देखा होगा। न इसमें जड़ होती है, न पत्तियाँ; फिर भी इसे सब प्रयोजनीय वस्तुएँ मिल जाती हैं। यह वस्तुएँ इसे अन्य वृक्षों से, जिन पर यह फैली रहती है, मिलती हैं। इसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा।

भोजन प्राप्त करने की विभिन्नता ही पशुओं और वृक्षों के सारे भेदों की जड़ प्रतीत होती है। वृक्षों को खाद्य पदार्थ वायु और पृथ्वी के नमकों से मिलते हैं, जो उन्हें सर्वत्र सुगमता से मिल सकते हैं। इसलिए इनको भोजन की खोज में इधर-उधर भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत पशु कार्बनिक पदार्थों का ही उपयोग कर सकते हैं, जिनकी खोज में इन्हें इधर-उधर जाना पड़ता है। इसी कारण वृक्ष स्थायी और पशु भ्रमणशील होते हैं।

इसी प्रकार वृक्षों को फैलाव की आवश्यकता है, पशुओं को नहीं। खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिए पृथ्वी के अन्दर वृक्षों की सूत्रवत् जड़ें और वायुमंडल में इनकी शाखा, उपशाखा और पत्तियाँ दूर तक फैली रहती हैं।

अमरबेल

जो दूसरे वृक्षों ही पर उपजती और उनसे अपना आहार ग्रहण करती है।

वृक्षों और पशुओं में एक और अंतर है, जो इनकी रचना से संबंध रखता है। समस्त जीवों के शरीर एक अथवा अनेक कोषों (Cells) के बने होते हैं। साधारणतः पशुओं के शरीर-कोष कोष-भित्तिकाओं (Cell walls) से घिरे नहीं होते, परन्तु वृक्षों के शरीर-कोष निश्चित घेरे के अंदर होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे जीव हैं, जिनमें यद्यपि अधिकांश गुण वृक्षों के हैं, तथापि उनके शरीर-कोष घेरों से परिवेष्ठित नहीं होते।

पशुओं और वृक्षों की विशेषताओं पर विचार करने से हम भली भाँति देखते हैं कि यद्यपि अधिकांश जीवों के विषय में यह निर्णय करना कि ये पशु हैं या वृक्ष, कठिन नहीं है; फिर भी इनके बीच में कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है। इनमें विभिन्नता से कहीं अधिक समानता है। यही जीवमात्र की एकता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

इस आरंभिक प्रकरण में हमने सामान्य रूप से इस पृथ्वी पर विद्यमान सजीव सृष्टि पर—जिसके वनस्पति और जन्तु ये दो मुख्य अंग हैं—एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है, ताकि इनके सम्बन्ध में पाठकों का दृष्टिकोण विशद हो जाय और वे कुछ अधिक विस्तार के साथ इनका अध्ययन कर सकें। वनस्पति-जगत् का अध्ययन हमारे लिए न केवल अपनी ज्ञान की पिपासा की तृप्ति ही की दृष्टि से, वरन् उपयोगिता की दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। भला कौन ऐसा होगा जिसे उन पेड़-पौधों की रहस्यमय जीवनी के सम्बन्ध में जानने की उत्कंठा न होगी, जो हमें अन्न, फल, फूल, कंद-मूल, रस, पत्तियाँ, लकड़ी, रुई आदि जीवन की अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कर हमारे जीवन को सरल, सुखप्रद और सुरम्य बनाते हैं?
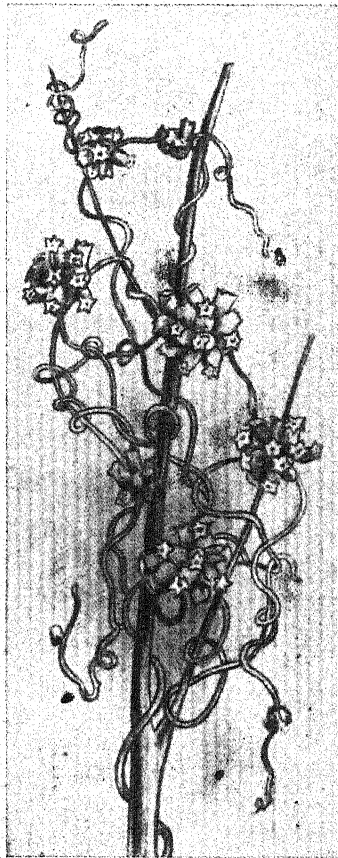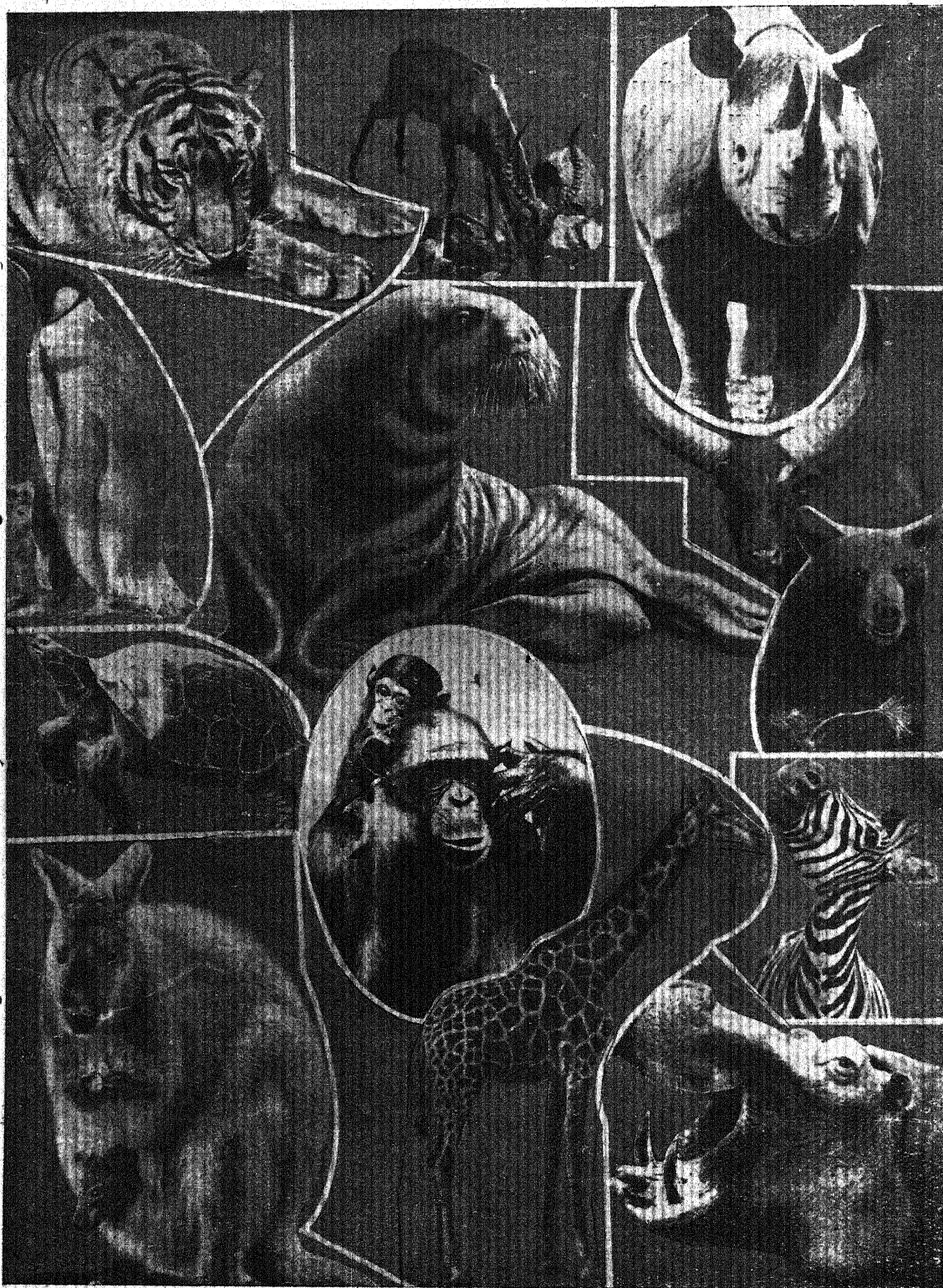
प्रकृति की जंतुशाला के कुछ अनोखे प्रतिनिधि

(ऊपर से नीचे बाएँ से दाहिने क्रम से) सिंह, मृग, गैंडा, पैंग्वीन, दरियाई शेर, जंगली साँड़, कछुआ, चिंपैंजी, भालू, कँगारू, जिराफ़ा, जेबरा और दरियाई घोड़ा ।

प्राणि-जगत्

हम किसी जंतुशाला में जाकर तरह-तरह के पशु-पक्षियों को देख-देखकर अचरज से दाँतों-तले उँगली दबाते हैं, किन्तु क्या हमें उस अनोखी और विस्मयजनक प्रकृति की अद्भुत् जंतुशाला का भी पता है, जिसे उसने सदियों से पृथ्वी पर खोल रक्खा है ? कैसी विचित्र और व्यापक है यह महान् जंतुशाला ! चींटी से लेकर हाथी तक और तितली से लेकर गिद्ध तक कितने विभिन्न रंग-रूप और आकार-प्रकार के प्राणी प्रकृति ने इस जंतुशाला में जुटाए हैं ! इस स्तंभ में इन्हीं का चित्र-विचित्र जुलूस आपको देखने को मिलेगा।

यदि आप अपने आस-पास की परिचित वस्तुओं का ध्यान करें, तो अवश्य ही यह मान लेंगे कि वे चीज़ें दो प्रकार की हैं। उनमें से कुछ सजीव हैं, जैसे—गाय, बैल, घोड़ा, बकरी, कौवा, मछली, मक्खी, कीड़े आदि। दूसरी निर्जीव हैं, जैसे—मकान, कुर्सी, पलंग, लोटा, थाली, घड़ा, सुराही, कुर्ता, धोती आदि। यही बात संसार की सभी चीज़ों के बारे में कही जा सकती है, चाहे उन्हें आपने देखा हो या नहीं। या तो वह सजीव हैं या निर्जीव। दुनिया में दो तरह की चीज़ें हैं, सजीव अथवा निर्जीव। या यों कहा जा सकता है कि दुनिया दो भागों में बँटी हुई है।

तीन प्रकार की जीवित वस्तुएँ

पर यह समझना भूल होगा कि प्राणि-जगत् में केवल जानवर ही सम्मिलित हैं। आप से यदि यह पूछा जाय कि 'आप जीवित हैं या नहीं ?' तो आप में से ऐसा कौन होगा जो 'हाँ' नहीं कहेगा ? परन्तु हमें यह निश्चय नहीं है कि यदि आपसे पूछा जाय कि 'वनस्पति सजीव है या निर्जीव' तो आप सब एक ही उत्तर देंगे। आप में से कुछ का यह ख़याल हो सकता है कि वनस्पति निर्जीव नहीं है, और कुछ लोग यह समझ सकते हैं कि वनस्पति में उतना ही जीवन है, जितना पृथ्वी के किसी अन्य प्राणी में। आप विश्वास करें कि पेड़-पौधे भी आदमी या अन्य जानवरों की तरह खाते-पीते, बढ़ते और सुख-दुःख की भावना करते हैं। पृथ्वी पर ऐसे भी पौधे हैं, जो मांसाहारी हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं और बिलकुल जीवधारियों-जैसा आचरण रखते हैं।

संसार के प्रत्येक भाग में यह बात बहुत दिनों से मान ली गई है कि पौधों में भी उतना ही जीवन है जितना जानवरों में ; और अपने देश में यह बात साधारण आदमियों द्वारा भी बहुत हद तक मानी जा चुकी है। आप में से बहुतेरों को बड़े-बूढ़ों ने सूरज डूबने के बाद पौधों को छूने या फूल-फल तोड़ने की मनाही की होगी, क्योंकि उनका विश्वास है, और वह विश्वास ठीक भी है, कि सूरज डूबने पर पौधे निद्रित होते हैं। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि हमारे ही एक विख्यात देशवासी स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस ने यह अन्तिम तौर पर संसार के सामने सिद्ध कर दिया है कि पौधों के भी अनुभूति होती है। अपने बनाये हुए सूक्ष्म यन्त्रों के द्वारा उन्होंने यह दिखला दिया कि पौधों में भी दिल-जैसा अंग और स्नायु-प्रणाली होती है। इस तरह वह न केवल स्नायविक सनसनी को अनुभव करने में ही समर्थ हैं, बल्कि उन्हें अन्य भागों में भी संचरित कर सकते हैं। इस बात की जाँच आप सब 'छुई मुई' की तरह की किसी 'लाजवती लतिका' को छूकर कर सकते हैं। आप में से जिन्होंने अभी तक ऐसा कोई पौधा नहीं देखा हो उन्हें किसी जानकार या स्थानीय माली की सहायता से उसकी खोज करनी चाहिए। उसकी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों को एक-एक करके छुइए और अन्त में उसकी प्रमुख शाखाओं को हिला दीजिए। आप देखेंगे कि जैसे-जैसे उसे छूते जायँगे पत्तियाँ सिमटती-मुरझाती जायँगी और शाखायें झुकती जायँगी, मानो बिल्कुल निर्जीव हो गई हों। फिर छोड़ देने पर आप

उसे धीरे-धीरे रूप और ताज़गी में पहले जैसा ही होता हुआ और स्पर्श के धक्के के बाद पुनर्जीवन प्राप्त करता हुआ देखेंगे। इसी पौधे ने सर जगदीशचन्द्र बोस का ध्यान आकर्षित किया था और 'प्रत्येक जीवधारी की मौलिक समानता' का सिद्धान्त स्थिर करने की उन्हें प्रेरणा की थी।

हम देखते हैं कि केवल मनुष्य ही को जीवन का वरदान नहीं मिला है बल्कि जीवधारियों में पौधे, पशु और मनुष्य तीनों ही आते हैं। इनमें से प्रत्येक सजीव जगत् का एक भाग है और इसी कारण उनका वर्णन अलग-अलग किया जाता है। आपको पौधों का हाल इसके पूर्व के स्तंभ ('पेड़-पौधोंकी दुनिया') में और मनुष्य का विवरण इसके आगे के स्तंभ 'हम और हमारा शरीर' में मिलेगा। इस भाग में हम मुख्यतया (मनुष्य के अतिरिक्त) पशु-जीवन का ही वर्णन करेंगे। अतएव मनुष्य न केवल एक पशु ही है बल्कि जीवधारी प्रकृति का एक आन्तरिक भाग भी है। वह जीवन धारण करने के मूल प्रकार में पौधों और पशुओं का साझीदार है।

प्राणि-शास्त्र की परिभाषा और उसके विभाग

हर प्रकार के जीवधारियों के विषय में एक नियमबद्ध प्रणाली से अध्ययन करना कि वे क्या हैं, क्या करते हैं, जो कुछ करते हैं, किस तरह करते हैं, प्राणि-शास्त्र या जीवन-विज्ञान कहलाता है। इसका उद्देश्य पाठकों के सामने जीवधारियों का एक पूर्ण चित्र उपस्थित करना होता है। यह शास्त्र न केवल प्राणियों के रंग-रूप, उत्पत्ति, आकार-प्रकार, बनावट, आचरण और उनके गुण ही बतलाता है, बल्कि उनके विकास और संसार से उनका सम्बन्ध भी बतलाता है। किन्तु पौधों और पशुओं का अलग-अलग विवरण भी हो सकता है, इसलिए प्राणि-शास्त्र दो भागों में विभक्त कर दिया गया है—(१) वनस्पति-शास्त्र या पेड़-पौधों का विज्ञान और (२) जन्तु-शास्त्र या जीव-जन्तुओं का विज्ञान, जिसमें वास्तव में मनुष्य भी सम्मिलित है। मगर हम साधारणतया और स्वभावतः पशुओं के साथ अपनी चर्चा का होना पसन्द नहीं करते और हममें से अधिकांश कुछ अन्य पशुओं से दूर का सम्बन्ध और

तीन प्रकार की सजीव सृष्टि

जल-स्थल में उत्पन्न वनस्पति ; जलचर, स्थलचर और नभचर जीव-जन्तु, तथा मस्तिष्क की विशेषता रखनेवाला मनुष्य।

निकट समता की बात भी आसानी से नहीं मानेंगे। इसीलिए मनुष्य के अध्ययन के लिए प्राणि-शास्त्र के तीसरे विभाग की आवश्यकता होती है।

यह सबके लिए वांछनीय है कि वे अन्य जीवधारियों के विषय में कुछ मनोरंजक बातें जानें। हमारा विचार है कि वह प्रत्येक व्यक्ति जो इन पृष्ठों को पढ़ेगा इन बातों को जानने का इच्छुक होगा कि संसार में कितनी विचित्र और विभिन्न जातियों के पशु और पौधे होते हैं, कहाँ-कहाँ रहते हैं, किस तरह इस सतत परिवर्त्तनशील जगत् में रह पाते हैं और किस तरह अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं? अधिकतर मामलों में इस तरह का अध्ययन हमें न केवल जीवधारियों का स्वभाव समझने में मदद देता है, बल्कि यह भी देखने में सहायता करता है कि दुनिया में उनकी क्या उपयोगिता है? पशुओं और पौधों के विज्ञान का अध्ययन, जैसाकि हम अन्यत्र देखेंगे, मनुष्य-जाति के लिए बीमारियों से लड़ने और फ़सल की रक्षा करने में महान् लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में दिये गये पशु-जीवन के साधारण पहलुओं से परिचय प्राप्त करना निश्चय ही मानव-स्वभाव और मानव-इतिहास को अच्छी तरह समझने में सहायक होगा, जिसे आप 'मनुष्य' संबंधी अगले अध्याय में पढ़ेंगे। पिछले दिनों प्राणि-शास्त्र के अध्ययन को काफ़ी महत्व प्राप्त हुआ है और आज दिन पाश्चात्य देशों में हर स्कूल के लड़के से इस विषय में कुछ-न-कुछ पढ़ने की आशा की जाती है। इसके सिद्धान्तों से परिचित होने से न केवल सारे जीवधारियों की समानता अनुभव करने में सहायता मिलती है, बल्कि सुखी और सफल जीवन बिताने में भी मदद मिलती है।

सजीव और निर्जीव पदार्थों के वर्धन की तुलना
(ऊपर के चित्र में) लवणमिश्रित घोल में बढ़ती हुई नमक की निर्जीव डली। (नीचे) क्रमशः छोटे-से बड़ी हो जानेवाली बिल्ली।

सजीव और निर्जीव का भेद

इसके पहले कि हम पशुओं के विषय में लिखें, यह उचित होगा कि साधारणतया जीवधारियों के लक्षणों के सम्बन्ध में कुछ कहें और यह बतलायें कि सजीव और निर्जीव में क्या भेद है।

अगर आपसे पूछा जाय कि आप सजीव और निर्जीव में भेद कर सकते हैं, तो आप तुरन्त ही उत्तर देंगे 'हाँ', पर यदि आपसे यह पूछा जाय कि सजीव होता क्या चीज़ है, तब आप संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकेंगे। क्यों?

आप कह सकते हैं कि सजीव पदार्थ के निश्चित और विशेष रूप होते हैं, यानी वह लम्बाई-चौड़ाई में एक निश्चित सीमा के भीतर होते हैं और उनकी बनावट में एक प्रकार की निश्चितता होती है। परंतु निर्जीव वस्तुओं की प्राकृत अवस्था ऐसी

नहीं होती, वे पदार्थ की ढेरी-सी होती हैं, जिनका रूप अनिश्चित होता है, जैसे मिट्टी, लकड़ी, सोना, चाँदी। इनकी लम्बाई-चौड़ाई में बहुत भिन्नता होती है। 'पानी' शब्द से एक बूँद पानी का भी ज्ञान हो सकता है और एक झील या समुद्र का भी। फिर भी कुछ प्राकृतिक चीज़ें ऐसी हैं, जो निर्जीव होते हुए भी एक निश्चित रूप और आकार की होती हैं और जिनका आकार भी भिन्नतापूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए चीनी या नमक के रवे, सूर्य और चन्द्र बताये जा सकते हैं। इसलिए सच यह है कि पौधों और पशुओं की विभिन्न जातियों का एक बड़ा भाग अपने आकार के द्वारा पहचाना जाता है; मगर बहुत थोड़े ही से निर्जीव प्राकृतिक पदार्थ इस प्रकार पहचाने जा सकते हैं, जैसे किसी चीज़ के रवे।

फिर आप कह सकते हैं कि सजीव पदार्थ बढ़ते हैं और निर्जीव नहीं बढ़ते; लेकिन क्या चीनी का रवा चीनी के संपृक्त घोल में रखे जाने पर नहीं बढ़ता? यही बात पत्थरों और कुछ चट्टानों के बारे में भी कही जा सकती है, जो पृथ्वी के नीचे से बढ़कर छोटे या बड़े आकार ग्रहण कर लेते हैं। एक ओर हम आम की गुठली से एक पतली शाखा निकलते हुए देखते हैं, और इसे एक छोटे पौधे और अन्त में एक पूरे वृक्ष के रूप में बढ़ते हुए पाते हैं, और दूसरी ओर एक पिल्ले को धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखते हैं और एक दिन वह पूरे कुत्ते के बराबर हो जाता है। लेकिन इन दोनों प्रकार के बढ़ाव में अन्तर है। चीनी के रवे या पत्थर का बढ़ाव उनकी सतह पर अधिकाधिक नये पर्त के जमाव होने की वजह से होता है, परन्तु इसके विपरीत छोटे पेड़ या पिल्ले अपने शरीर के भीतर खाद्य पदार्थों के ग्रहण करने से बढ़कर पूरे डील-डौल के हो जाते हैं। अतएव पशुओं और पौधों का बढ़ाव भीतर से होता है और निर्जीव पदार्थों का बढ़ाव यदि होता है तो बाहर से। फिर यह भी याद रखने की बात है कि प्रत्येक जीवित प्राणी आकार में जीवन भर नहीं बढ़ता रहता, उसकी बढ़ने की शक्ति एक विशेष डील-डौल या विशेष अवस्था पाने पर समाप्त हो जाती है।

जड़ और चेतन वस्तुओं की गतिशीलता की तुलना

आप इस चित्र के एक भाग में रेलगाड़ी को खींचनेवाले इंजिन और दूसरे में बैलगाड़ी में जुते हुए बैलों को गतिवान देखते हैं— किन्तु इससे जड़ और चेतन वस्तुओं में समानता नहीं सिद्ध होती। रेल का इंजिन यद्यपि दौड़ता है परंतु वह बैलों की तरह अपनी निज की प्रेरणा या इच्छा से नहीं दौड़ या रुक सकता। (देखिए पृष्ठ ५१ का मैटर)

अब आप कह सकते हैं कि जीवधारी चलते फिरते हैं, पर निर्जीव ऐसा नहीं कर सकते। जब हम घोड़े को सड़क पर दौड़ते, चील को बादलों में मँडलाते व एक मछली को पानी में तैरते देखते हैं तब हम कहते हैं कि वे जीवधारी हैं; लेकिन जब एक रेलगाड़ी को अपने पास से तेज़ी से निकलते हुए, पतंग को ऊपर हवा में उड़ते हुए, व नदी को निरंतर गति से बहते हुए, या बादलों को ऊपर आकाश में उड़ते देखते हैं तो हम एक क्षण के लिए भी नहीं सोचते कि उनमें जीवन है। क्यों? इसलिए कि जीवित प्राणी और निर्जीव पदार्थों के चलने-फिरने में एक विशेष अन्तर होता है। जब जानवर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है तो वह ऐसा अपनी स्वतन्त्र इच्छा ही से करता है, लेकिन बादल हवा की दिशा में हवा द्वारा ही संचालित होते हैं और इंजिन अपने रास्ते पर मनुष्य द्वारा संचालित भाप की शक्ति से परिचालित होता है। इस तरह जहाँ जीवधारी अपने आप चलते फिरते हैं, वहाँ निर्जीव पदार्थ अन्य शक्तियों द्वारा संचालित होते हैं।

अन्त में आप कह सकते हैं कि जीवधारी को बाहरी प्रभाव की अनुभूति होती है, अर्थात् उनमें अनुभव करने की शक्ति होती है। जब कहीं दूरस्थ स्थान पर भी आकाश में बिजली चमकती है तो हमारी पलकें बन्द हो जाती हैं किन्तु बन्दूक़ की तेज़ आवाज़ भी पास की निर्जीव वस्तुओं को प्रभावित नहीं कर पाती। क्या तुम किसी ऐसे निर्जीव पदार्थ के बारे में सोच सकते हो जो बाहरी शक्तियों से प्रभावित होता हो? क्या तुमने अपनी माँ या बहिन को बरसात के दिनों में इस बात की शिकायत करते नहीं सुना है कि नमक गलकर पानी हो गया? चाहे कितना ही सूखा हुआ नमक हो, बरसात में खुला हुआ रहने पर अपने आप नम हो जाता है, और धीरे-धीरे गलकर लुप्त हो जाता है। ऐसा ही हाल बारूद का है, जो कोयले के एक जलते टुकड़े से छू जाने पर तुरन्त ही भभक उठती है। यहाँ पर भी सजीव और निर्जीव पदार्थ की अनुभूतियों में साफ़ अन्तर है। हम बिजली की चमक से अपनी आँख बन्द कर लेते हैं तो इसका कारण यह है कि आँखें चोट न खा जायँ। और यदि हम अकस्मात् अपनी ओर किसी के फेंके पत्थर को आते देख उसकी राह से हट जाते हैं तो इसीलिए कि अपने को चोट से बचावें। किन्तु नमक बरसात में खुला होने पर गलकर पानी होने से अपनी रक्षा नहीं कर सकता और न बारूद ही विस्फोटक वस्तु के संसर्ग से अपने को जलकर राख होने से बचा सकने में समर्थ है। वास्तव में वह ज्योंही जला कि उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

इसलिए हम देखते हैं कि जहाँ साधारणतया एक व्यक्ति सजीव और निर्जीव पदार्थ में भेद कर सकता है वहाँ कभी-कभी कोई-कोई निर्जीव पदार्थ भी ऐसा आचरण करते हैं मानो वे जीवधारी हों। पर क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि इन दो प्रकार के पदार्थों में अन्तर की कौन-सी बात है? ऐसा क्यों होता है कि एक बिल्ली चल-फिर सकने, खाने-पीने, बढ़ने और अपनी जैसी अन्य बिल्लियाँ पैदा कर सकने में समर्थ है और क्यों एक कोयले का टुकड़ा या ईंट इनमें से कुछ भी कर सकने में असमर्थ है? इनका जवाब आसान नहीं है। यह सच है कि कोयले और ईंट के मूल पदार्थ साधारण हैं अतः उनमें क्रिया-शीलता नहीं है, इसके विपरीत बिल्ली विचित्र मिश्रित पदार्थों से बनी हुई है जिनसे उससे कई कार्य्यों का बन पाना संभव है। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि जीवधारियों का निर्वाह करनेवाले पदार्थ निर्जीव जगत् से लिये गये रसायन ही हैं और तमाम पशु-पक्षी रोज़ अपने शरीर को उस भोजन और पानी से भरते हैं, जो जीव-विहीन वस्तुओं से बना है। अन्त में **जीव-सम्बन्धी** कार्य करने के कारण सजीव शरीर का मिश्रित ढाँचा टूट जाता है। अपना मौलिक गुण खो देता है और अन्ततः अक्रिय स्थिति में पहुँच जाता है। इस अवस्था में पहुँचने पर वह निर्जीव या मृत हो जाता है और यही हर प्राणी का अनिवार्य अन्त है।

जीवित और निर्जीव में समता

इस तरह साफ़ ही सजीव और निर्जीव पदार्थों में एक दूसरे से विभिन्नता है, पर साथ ही इनमें कुछ समानता भी है और उनके बीच में जो बाँध-सा है वह ऐसा नहीं कि कभी टूट न सके, चाहे देखने में यह दोनों कितने ही अलग प्रतीत होते हों। तथापि एक गुण ऐसा है जो संसार के सभी सजीव पदार्थों में मिलता है, परन्तु किसी निर्जीव पदार्थ में नहीं पाया जाता। वह गुण यह है कि उनका निर्माण विभिन्न ढंगों से होते हुए भी उनमें अपनी बनावट को जीवन की हर परिस्थिति के अनुसार बना लेने की शक्ति है। उदाहरण के लिए विभिन्न परिस्थितियों में पैदा होनेवाले पौधों की पत्तियों को लीजिए। रेगिस्तानी पौधों की पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं, जिससे कि उनकी सतह पर से बहुत कम पानी भाप बनकर उड़ पाये और जो कुछ थोड़ा-बहुत पानी वे सूखी ज़मीन से पावें, वह उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए बचा रहे। ऐसे

पौधे जो झीलों के शान्त जल में होते हैं, जैसे कमल, उनके पत्ते बहुत चौड़े होते हैं और पानी पर तैरा करते हैं। परन्तु ऐसे पौधे जो सागर ऐसे अशान्त जल में रहते हैं, उनके पत्ते केवल तेज़ हवा के झोंके सहनेवाले पेड़ों के पत्तों की तरह कटे ही नहीं होते बल्कि चमड़े की तरह चीमड़ होते हैं, ताकि वे लहरों के धक्कों से आसानी से फट न सकें। पशुओं में भी अपने को परिस्थिति के अनुसार बना लेने के बहुत उदाहरण पाये जाते हैं। मेढक के बच्चों के, जो पानी में पैदा होते हैं, मछलियों की तरह पानी में साँस लेने के लिए गलफड़े होते हैं। और तैरने के लिए चौड़ी दुम होती है। किन्तु जब वे बड़े हो जाते हैं और स्थल पर रहने लगते हैं, उनकी दुम नष्ट हो जाती है और कूदने के योग्य अंग निकल आते हैं तथा गलफड़े की जगह साँस लेने के लिए फेफड़े भी बन जाते हैं। एक और अच्छा प्रमाण दाँत का है। गाय, घोड़े, बकरी आदि वनस्पति खानेवाले जानवरों के दाँत चौड़े होते हैं और कुचलनेवाली सतह नीची-ऊँची होती है, ताकि वे मुलायम वनस्पति को कुचल कर चबा सकें; लेकिन शेर, कुत्ते, बिल्ली आदि मांसाहारी जानवरों के दाँत बहुत मज़बूत, पतले और नुकीले होते हैं जिससे वे मांस को सहज में फाड़ और हड्डियों को चबा सकें। इसी तरह के अनेकों उदाहरण पौधों और पशुओं के दिये जा सकते हैं, जिससे प्रकट होता है कि जिन विभिन्न परिस्थितियों में उन्हें रहना होता है, उसी के अनुसार उनकी बनावट भी बदल जाती है। या यों कहिये कि उनमें यह शक्ति पाई जाती है कि वे अपने आपको उसी परिस्थिति के योग्य बना लेते हैं, जहाँ वे रहना चाहें या जहाँ उन्हें रहना पड़े। इस तरह की बात किसी निर्जीव पदार्थ के बारे में नहीं कही जा सकती।

सजीव और निर्जीव की समानताओं और असमानताओं के बारे में हमने थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब केवल सजीव पदार्थों की ओर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि हम तीन प्रकार के जीवधारियों में कैसे भेद कर सकते हैं।

वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं में भेद

हम पहले ही कह चुके हैं कि पौधे और पशु दोनों जीवधारी हैं; और एक मुर्दा तथा ज़िंदा पेड़ या फूल में भेद करना उतना ही आसान है, जितना एक मृत और जीवित पशु में। किन्तु देखा जाय कि एक जीवित पौधे और एक जीवित पशु में भेद कर सकना सदा सम्भव है कि नहीं? आप एक आम के पेड़ को देखते हैं और उसे पौधा कहते हैं; उसी पेड़ के नीचे चरती हुई भैंस को देखते हैं और उसे पशु कहते हैं। लेकिन शक्ल के अतिरिक्त वे दोनों और किस तरह भिन्न हैं? आम का पेड़ जिस प्रकार लंबाई-चौड़ाई में बढ़ता है, अपने भीतर खाना और पानी खींचता है और बीज पैदा करता है, जिनसे उसी की तरह के और पौधे उगते हैं; उसी प्रकार भैंस भी अपने आस-पास के पेड़-पत्तों को खाकर बड़ी होती है और सन्तानोत्पत्ति करती है। अन्य वृक्षों के ढंग भी आम के वृक्ष की ही भाँति होते हैं और बहुतेरे पेड़ों में चलने की भी शक्ति होती है। वे प्रकाश और धूप की ओर झुकते हैं या सहारे के चारों ओर घूमते हैं, जैसे कि गुलाब, चमेली, या सेम की बेलें, और कुछ छुईमुई (लाजवंती) की तरह एक अर्थ में चेतना और इच्छा भी रखते हैं। फिर भी पौधे पशुओं से भिन्न हैं।

पौधों की गति अधिकांश पशुओं के चलने-फिरने के समान नहीं होती। मेढक, मछलियाँ, साँप, तोते, ऊँट, बन्दर, और आदमी जैसे जीवधारी इच्छानुसार इस जगह से उस जगह अपना स्थान-परिवर्त्तन किया करते हैं। केला, नीम और बरगद की तरह के वृक्ष जहाँ उपजते हैं वहीं स्थिर रहते हैं। वे अपनी इच्छानुसार अपना स्थान नहीं बदल सकते। किन्तु संसार के सभी जीवधारी ऊपर बताये गये पशुओं की तरह एक जगह से दूसरी जगह आ-जा सकने में समर्थ नहीं हैं, जैसे समुद्री पिचक्के (ऐसीडियन्स), मूँगे (कोरल्स), स्पंज (स्पंजेज़) तथा अन्य दूसरे जंतु जो पटारों पर या पानी के नीचे और पदार्थों में जमे रहकर ही पौधों की ही तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसी तरह बहुत-सी छोटी-छोटी वनस्पतियाँ हैं जो जमी नहीं होतीं वरन् पानी पर तैरा करती हैं। इसलिए वास्तव में ठीक-ठीक हम यही कह सकते हैं कि जीव-जन्तुओं का बहुत बड़ा भाग इच्छानुसार चल-फिर सकता है परन्तु वनस्पतियाँ बहुत कम ऐसी हैं जो ऐसा कर सकें। ये स्थायी शाखायुक्त जंतु जो देखने में पेड़ों की भाँति प्रतीत होते हैं, हमारे देश की प्राणिशास्त्र की प्रयोगशालाओं में देखे जा सकते हैं। उनमें से एक, एनीमोन, जो समुद्र के तल में होता है और वनस्पति की तरह एक स्थान पर स्थिर रहता है, अगले पृष्ठ पर दिये गये चित्र में आप देख सकते हैं। ऊपर जिन वनस्पति जैसे जन्तुओं का उल्लेख किया गया है वे न केवल पेड़ों की तरह बढ़ते और शाखायें ही फैलाते हैं वरन् उनमें से कई जीवन नष्ट किये बिना ही टुकड़ों में काटे जा सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे एक बड़े आलू के टुकड़े करके बोने से हर एक टुकड़े से नया पौधा उग आता है,

जीवित स्पंज के कटे टुकड़े भी यदि समुद्र में बिखेर दिये जायँ तो बढ़कर पूरे स्पंज हो जाते हैं ! जैसे कि तुम गुलाब या नीम की डालियाँ काटते हो तब भी उसमें से नई टहनियाँ निकलती रहती हैं और पौधा बढ़ा करता है, उसी तरह छिपकली की दुम भी काटे जाने के बाद फिर बढ़ जाती है। इस तरह हमें मालूम होता है कि केवल ऊँची या बड़ी जाति के पशु और पेड़ ही सरलता-पूर्वक एक दूसरे से भिन्न करके पहचाने जा सकते हैं। नीची जातियों में, जो बिलकुल छोटी हैं या इतनी छोटी कि आँखों से देखी भी नहीं जा सकतीं—भेद अधिक नहीं है और बहुत नीची जा-तियों में यह भेद केवल नाममात्र के लिए या नहीं के बराबर है । उनके बारे में यह कहना भी कठिन है कि वे वन-स्पति हैं या जंतु।

वनस्पति और जानवरों के भोजन ग्रहण करने के ढंगों में भी एक स्पष्ट अन्तर है। दोनों ही को जीने और बढ़ने के लिए कार्बन और नाइट्रो-जन की आवश्यकता होती है, परन्तु वे उसे भिन्न रीतियों से प्राप्त करते हैं । वनस्पति अपना कार्बन पत्तों से श्वास द्वारा गैस के रूप में हवा में मिले हुए कार्बन डाइआक्साइड से लेते हैं । इसके बाद अपने हरे रंगवाले पदार्थ, पर्णहरित (क्लोरोफ़िल), की सहायता से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वे उसे अपने तन्तुओं में विषम संयोजित ((Complex Compound) के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं। वनस्पति को जितने नाइट्रो-जन की आवश्यकता होती है, वह उसे पृथ्वी के नाइट्रेट से मिलती है। यह नाइट्रेट पृथ्वी के अन्दर पानी में घुला हुआ रहता है और पेड़-पौधे अपनी जड़ों द्वारा उसे अपने में खींच लेते हैं। जानवर अपना कार्बन और नाइट्रोजन सीधे पृथ्वी से नहीं प्राप्त कर सकते। वे उसे शाक या मांस के आहार के रूप में पाते हैं, जो कार्बन और नाइट्रोजन के बने-बनाये मिश्रण (कम्पाउण्ड) हैं । हम लोग या तो अनाज (जैसे गेहूँ, चना, बाजरा) या फल जैसे (अंगूर, संतरे, केले, आम) या पत्ते (जैसे भाँति-भाँति के शाक) खाते हैं । इनके लिए हम पौधों पर निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त दूध या शहद की तरह के पदार्थों के लिए हमें जानवरों पर निर्भर होना पड़ता है। इसी भाँति पशु अपने खाने के लिए पौधों पर या अन्य जानवरों पर निर्भर हैं। ये अन्य जानवर उसी तरह दूसरे पेड़ों पर निर्भर हैं। इससे विदित होता है कि पृथ्वी पर जन्तुओं से पहले पेड़-पौधों का जन्म अवश्य हुआ होगा।
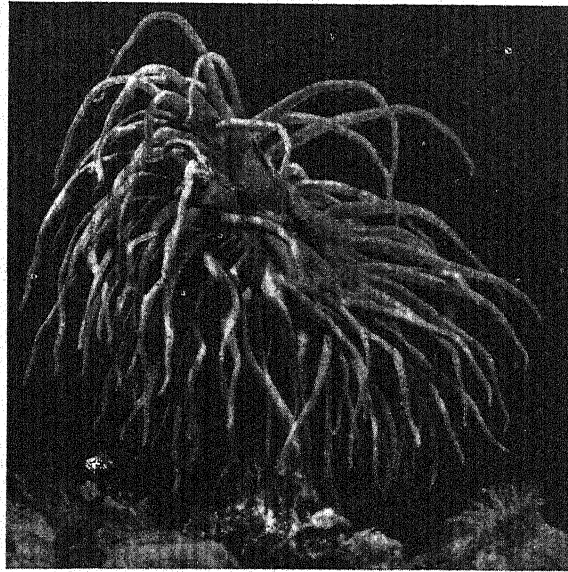
शक्ल सूरत में वनस्पति जैसा जंतु एनीमोन
जो समुद्र के तले की चट्टानों पर स्थायी रूप से चिपका रहता और मछलियों का आहार करता है।

आदमी और अन्य जीवों में अन्तर

अब कुछ आदमी तथा अन्य पशुओं के बारे में विचार किया जाय। मनुष्य और अन्य जान-वरों में भोजन और भोजन करने के ढंग में कोई ख़ास अन्तर नहीं है, जैसा कि जानवरों और पेड़-पौधों में पाया जाता है। बन्दर, गाय, कुत्ते और तोते उनमें से अधिकांश चीज़ों को खा सकते हैं, जिन्हें हम खाते हैं और वे बहुत-सी अन्य बातों में हमारा-जैसा आचरण करते हैं। वे एक चीज़ पसन्द करते हैं और दूसरी नापसन्द। वे एक चीज़ की खोज में रहते हैं और दूसरी से बचते रहते हैं। दूसरे शब्दों में मनुष्य की तरह ही उनकी अनुभूति होती है, चेतना होती है और इच्छा होती है। प्रत्येक व्यक्ति जिसने जानवर पाले हैं, जानता है कि वह भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। कौन ऐसा होगा जिसने घर की बिल्ली का दुःखद रुदन न सुना होगा ! वे चिड़ियाँ और जानवर, जो स्वतन्त्र होते हैं, क़ैद किये जाने पर कभी-कभी दुःख से मर जाते हैं। तब क्या ऐसी कोई चीज़ है, जो हममें और हमारे पशु-साथियों में भेद कर

सके? यह सच है कि बहुत-से काम जो हम कर सकते हैं, पशु नहीं कर सकते, पर यह भी सच है कई काम ऐसे भी हैं जिन्हें वे कर सकते हैं और हम नहीं। चिड़ियाँ बिना किसी यन्त्र की सहायता के उड़ सकती हैं। उनमें से कई तो लगातार घण्टों तक उड़ सकती हैं मानो वे थकती ही नहीं। इसके विपरीत हम लोगों का दम इसी ठोस पृथ्वी पर थोड़ी-सी दौड़ लगाने ही पर फूलने लगता है। बन्दर एक छत से दूसरी छत पर, एक डाल से दूसरी डाल पर आसानी से कूद जाता है, यद्यपि मनुष्य यह नहीं कर सकता। यहाँ तक कि नन्हीं मकड़ी ऐसा जाला बुन सकती है, जो मनुष्य के आज तक के कौशल द्वारा बनाये हुए किसी भी सूत से बढ़कर होता है। किन्तु ऐसे बड़े बन्दरों के अतिरिक्त जो आदमी के सम्पर्क में रहते हैं, अन्य बड़े जानवर भी उचित और अनुचित का भेद नहीं जानते। उनमें चेतना है, पर निर्णयात्मक बुद्धि नहीं। कदाचित् अधिकांश जानवरों और मनुष्य में यही प्रमुख भेद हो।

जंतु-जगत् में मनुष्य का सबसे निकट सम्बन्धी—चिम्पैंज़ी

जिसका स्वाभाविक बर्त्ताव मनुष्य से इतना अधिक मिलता है कि यह कहना कठिन है कि जंतु जगत् में मनुष्य ही केवल एक ऐसा प्राणी है जो बुद्धि से युक्त हो। अनेक बातों में इसका आचरण मनुष्य से मिलता-जुलता है। यह एक अजीब तरह की गुनगुनाने की ध्वनि निकालता हुआ मनुष्य के बोलने की नक़ल-सी करने लगता है, अपने बच्चों को मनुष्य की तरह छाती या गोद से चिपका लेता है—यहाँ तक कि थोड़ा-सा सिखाने पर कपड़े पहन कर और मेज़-कुर्सी पर बैठकर छुरी और काँटे या चम्मच के द्वारा बिल्कुल आदमी की तरह खाना खाना भी सीख जाता है।

दूसरा और अंतिम भेद मनुष्य की भाषण शक्ति का महान् विकास प्रतीत होता है। सारे जंतु-जगत् में यह मनुष्य को ही प्रकृति से प्राप्त विशेष देन है। यह सच है कि प्रकृति ने पशुओं, पक्षियों, यहाँ तक कि छोटी-छोटी चींटियों को भी अपनी-अपनी बोली दी है। किन्तु मनुष्य की बोली और अन्य पशुओं की बोली में एक विशेष अंतर है। पशुओं को कुछ गिने-चुने स्वर ही प्रकृति से प्राप्त हुए हैं और वे उन्हें ही बार-बार दोहराया करते हैं। यह कहना कठिन है कि उनकी बोली में कोई अर्थ भी रहता है या नहीं। पर मनुष्य की भाषा का निरंतर विकास होता रहा है और देश-देश में उसका नया-नया रूप प्रस्फुटित हुआ है। इस भाषा के ही द्वारा मनुष्य को प्रकृति ने अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता प्रदान की है।

मनुष्य
की कहानी
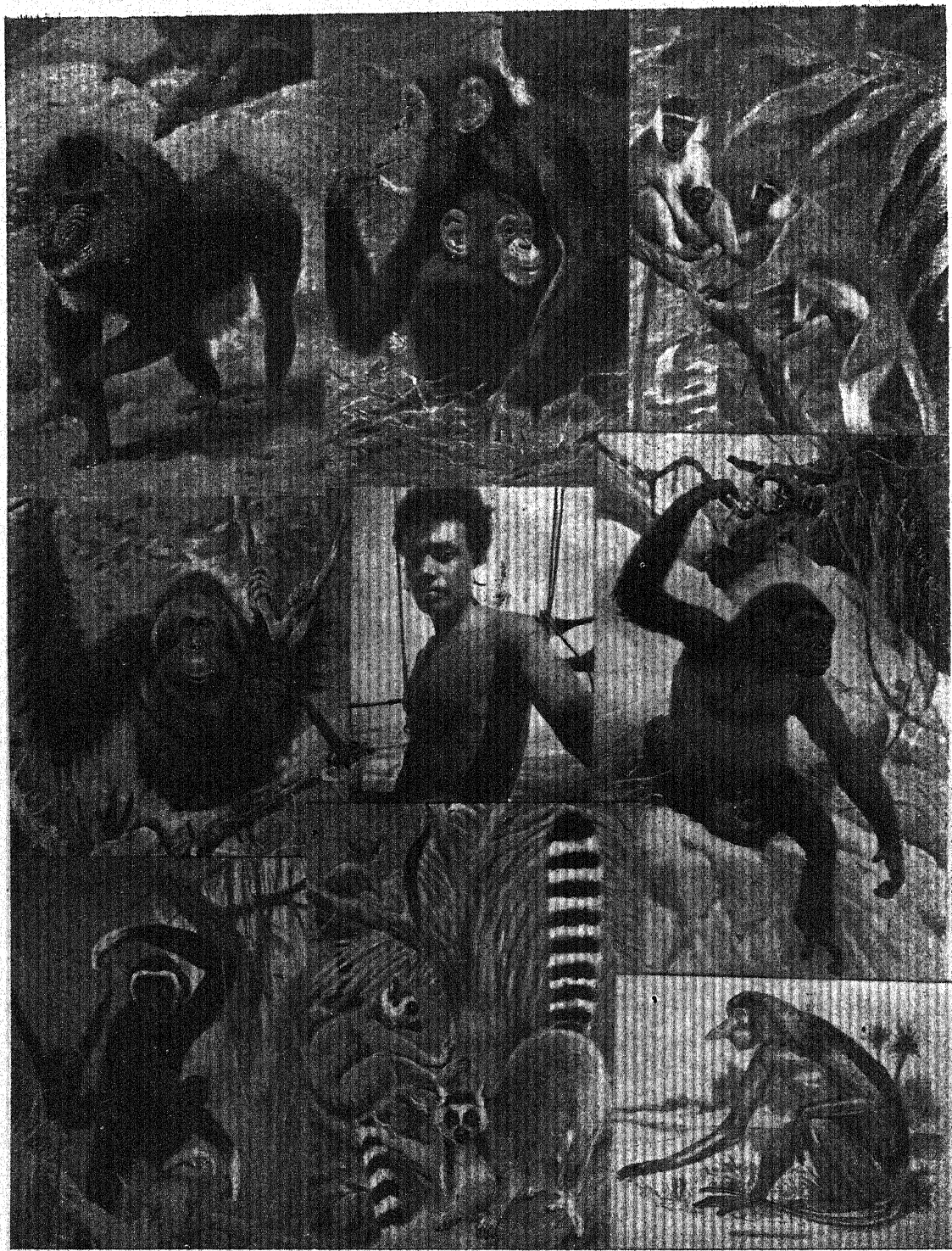
मनुष्य और उसके निकटतम संबंधी मानवसम वानर

(ऊपर से नीचे बाएँ से दाहिनी ओर के क्रम से) पहली पंक्ति में—मैंड्रिल नामक वानर, चिम्पैंजी, और लंगूर। दूसरी पंक्ति में—ओरङ्गउटाङ्ग, मनुष्य, और गोरिल्ला। तीसरी पंक्ति में—सफ़ेद हाथोंवाला गिबन, लीमर और लंबी नाकवाला बबून।
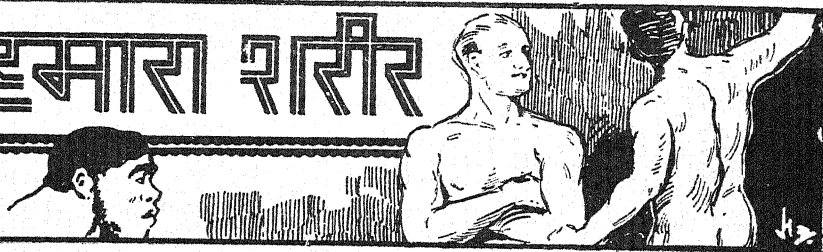
हम कौन और क्या हैं ?

हममें और अन्य जीवों में समता

विश्व और पृथ्वी, तथा पृथ्वी पर दिखाई दे रही निर्जीव और सजीव सृष्टि का सामान्य रूप से अध्ययन करने के बाद स्वभावतया हमारी आँखें स्वयं अपने आप ही की ओर मुड़ती हैं, क्योंकि सृष्टि की सारी महिमा, उसका सारा महत्त्व ही, इस बात में है कि हम उसके प्रधान खिलाड़ी हैं। यह विभाग हमारी अपनी उस कहानी का प्रथम अध्याय है। अपना यह अध्ययन आरंभ करने पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान जिस पहलू पर जाता है, वह है हमारा अपना स्थूल भौतिक स्वरूप, जंतु-जगत् में हमारा स्थान, हमारी शरीर-रचना और उसके विकास का इतिहास, हमारे शरीर के अवयव या भाग, उनमें होनेवाले रोग और उनका निदान, आदि, आदि। इस विभाग में इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन आप पायेंगे।

मनुष्य भी जंतु-जगत् का सदस्य है

यदि तुमसे कोई पूछे, "तुम आदमी हो या जानवर" तो अवश्य तुम यही उत्तर दोगे, "हम आदमी हैं, जानवर नहीं।" लेकिन चाहे तुम मानो या न मानो, और चाहे तुम्हें यह बात अच्छी न लगे, हम तुम्हें यह बताना चाहते हैं कि हम, तुम और सब आदमी अन्य जीवधारियों की तरह जानवर ही हैं। इसमें कोई घबड़ाने या परेशान होने का कारण नहीं। यह सच है कि हम लोग और जन्तुओंसे भिन्न हैं। मनुष्य की-सी बुद्धि और बोलचाल दूसरे जीवों में नहीं पाई जाती, उसके शरीर का आकार और रहन-सहन के नियम भी उनसे भिन्न हैं। पर हाथी व घोड़े, मक्खी और मच्छरों से उसी प्रकार भिन्न हैं, जैसे हम-तुम और जानवरों से। लेकिन इस भिन्नता के होते हुए भी तुम उन सबको जानवर ही कहते हो। फिर यह मान लेना क्यों अखरता है कि अन्य जीवधारियों की तरह प्रकृति की गोद में तुम भी पैदा हुए हो, और जैसा कि पिछले स्तंभ में बतलाया गया है जन्तु-जगत् के एक मुख्य भाग हो।

इस पृथ्वी पर हम और सब ही प्राणी रहते-बसते हैं। हमारी ही तरह वे भी पैदा होते, खाते-पीते, बढ़ते और अन्त में मर जाते हैं। जैसे सर्दी, गर्मी, पानी, धूप इत्यादि हमको सताती हैं वैसे ही अन्य प्राणियोंको भी और जैसे हम उनसे बचने के उपाय करते हैं वैसे ही वे भी। अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध जैसे आदमी करते हैं वैसे ही दूसरे जानवर भी। अपनी और अपने परिवार की रक्षा के लिए मनुष्य एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते और मार-पीट करते हैं, उसी प्रकार अन्य जीवधारियों में भी आपस में द्वन्द्व होता है, लड़ाई-झगड़े चलते रहते हैं, और मार-काट होती रहती है। हमारी तरह और जीवों को भी पेट भरने के लिए भोजन और रहने के लिए सुरक्षित स्थान चाहिए। इन सब बातों से स्पष्ट है कि हमारी और अन्य जानवरों की मुख्य-मुख्य आवश्यकताएँ एक ही सी हैं, और हमारा व उनका रहन-सहन भी अधिकांश में मिलता-जुलता है। कदाचित् यही कारण है, जो हम बहुत-से प्राणियों को देखकर खुश होते हैं, और उनमें से बहुतों को अपने घरों में पालते भी हैं। कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना, लाल और कबूतर इत्यादि और उनके बच्चे हमें ऐसे प्यारे लगते हैं कि हम उन्हें अपने साथ रखना और खिलाना-पिलाना पसंद करते हैं। उनके शरीर, रूप-रंग, चलना-फिरना, खेलना-कूदना देखकर हमारे बच्चे कैसे प्रसन्न होते हैं और उनकी बोली को ध्यान से सुनते और बड़ी उत्कंठा से नक़ल करने की कोशिश करते हैं।

मनुष्य के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि किसी समय वह अन्य जीवधारियों को भी अपना ही सा प्राणी मानता था और उनकी उत्तम बल-बुद्धि को पूजनीय समझकर

उनके शरीर के अनेक अंग, सींग, पर, दाँत, नाख़ून इत्यादि अपने शरीर पर धारण कर रोग और आपत्तियों से बचने का प्रयत्न करता था। बहुत-सी प्राचीन जातियों का विचार था कि उनके वंश की उत्पत्ति किसी पशु या पक्षी विशेष से हुई थी; इसलिए वे उसकी मूर्त्ति चिह्नस्वरूप अपने घर में रखतीं और उसकी पूजा करती थीं। आज तक भारत-वर्ष में हिन्दुओं में वाराह अवतार, नृसिंह अवतार, आदि कई पूरे और आधे जानवर व आधे मनुष्य के शरीरवाले देवताओं के अवतार माने जाते हैं, और उनकी मूर्त्तियाँ पूजन के लिए बनाई जाती हैं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, आदमी की बुद्धि में परिवर्त्तन होता गया। वह अपने को पशुओं से बिलकुल भिन्न समझने लगा और उनसे सारा नाता तोड़ दिया। परन्तु एक बार फिर आदमी की मति ने पलटा खाया। आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट होने लगा कि रूप, कार्य्य, उत्पत्ति, वृद्धि और बुद्धि में आदमी और जानवरों में बड़ी समता है। हमारे शरीर की रचना उच्च श्रेणियों के प्राणियों की सी ही है। जब हमने उनके और अपने शरीर के अंगों की तुलना की तो पता चला कि उनके आँख, कान, नाक, जिगर, फेफड़े, उँगलियाँ और नाख़ून आदि हमारे अंगों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। बहुत-से बाहरी और भीतरी अंग निःसन्देह बिलकुल एक ही से बने हैं। इसलिए मानना ही पड़ता है कि मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है। अपने अहंकार और अज्ञानता के कारण मनुष्य अपने आपको जानवरों से भिन्न और अलग मानने लगा है। अब भी बहुत से लोग हैं, जो अपनी असली उत्पत्ति को सुनकर चिढ़ते हैं। हम अपने वंश के बारे में बहुत कम ध्यान दिया करते हैं। मामूली तौर से हमको अपने दादा, परदादा या यों कहिए कि केवल दो-तीन पीढ़ियों ही का हाल मालूम रहता है। यदि हम पच्चीस-तीस पीढ़ियों का हाल मालूम कर सकें, तो हमें अच्छी तरह ज्ञात हो जाय कि हम सबके पूर्वजों में सभी प्रकार के मनुष्य थे। कुछ होशियार कुछ बेवक़ूफ़, कुछ अमीर, कुछ ग़रीब, कुछ चंगे, कुछ रोगी, कुछ विद्वान्, कुछ पागल, कुछ नेक, कुछ मनुष्य-जैसे और कुछ जंगली जानवर-से। तो भी हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं कि हमें जानवरों के बादशाह की पदवी मिले। हम तो अपने को जानवरों से कोसों दूर समझना उचित जानते हैं! किन्तु यह हमारी भूल है।

कुछ लोग कहेंगे कि यह उचित नहीं कि हम अपनी श्रेष्ठता का ध्यान न रखते हुए यही प्रकट करें कि मनुष्य जानवरों के अधिक समान है, और उन्हीं का एक अति उत्तम और श्रेष्ठ रूप है। लेकिन कुछ विद्वानों का विचार है कि अगर किसी को हर घड़ी उसकी अच्छी बातों और बड़प्पन का ही ध्यान दिलाया जाय, और उसकी कमी, बुराइयों व त्रुटियों को उससे छिपाया जाय, तो उसे अपने ऊपर झूठा गर्व हो जाने की सम्भावना है। परन्तु दोनों प्रकार की बातों से अपरिचित रहना और भी बड़ी भूल है। अतः यह उचित जान पड़ता है कि हम अपने पाठकों पर अपनी असलियत अवश्य प्रकट कर दें, उन्हें यह बता दें कि हम और जीवधारियों की तरह हैं तो एक प्राणी ही, लेकिन बहुत-सी बातों में उनसे भिन्न भी हैं, और अपने ऊँचे स्वभाव व लक्षणों के कारण, सब जीवों से अलग, मनुष्य की श्रेणी में गिने जाते हैं। इस अध्याय में यही बताया जायगा कि आदमी और अन्य जानवरों में क्या समता है, और कौन-से जन्तु उसके निकट सम्बन्धी हैं। इसके पीछे दूसरे भाग में यह दिखाया जायगा कि मनुष्य अपने से मिलते-जुलते प्राणियों से किन-किन बातों में भिन्न हैं, और उसमें क्या श्रेष्ठता है।

मनुष्य व अन्य प्राणियों की आत्मा एक है

यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिक और प्रकृतिवादी पिथेगोरस ने, जो ईसामसीह से कई शताब्दी पहले इस संसार में था, पहले पहल यह समझाने की कोशिश की थी कि जानवरों में भी आदमी के भाई-बन्धु होते हैं। कहावत यह है कि एक समय उसने किसी आदमी को अपने कुत्ते को निर्दयता से पीटते देखा तो उससे कहा, "कुत्ते पर दया करो और उसे न मारो, क्योंकि इस कुत्ते के चिल्लाने में मुझे अपने एक स्वर्गीय प्यारे मित्र की आवाज़ सुनाई देती है।" तब उस आदमी ने कुत्ते को मारना बन्द कर दिया। पिथेगोरस का मत था कि आत्मा अमर है, केवल शरीर बदलती रहती है। आत्मा एक जीव के शरीर को त्याग कर दूसरे के बदन में प्रवेश कर लेती है। जब समय आने पर वह जीव भी मर जाता है तब उसे छोड़कर किसी दूसरे जीव में जा पहुँचती है। यही आत्मा मनुष्य से जानवर के शरीर में और फिर जानवर से मनुष्य के शरीर में आ जाती है। हिन्दुओं का भी ऐसा ही विश्वास है कि आत्मा जन्म-जन्मान्तर तक शरीर धारण कर इस संसार में आती रहती है, कभी किसी प्राणी का और कभी किसी का रूप धारण कर लेती है। जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती, इसी प्रकार आवागमन होता रहता है। तुमने भी अख़बारों में पढ़ा या सुना होगा कि कभी-

कभी ऐसे बालक पैदा हो जाते हैं जो अपने पहले जन्म की बातें याद रखते हैं, और उन्हें जल्दी नहीं भूलते।

हमारे शरीर में भी वही अवयव हैं, जो ऊँची श्रेणी के जन्तुओं में हैं। जैसे उनमें सोचने के लिए मस्तिष्क, रक्त-संचालन के लिए हृदय, साँस लेने के लिए फेफड़े, भोजन कुचलने को मुँह में दाँत, और पाचन करने के लिए पेट में थैली और आँतें तथा शरीर का रूप क़ायम रखने के लिए हड्डियाँ होती हैं, वैसे ही सब अंग आदमी में भी पाये जाते हैं। जैसे उनमें सब अंग मिल-जुलकर शरीर के पालन और रक्षा के लिए अपना-अपना कर्त्तव्य करते रहते हैं, उसी तरह हमारे अंग भी एक-दूसरे से हिल-मिल अपना कार्य्य करते हुए शरीर का पालन करते हैं। जैसे अन्य प्राणियों के अंग कोषों के बने हैं, वैसे आदमी के अंग भी बहुत-से छोटे-छोटे कोषों के बने हुए हैं और इन सब कोषों में वही जीवन-मूल पाया जाता है, जो समस्त जीवन का मूल है। इससे साफ़ पता लगता है कि हमारे शरीर की ऊपरी व भीतरी रचना ही वैसी नहीं, जैसी और ऊँची श्रेणी के प्राणियों की, किन्तु हमारे अंगों का कार्यक्रम भी एक ही सा है। यही नहीं, अगर हिन्दुओं का मत ठीक है, तो आत्मा भी वही है। इन बातों को जान कर कोई यह कैसे न मानेगा कि मनुष्य भी एक जन्तु ही है?

जन्तु-जगत् में मनुष्य का स्थान क्या है?

यदि आदमी जानवरों में सम्मिलित है ही, तो हमें यह देखना है कि जीवधारियों में उसका क्या स्थान है। दुनिया के सारे जीव दो मुख्य भागों में विभाजित हैं—१. एक कोषवाले, जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं और जिनका पूर्ण शरीर एक ही कोष का बना होता है; २. बहु-कोषवाले, जिनमें छोटे-छोटे से लेकर बड़े से बड़े जीव पाये जाते हैं। क्योंकि मनुष्य का शरीर अगणित कोषों का बना हुआ है; अतएव वह बहुकोषक प्राणियों के समूह में गिना जाता है। परन्तु वह कीड़ों, मकोड़ों, मक्खी, मच्छरों, बिच्छुओं से भिन्न है, क्योंकि उसकी पीठ में हाथी, घोड़े, कुत्ते, बिल्ली, तोते, साँप, मेढक, मछली के समान रीढ़ की हड्डी होती है। इसलिए हम सब पृष्ठवंशी श्रेणी के जीव हुए। लेकिन इस वंश में भी बहुत प्रकार के जीव हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जिनकी खाल पर बाल होते हैं और जिनकी माताएँ बच्चों को अपने स्तन द्वारा दूध पिलाती हैं, जैसे गाय, बकरी, बन्दर, लंगूर, ऊँट, घोड़ा, चूहा, चमगीदड़ इत्यादि। किन्तु बहुत-से ऐसे हैं, जिनमें न तो शरीर के ऊपर बाल ही होते हैं और न माताओं के स्तन पाये जाते हैं, जैसे चील, कौआ, सर्प, छिपकली, मछली, मेढक, इत्यादि। अब तुम स्वयं समझ सकते हो कि क्यों मनुष्य गाय-बैल की तरह पृष्ठ-वंशियों के स्तनपोषित समुदाय में सम्मिलित है। परन्तु इस समुदाय में भी नाना प्रकार के प्राणी हैं। उनमें से वनमानुष, बन्दर और लीमर ऐसे हैं जो आदमी से सबसे अधिक मिलते हैं और उनमें आदमियों के कुछ लक्षण पाये जाते हैं—जैसे हाथ व पैरों में वस्तुओं के पकड़ने की शक्ति, उँगलियों और अँगूठों में पंजों की अपेक्षा चपटे, चौड़े नाख़ून, पेट पर सामने की ओर दो स्तन, गले में हँसली की हड्डी, खोपड़ी के भीतर अन्य स्तनपोषी जीवों की अपेक्षा बड़ा और पेचदार मस्तिष्क। इसलिए मनुष्य और वानर वर्ग, अन्य स्तनपोषी जन्तुओं से भिन्न, एक ही श्रेणी में शामिल किये जाते हैं। इस श्रेणी को अँगरेज़ी भाषा में 'प्राइमेट' और अपनी भाषा में "प्रधानभागीय" कहते हैं।

हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से विदित होता है कि हम वानरवंश के वंशज हैं। सब देशों के मनुष्य और सारी जातियों के वानर एक ही ढाँचे पर बने हुए हैं। किन्तु वानरवंश में भी अन्य समूहों की भाँति कई श्रेणियाँ हैं। नई दुनिया, अर्थात् उत्तरी व दक्षिणी अमरीका, के बन्दर पुरानी दुनिया, अर्थात एशिया, योरप और अफ़्रीका, के बन्दरों से भिन्न हैं। वे अपनी दुम से वृक्षों की डालियाँ पकड़ लटक जाते हैं और उसी के सहारे डाली-डाली कूदते फिरते हैं। परन्तु इन नई दुनिया के दुम से लटकने-वाले बन्दरों में पुरानी दुनिया के बन्दरों की तरह गले में खाना एकत्रित करने के लिए थैलियाँ नहीं होतीं। इन दो प्रकार के वानरों के अतिरिक्त एक और भी जाति है जिसमें दुम नहीं पाई जाती और जो आदमी की तरह थोड़ा-बहुत खड़े होकर चल-फिर सकती है। इनको हम 'मानवसम' वानर या वनमानुष कहते हैं। इन ऊँची जातिवाले बन्दरों और मनुष्यों की जटिल बनावट में अपूर्व समानता है। बदन की हर एक हड्डी, पेशी, नाड़ी, रक्त-प्रणाली इत्यादि दोनों में बिल्कुल एक ही सी बनी हुई हैं। हमारी-तुम्हारी तरह न तो इन बनमनुष्यों के दुम होती है, न खाना भरने को गले में थैली और न नितम्बों पर बैठने में सहायता देने वाली गद्दियाँ। लेकिन जिस प्रकार मानवसम वानरों और नई व पुरानी दुनिया के बन्दरों में एक दूसरे से भेद है और जैसे अफ़्रीका देश और उसके निकट मेडागास्कर टापू में रहनेवाले अर्द्ध-वानर या 'लीमर' बाक़ी सब असली बन्दरों से अपनी विभिन्नता द्वारा सहज में पहचाने जा सकते

हैं, उसी प्रकार मनुष्य अपनी शारीरिक बनावट ही के अनुसार मानवसम वानरों और दूसरे बन्दरों के वंश से अलग किये जाते हैं। इन भेदों का वर्णन इस अध्याय के दूसरे भाग में किया जायगा। इस भाग में हम केवल यही बताना चाहते हैं कि मनुष्य और उससे मिलते-जुलते जीवों अर्थात् अन्य 'प्रधान भागीयों' में क्या समता है।

मनुष्य के शरीर के मुख्य स्मारक-चिह्न

इँगलिस्तान के नामी प्राकृतिक सर जे० ए० टौमसन साहब का कहना है कि मनुष्य का शरीर स्मारक-चिह्नों का चलता-फिरता अजायबघर है, अर्थात् उसके बदन में ऐसे बहुत-से चिह्न हैं, जिनसे उसकी वंशावली का पता चलता है। इनमें से कुछ चुने हुए मुख्य प्रमाण निम्नलिखित हैं।

१. नीची श्रेणी के स्तनपोषित जीवों की आँख में दो पलकों के अतिरिक्त एक और अच्छी ख़ासी झिल्ली भीतरी कोने में होती है, जो पुतली के आगे के भाग को साफ़ रखती है, मानो यह एक प्रकार की तीसरी पलक है। यह झिल्ली वनमानुषों और बन्दरों की आँख में भी होती है, किन्तु उतनी बड़ी नहीं जितनी अन्य स्तनपोषित प्राणियों में। अपनी आँख के भीतरी कोने को ध्यान से दर्पण में देखो तो तुम्हें भी इस तीसरी पलक का बचा हुआ चिह्न दिखाई देगा। किसी-किसी मनुष्य-जाति में यह औरों से अधिक बड़ा रहता है। प्राचीन समय में यह चिह्न समस्त मनुष्य-समाज में कदाचित् अब से बड़ा रहा होगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य का रहन-सहन जंगली और नंगे जानवरों के रहन-सहन की रीति से बदलता गया, इस झिल्ली की आवश्यकता हमारे नेत्रों को न रही और वह छोटी होने लगी। अब तो हम लोग नित्य सबेरे आँख-मुँह पानी से धोकर साफ़ कर लेते हैं और जो चिह्न बचा रह गया है सम्भव है कि आगे चलकर वह बिलकुल लुप्त हो जाय।

२. तुमने हाथी को चलते समय कानों को पंखे की तरह झलते हुए अवश्य देखा होगा, किन्तु यह भी जानते हो कि नहीं कि अधिकतर स्तनपायी हाथी की तरह अपने कान आगे-पीछे हिला सकते हैं। कानों को हिलाने के लिए इन सब जन्तुओं में विशेष पुट्ठे होते हैं। मनुष्य-जाति में कान हिलाने की शक्ति तो क़रीब-क़रीब बिलकुल नहीं रही, परन्तु कान हिलानेवाले पुट्ठे अभी तक बहुत छोटे रूप में कान
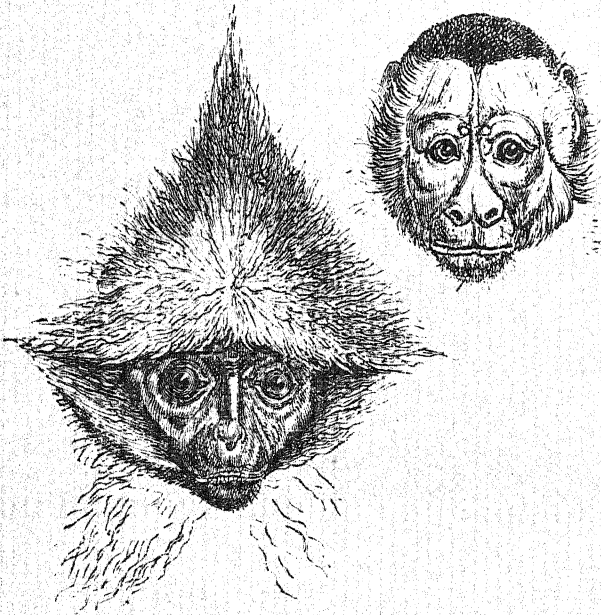
'नई' और 'पुरानी दुनिया' के वानर

(दाहिनी ओर) नई दुनिया अर्थात् अमेरिका में पाया जानेवाला बन्दर जो दुम से डालियाँ पकड़कर लटक जाता है और जिसके गले में खाना इकट्ठा करने की थैलियाँ नहीं होतीं। (नीचे) पुरानी दुनिया का वानर।

लीमर

जो बहुत अंशों में वानर-वंश से नाता रखता है। इसका अब पृथ्वीतल पर से लोप-सा होता जा रहा है। यह अफ्रीका के पास मैडेगास्कर द्वीप में मिलता है।

के पीछे मौजूद हैं और कभी-कभी ऐसे मनुष्य देखे गये हैं जो अपने पूरे कान या केवल ऊपरी ही भाग को आसानी से हिला लेते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय में सन् १६३३ में एक विद्यार्थी था जो अपने कान को पूरा और ऊपर नीचे का हिस्सा अलग-अलग हिला सकता था। तुम भी देखो कि अपने कान हिला लेते हो कि नहीं!

अब एक और स्मारक-चिह्न तुम्हें बताते हैं। सितम्बर १६३७ की 'विज्ञान-पत्रिका' में ठाकुर शिरोमणिसिंह का इस विषय में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख का कुछ संशोधित भाग इस प्रकार है—

मनुष्य की दुम क्या हुई?

बालक—क्या मनुष्य के भी कभी दुम थी?

गुरू—हाँ, आजकल तो नहीं होती है, परन्तु अपने पूर्वजों के तो अवश्य थी।

बालक—मैंने तो आज तक ऐसा नहीं सुना और न यह मेरी समझ ही में आता है कि हम "बेदुम के बन्दर हैं।" भला कहाँ हम और कहाँ जंगली बन्दर? हमारा और उसका कैसा सम्बन्ध। गुरुजी, मैं कभी उनको अपना पुरखा नहीं मान सकता।

गुरुजी—क्या जो बात तुम्हारी समझ में न आवे या जिसको कोई पूर्ण रूप से न समझा सके, वह ठीक ही नहीं हो सकती? अभी कल ही हम पढ़ रहे थे, एक समय विद्वान् लोग भी कहते थे कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और पृथ्वी अपनी जगह अचल है। वह यह मानते थे कि नित्य सबेरे सूर्य पूरब में निकलकर संध्या-समय पश्चिम में जा डूबता है और रात भर में पृथ्वी की दूसरी ओर का चक्कर पूरा कर फिर सबेरे पूर्व से ऊपर की ओर आते दीख पड़ता है। किन्तु अब साधारण लोग भी यह जानते हैं कि सूर्य अपने स्थान पर स्थिर है और पृथ्वी अपनी कीली पर एक रात-दिन में पूरा चक्कर लगा लेती है और उसके इस घूमने के कारण सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। जो बात किसी समय ठीक जान पड़ती थी, वास्तव में बिलकुल ग़लत थी। इसी प्रकार बहुत-सी बातें हैं, जो पहले सही मानी जाती थीं पर पीछे चलकर ग़लत सिद्ध हुईं, और कितनी ऐसी भी हैं, जो अभी असंभव जान पड़ती हैं, किन्तु आगे चलकर, भविष्य में, सम्भव हो जायँगी।

बालक—जी हाँ, यह तो मैं मानता हूँ कि बहुधा बहुत-सी बातों के समझने में धोखा हो जाता है और अज्ञानता के कारण जो बात समझ में नहीं आती ज्ञान पा जाने पर वही बात ठीक जान पड़ने लगती है।

गुरू—तो फिर यह भी मान लो कि पृथ्वी के आरम्भ में प्राणियों का आकार, रंग-रूप ऐसा न था जैसा हम आजकल देखते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उनमें परिवर्तन होता गया और आजकल जो-जो अपार जीव-जंतु सृष्टि में दीख पड़ते हैं सब उन्हीं प्रारम्भिक सीधे-सादे प्राणियों से ही विकसित हुए हैं।

बालक—तो वह प्रारम्भिक जीव हमारे और बन्दरों के भी दूर के पुरखे हुए?

गुरू—अवश्य! जन्तु-जगत् वाले भाग में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जायगा। यहाँ तो केवल दुम ही की बात है। पृष्ठ ६२ का चित्र देखो, जिसमें मनुष्य व चारों प्रकार के मानवसम बन्दरों की ठठरियाँ हैं। इन बनमानुषों में भी आदमी की तरह बाहर पूँछ नहीं दिखाई देती, परन्तु इस चित्र में सबकी रीढ़ की हड्डी में मणि-माला सी चार छोटी-छोटी गुरियाँ एक दूसरे से मिली हुई दुम की तरह लटक रही हैं। इन हड्डियों को पुच्छास्थियाँ कहते हैं। परन्तु मनुष्य में यह दुमवाली हड्डियाँ सब उतनी बड़ी नहीं होतीं जितनी मानव-सम बन्दरों में। बनमानुषों में ऊपरी दो या तीन बड़ी होती हैं, मनुष्य में केवल एक ही।

बालक—जब हमारे और इन वानरों के दुम है ही नहीं तो ये हड्डियाँ कहाँ से आईं?

गुरू—यही समझने की बात है। ऊपर बताये हुए स्मारक-चिह्न की तरह यह भी एक अवशिष्ट अंग है, जो शायद घटते-घटते किसी समय मानव-जाति से बिल्कुल लुप्त हो जाय। अभी तो गर्भावस्था में जब बच्चा माँ के पेट में होता है तो ख़रगोश या बिल्ली के भ्रूण की तरह दोनों टाँगों के बीच में पैरों से बड़ी, मुड़ी हुई, पीछे को निकली दुम मौजूद होती है (देखो पृष्ठ ६४ के चित्र में मानव भ्रूण) सब बनमानुषों के भ्रूणों में भी ऐसी ही दुम पाई जाती है किन्तु जैसे इन प्राणियों का भ्रूण बढ़ता जाता है उनकी बाहरी पूँछ घटती जाती है और माता के पेट से बाहर होने के समय तक लुप्त हो जाती है। केवल उसकी जड़ की हड्डियाँ मांस के भीतर बनी रहती हैं। कभी-कभी मनुष्य में ऐसा भी होता है कि बालक के पैदा होने के बाद भी यह भ्रूणवाली दुम बनी रह जाती है और टाँगों के बीच में लटकती हुई दिखाई देती है। भारतवर्ष ही में ऐसे-ऐसे बालक उत्पन्न हुए हैं (देखो पृष्ठ ६४ का चित्र)। कहा जाता है कि महाराज शिवाजी के गुरू रामदास
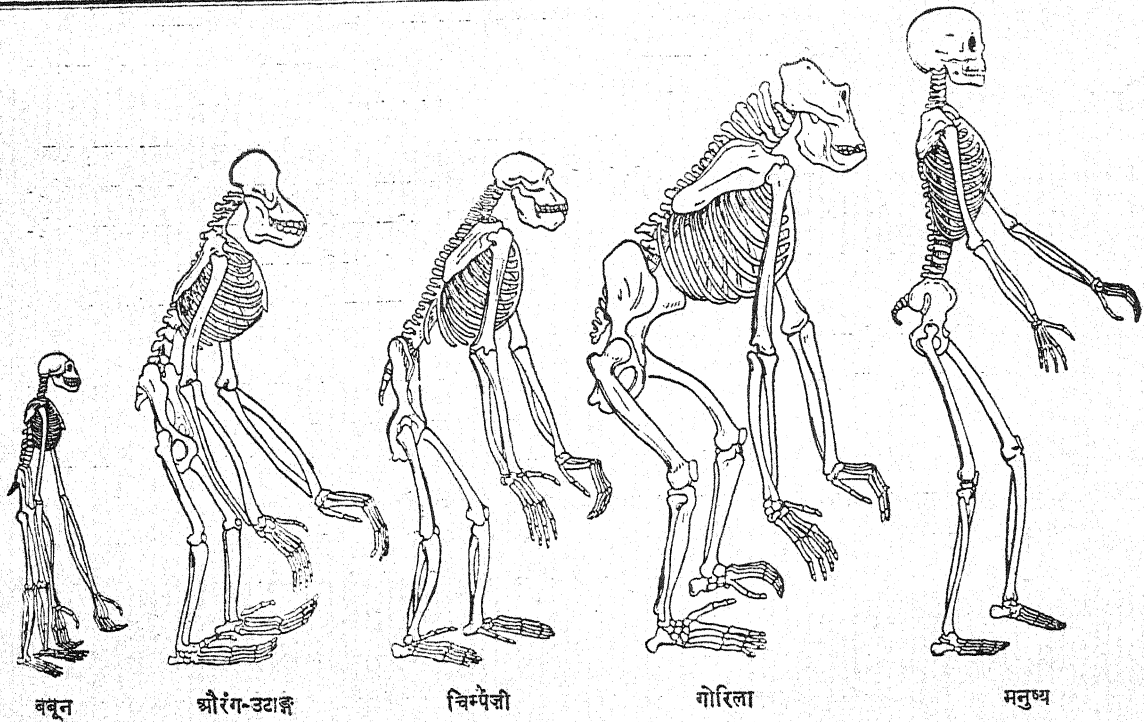
मनुष्य और अन्य मानवसम वानरों के ढाँचे की तुलना

इन सबके अस्थिपंजरों में रीढ़ के निचले सिरे की ओर निकली हुई दुम की हड्डी का बचा हुआ हिस्सा आप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

के भी छोटी-सी दुम थी। इतना ही नहीं, जैसे कान हिलाने की शक्ति जाती रहने पर भी हिलानेवाले पुट्ठे बाक़ी रह गये, वैसे ही न पूँछ रह गई और न दुम हिलाने की शक्ति, परन्तु जड़ की हड्डियाँ और हिलाने में सहायता देनेवाले स्नायु अब भी हममें बाक़ी हैं।

बालक—यह सुनकर मानना ही पड़ता है कि हममें भी 'बेदुम के बन्दर' ही नहीं, बल्कि कभी-कभी दुमदार मनुष्य भी पाये जाते हैं, और यह कि हम और हमारे पुरखों के भी प्राचीन समय में दुम रही होगी।

गुरू—बस इसी प्रकार किसी दिन यह भी मान लोगे कि बन्दरों और आदमियों के पुरखे एक ही थे।

ऊपर के तीनों प्रमाण शरीर के बाहरी अंगों के हैं। अब हम आपका ध्यान शरीर के भीतरी अंगों की ओर ले जाना चाहते हैं।

आदमी के पेट में छोटी और बड़ी आँतों के मिलने के स्थान से एक उँगली के समान नलिका पाई जाती है। इसको उपाहित अंग या आँत कहते हैं। घास चरनेवाले प्राणियों में यह अंग लम्बा और पाचन-क्रिया में उपयोगी होता है। किन्तु आदमी में वह व्यर्थ ही नहीं वरन् कभी-कभी हानिकारक होता है। जब किसी कारण से वह सूज जाता है या जब कोई कड़ा भोजन पदार्थ उसमें जा अटकता है तो पीड़ा होने लगती है और यदि वह पक जावे तो जान जोखों में आ जाती है और पेट चीरकर डाक्टर उसे काटकर बाहर फेंक देते हैं। वनमानुषों में भी यह उपाहित आँत पाई जाती है, परन्तु मनुष्य की आँत से बड़ी और अन्य स्तनपोषित जीवों की से छोटी होती है।

इनके अतिरिक्त मनुष्य के शरीर में और भी स्मारक-चिह्न हैं, जिनका वर्णन करना यहाँ उचित नहीं जान पड़ता। प्रोफ़ेसर वीडर शैम ने अपनी एक पुस्तक में ऐसे पचास अंग गिनाये हैं। परंतु इनमें से कई इतने छोटे हैं कि केवल हर एक के ज्ञान में नहीं आ सकते।

मनुष्य व अन्य स्तनधारियों की गर्भावस्था

अब हम मनुष्य, बन्दर, व अन्य जीवों में और दूसरी प्रकार की समताएँ बताते हैं, जिनके पढ़ने से तुम यह जान लोगे कि कैसे जन्तु एक दूसरे से आपस में रिश्ता रखते हैं और कैसे यह जान पड़ता है कि यह रिश्ता निकट का है या दूर का। अगले पृष्ठ के चित्र को ध्यान से देखिये। इसमें कुछ जानवरों के भ्रूण बनाये गये हैं। जिनको देखने से पता

लगता है कि मानव-गर्भ की वृद्धि अन्य जंतुओं के गर्भ की वृद्धि से कितनी मिलती-जुलती होती है। सब प्राइमेटों के भ्रूण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में एक से नहीं जान पड़ते बल्कि अपने से बहुत नीचे जीव, जैसे मछली या मेंढक के भ्रूण से भी समता रखते हैं। आरम्भिक अवस्था में सब प्राइमेटों के गर्भ का हृदय दो कोठरियों ही का होता है जैसा कि मछलियों का। लेकिन थोड़ा और बढ़ने पर उसमें मेंढक के हृदय की तरह तीसरी कोठरी भी बन जाती है। कुछ और वृद्धि होने पर चौथी कोठरी भी बन जाती है और भ्रूण का हृदय ऊँची श्रेणीवाले जन्तुओं के हृदय का-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त गर्भ-शास्त्रियों ने (यानी उन लोगों ने जिन्होंने बहुत-से जीवों के भ्रूणों का और उनके गर्भ में बढ़ने का अध्ययन किया है) सिद्ध कर दिया है कि सब (मनुष्य सहित) प्राणियों के गर्भ का आरम्भ एक ही कोष्ठ से होता है, इसी कारण उन सबमें कुछ अवस्था तक अधिक समानता रहती है। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, एक समूह का भ्रूण दूसरे समूह के भ्रूण से भिन्न होने लगता है और गर्भ की अन्तिम अवस्था में साफ़ मालूम होने लगता है कि वह किस श्रेणी के जीव का भ्रूण है। इससे यह भी समझ लोगे कि निकट के समूहों के भ्रूण में अधिक समय तक बहुत समता रहती है, और जितना एक जीव दूसरे जीव से दूर के समूह का होता है, उतने ही शीघ्र उनके भ्रूण एक दूसरे से भिन्न जान पड़ने लगते हैं। इसी प्रकार मनुष्य
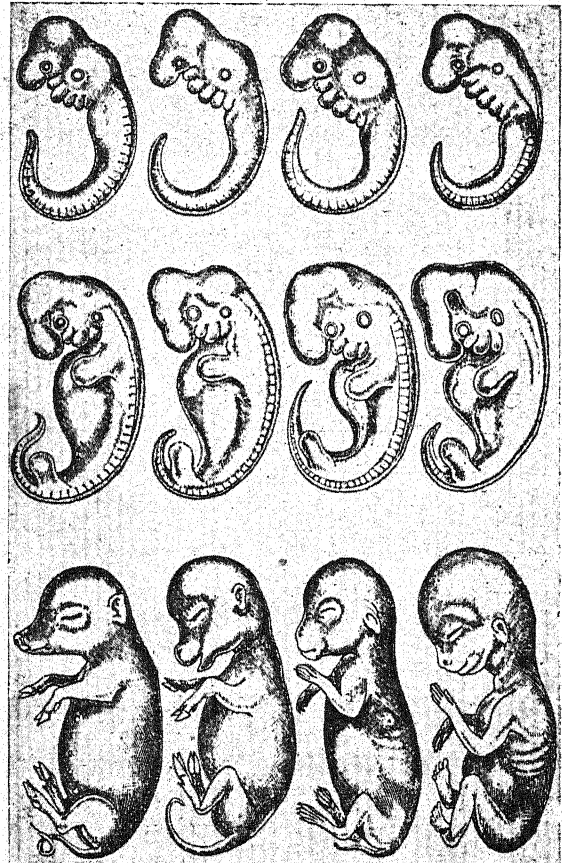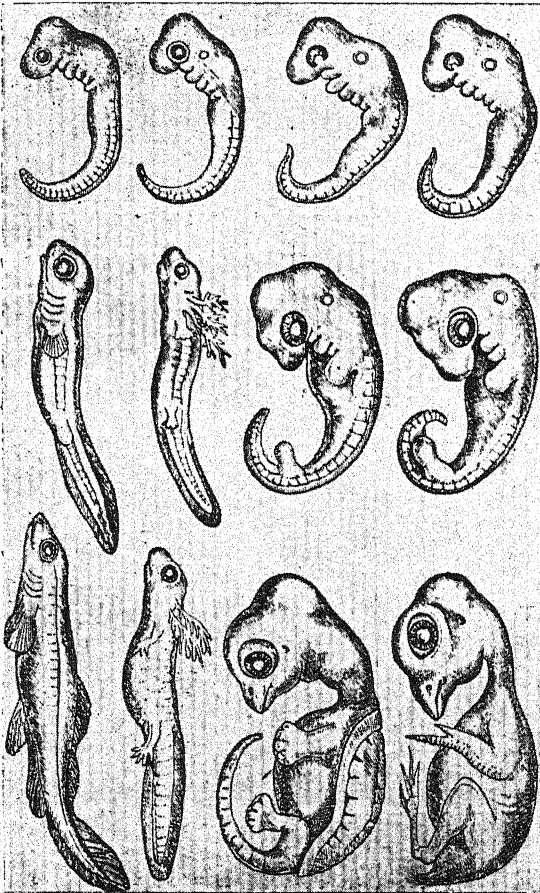
मनुष्य और अन्य जानवरों के भ्रूणों का तुलनात्मक चित्र

देखिए, आरंभिक अवस्था में इन सभी भिन्न-भिन्न जानवरों के भ्रूण एक-दूसरे से कितने मिलते-जुलते हैं!

का भ्रूण बिल्कुल शुरू में अन्य जीवों, और फिर अन्य स्तनधारियों के भ्रूण के समान होता है। उसके बाद वह प्राइमेट का भ्रूण मालूम होने लगता है, और थोड़ा और बढ़ने पर यह मालूम होने लगता है कि वह आदमी ही का भ्रूण है। छः मास की आयु तक मनुष्य के भ्रूण पर बन्दर की तरह घने बाल होते हैं और जैसा ऊपर लिखा है, छोटी-सी दुम भी होती है।

रक्त की बनावट व लक्षण में समता व भिन्नता

इससे भी अधिक मनोरंजक पहचान परमात्मा ने जीवों के रक्त की बनावट और उसके लक्षण या गुणों में रक्खी है। इनका हाल संक्षेप में लिखा जाता है, क्योंकि विषय काफ़ी लम्बा हो चुका है।

रक्त में जो लाल कण हैं, उनका व्यास नापने से पता चला है कि सबसे नीचे श्रेणी के प्रधानभागीय लीमर में रक्तकण सबसे छोटे हैं, बन्दर में उससे बड़े, बन्दर से बड़े बनमानुष में और मनुष्य में क्रमानुसार सबसे बड़े हैं। इससे अमेरिका देश के हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हूटन साहब ने नतीजा निकाला है कि लीमर इस बात का संकेत करता है कि मनुष्य से उसका दूर का सम्बन्ध है। बन्दर हमसे नातेदारी का दावा करता है और बनमानुष पेड़ों की चोटी पर बैठा ढिंढोरा पीटता है कि वह हमारा निकट सम्बन्धी है।

दुमदार बालक

जो भारतवर्ष में उत्पन्न हुआ था।
[फ़ोटो इस लेख के लेखक की कृपा से प्राप्त।]

थोड़े ही वर्ष हुए इन्द्रियों के कार्य-क्रम पर खोज करनेवालों ने पता लगाया कि अगर किसी जन्तु का ख़ून अपने से क़रीब के रिश्तेवाले प्राणी के रक्त में मिलाया जावे तो दोनों का ख़ून मिलकर एक समान हो जाता है। यदि वह ऐसे जीव के रक्त में डाला जाय कि जिससे उसकी घनिष्टता नहीं है तो वह उसके ख़ून से अच्छी तरह न मिलेगा। मनुष्य और चिम्पैंज़ी में अधिक घनिष्टता होने के कारण दोनों का ख़ून आपस में बिल्कुल घुल-मिल जाता है। परन्तु आदमी का रक्त बन्दर या घोड़े के रक्त में भरा जाय तो वह उनके ख़ून से मिलता ही नहीं वरन् उनके लाल रक्तकणों को नष्ट कर देता है।

एक इससे भी अद्भुत् उदाहरण सुनिये। एक जीव का रक्त किसी अन्य समूह के जन्तु के रक्त में सुई द्वारा भरा जाय और जो रक्तरस (सीरम) उसके रक्त से निकले, उसे पहले समूह के और किसी जानवर के ख़ून या ख़ून के घोल में मिलाया जाय तो तुरन्त ही उसमें तलछट बैठ जाता है। अगर वही रक्तरस और दूसरे समूह के प्राणियों के रक्त या रक्त-घोल में मिलाया जाय तो क्रमानुसार जितने ही दूर के समूह के जीव का रक्त होगा, उतना ही कम और देर में तलछट बनेगा। किन्तु अधिक दूर के संबंधी जन्तुओं के ख़ून में डालने से नाम-मात्र या बिल्कुल तलछट न बनेगा। इससे यह स्पष्ट है कि इस तलछट द्वारा जीवों के पारस्परिक संबंध की घनिष्टता और विलगता का ज्ञान हो सकता है। आदमी का रक्त ख़रगोश के रक्त में भरकर जो रक्तरस बने, उसमें से कुछ किसी दूसरे आदमी के ख़ून या ख़ून के हलके घोल में ही मिलाया जाय तो शीघ्र तलछट फेंक देगा। किन्तु वही रक्तरस वनमानुष, बन्दर, लीमर और घोड़े के ख़ून में छोड़ा जाय तो देखा जावेगा कि वनमानुष के ख़ून में तलछट बनेगा। किन्तु आदमी के ख़ून के मुक़ाबिले में कम और देर से। बन्दर के रक्त में नाम-मात्र या अधिक समय रक्खा रहने पर उसमें हलका धुँधलापन आ जायगा, लीमर के में उतना भी नहीं। और घोड़े या अन्य स्तनपोषित जीवों में तो बिल्कुल ही प्रभाव न दीखेगा। हममें और वनमानुषों में घनिष्ट सम्बन्ध होने का तुम्हें इससे भी पक्का प्रमाण और क्या चाहिए—दोनों का रक्त तक एक ही सा है!

ऊपर के दृष्टांतों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि मनुष्य निस्सन्देह अपने शरीर के अंगों में अन्य प्राइमेटों से सम्बन्धी होने के काफ़ी चिह्न अभी तक रखता है। यदि हमें न्याय करना है तो अवश्य मानना पड़ेगा कि मनुष्य भी जानवरों ही में से एक है। यह ज़रूर है कि जानवर होते हुए भी उसमें ऐसी विशेषतायें हैं कि जिनके कारण वह ऊँचे से ऊँचे वनमानुष और अन्य जन्तुओं से भी उच्च और भिन्न है। अंत में यही कहेंगे कि मनुष्य मनुष्य ही है।
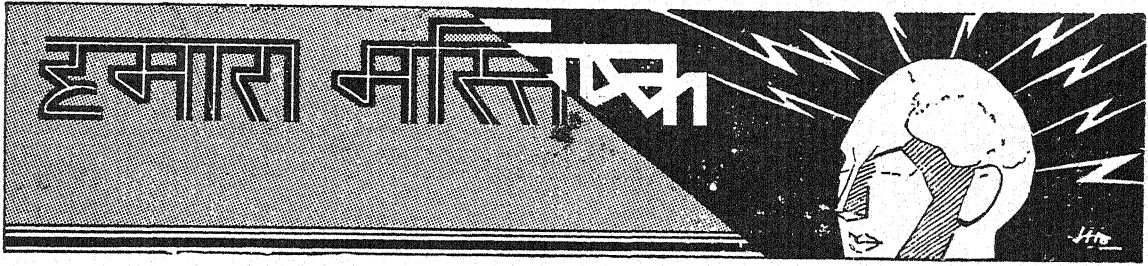
संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य—मानव मस्तिष्क

मनुष्य के शरीर का अध्ययन करने के बाद जिस वस्तु पर हमारी निगाह जाती है, वह है उसका अद्भुत मस्तिष्क, जिसकी बदौलत वह आज दिन अन्य जीवधारियों को पीछे ढकेलकर पृथ्वी का एकमात्र स्वामी बन बैठा है। वास्तव में मस्तिष्क की विशेषता ही के कारण मनुष्य अन्य जानवरों से भिन्न है। रेल, हवाई जहाज़, बिजली, पुलें, इमारतें, नगर, गाँव, खेती, कल-कारख़ाने, व्यापार, उद्योग, साहित्य, कला, सब मनुष्य के मस्तिष्क की उपज हैं, उसी की करामात हैं। सच पूछिए तो मनुष्य के मस्तिष्क से अधिक आश्चर्यजनक वस्तु दुनिया में और कोई नहीं है। यह मस्तिष्क क्या वस्तु है?

हर जीवधारी अपनी परिस्थितियों के अनुसार आचरण करता है, यहाँ तक कि सूक्ष्म कीटाणु भी विपरीत परिस्थितियों से भागते हैं और अनुकूल परिस्थितियों की ओर बढ़ते चलते हैं। जीवन की हर दिशा में हम देखते हैं कि आसपास की इन्हीं स्थितियों के अनुसार आचरण करना जीवन का चिह्न है, जिसकी ही अभिव्यक्ति हमारी अनुभूति, विचारशक्ति और कर्तृत्व-शक्ति के रूप में होती रहती है। किन्तु यह सारी अनुभूति, विचारशक्ति और कर्तृत्व-शक्ति आती कहाँ से है, इनका केन्द्र कहाँ है?

आपने मरे हुए प्राणियों को देखा होगा। उनके हाथ-पैर, अंग-प्रत्यंग सब कुछ जीवित प्राणियों की तरह ही होते हैं। पर उनमें अनुभूति नहीं होती। विचार-शक्ति नहीं होती। गति अथवा कर्तृत्व-शक्ति नहीं होती। जीवित प्राणियों पर यदि कोई सामने से डंडा ताने, तो वे अवश्य उसका प्रतिकार करेंगे। या तो वे भागेंगे या प्रत्याक्रमण करेंगे, पर मृत प्राणी ऐसा नहीं कर सकते। जीवित प्राणी के शरीर में अगर कोई कहीं सुई चुभावे तो या तो वह वहाँ से टल जायगा या प्रतिकार करेगा, पर मृत प्राणी ऐसा नहीं कर पाता, इसलिए कि उसकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, इच्छित और अनिच्छित, दोनों तरह की अनुभूति, विचार-शक्ति और कर्तृत्वशक्ति मर चुकी हुई होती है। इससे आगे बढ़कर यदि आप किसी सोए हुए प्राणी को देखें तो डंडा तानने पर तो वह प्रतिकार नहीं करेगा, पर सुई चुभाने पर अवश्य प्रतिकार करेगा, क्योंकि उसकी प्रत्यक्ष और इच्छित अनुभूति, विचार-शक्ति तथा कर्तृत्व-शक्ति मात्र ही इस समय उसमें मौजूद नहीं है। इसके विपरीत एक चलते-फिरते और जागते प्राणी पर यदि डंडा ताना जाय तब भी वह प्रतिवाद और प्रतिकार करेगा और चुपके से सुई चुभाई जाय तब भी प्रतिकार करेगा, क्योंकि उसकी इच्छित-अनिच्छित, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हर तरह की अनुभूति, विचार-शक्ति और कर्तृत्वशक्ति जागरूक रहती है, जीवित रहती है। पर ऐसा क्यों? इस अनुभूति, विचारशक्ति तथा कर्तृत्वशक्ति का केन्द्र कहाँ है, उसका स्रोत कहाँ है?

हम आँख से देखते हैं कि कोई हमारे ऊपर डंडा तान रहा है, और आँखें इस ज्ञान की अनुभूति एक ऐसी इन्द्रिय को कराती हैं, जो स्थिति को सोचती है और तत्काल ही गतिशील होने या कार्य करने (Action) के लिये प्रेरणा या आज्ञा देती है, जिसके फल-स्वरूप या तो हम भागते हैं या हम भी प्रतिकार के लिए डंडा-पत्थर या अन्य कोई चीज़ उठा लेते हैं। इसी तरह अगर कोई हमारे शरीर में सुई चुभावे तो हमारी त्वचा को एक तरह की अनुभूति होगी और वह उस अनुभूति को उस इन्द्रिय तक पहुँचा-वेगी, जो उस पर अविलम्ब सोचेगी और हमें या तो वहाँ से टल जाने की या बदले में सुई चुभानेवाले को तमाचा जमा देने अथवा काट खाने को प्रेरित करेगी। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी हर अनुभूति, हर चिन्तन तथा हर

क्रियाशीलता अथवा गतिशीलता का केन्द्र कोई ऐसी वस्तु है, जिससे हम अनुभव करते हैं, सोचते हैं। जो हमारी सारी क्रियाओं की प्रेरक है, और हमसे सारे कार्य कराती है। पर आख़िर वह क्या वस्तु है? साफ़ ही है कि वह वस्तु प्राणी के मन या मस्तिष्क के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

कहा जा सकता है कि अनुभव कर सकने, या गतिशील अथवा क्रियाशील हो सकने की इतनी शक्ति तो जानवरों में भी होती है। गदहे पर भी डंडा ताना जाय तो वह भागेगा, दुलत्तियाँ झाड़ेगा और कुत्ते के शरीर में भी यदि सुई चुभा दी जाय तो वह भागेगा या काटने दौड़ेगा; फिर जानवर के मस्तिष्क और आदमी के मस्तिष्क में अंतर ही क्या है? आदमी और जानवर के मस्तिष्क में अन्तर यह है कि आदमी का मस्तिष्क प्रगतिशील है और जानवरों का अगतिशील। इसका प्रमाण यह है कि आदमी अपनी प्रारम्भिक अवस्था से उठते-उठते आज सभ्यता का शिखर लाँघने जा रहा है। वृक्षों में घोंसले बनाकर रहनेवाला यह वनचारी आज महलों और बड़े-बड़े नगरों का अधिवासी तथा स्वामी बन गया है, पर जानवर जिस अवस्था में आदिम युग में थे उसी अवस्था में सदियों और लाखों वर्षों से रहते आते हैं, और आज भी रह रहे हैं। मानव-मस्तिष्क की प्रगतिशीलता का एक यह भी प्रमाण है कि वह शारीरिक दृष्टि से अन्य अनेकों जीवधारियों से दुर्बल और निकृष्ट होते हुए भी आज सृष्टि के सभी प्राणियों में अधिक शक्तिशाली बना हुआ है। यदि ऐसा न होता तो आदमी जाने कब ख़त्म हो चुका होता, और एक-एक को चुनकर शेर, भेड़िये आदि हिंस्र पशु खा गये होते। पर इसके विपरीत आदमी पेड़ों से कन्दराओं और कन्दराओं से मैदानों तथा मैदानों से विशाल वैभवशाली नगरों का निवासी और अध्यक्ष बना, उसने सभ्यतायें रचीं, और वह एक नई सृष्टि का नियन्ता बन गया।

आदमी और जानवर के मस्तिष्क में यह अंतर होता है कि आदमी के मस्तिष्क में प्रत्यक्ष और परोक्ष हर तरह की अनुभूतियाँ हो सकती हैं, हर तरह का चिन्तन वह कर सकता है, पर जानवरों को केवल प्रत्यक्ष अनुभूति ही हो सकती है, प्रत्यक्ष ज्ञान ही हो सकता है। उदाहरण के लिए अगर कोई आँख के सामने ही डंडा ताने तो उसका ज्ञान या उसकी अनुभूति आदमी को भी हो सकती है और जानवर को भी, पर आदमी का मस्तिष्क इसके अतिरिक्त भी इतना सोच या अनुभव कर सकता है कि अमुक व्यक्ति से उसके पिता की लड़ाई थी और वह बैर उसके दिल में इतना गहरा होकर बैठा है कि वह उसे किसी समय भी मार सकता है या उसका अहित कर सकता है। आदमी यह भी बैठे-बैठे ही सोच ले सकता है कि आज चीन के नगरों पर जिस तरह जापान द्वारा बम बरसाये जा रहे हैं उसी तरह अगर हमारे नगरों पर भी कोई करे तो जीवन कितना अरक्षित हो जायगा, अथवा जब नादिरशाह ने दिल्ली में क़त्लेआम कराया था, तो आदमी किस तरह असहाय होकर मरे-कटे होंगे, आदि।

इस तरह हम देखते हैं कि आदमी का मन या मस्तिष्क वह चीज़ है, जिसने उसे अन्य जीवधारियों से ऊँचा उठा रक्खा है। मस्तिष्क ही की बदौलत आदमी अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ऊँचे उठकर आज सभ्य बन पाया है। वह हवा में उड़ता है, समुद्र की छाती पर रौंदता हुआ चलता है, सात समुद्र पार बैठे हुए अपने मित्रों से बातचीत करता है, यहाँ तक कि उन्हें उतनी ही दूरी पर बैठे-बैठे देखने भी लगा है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, वह बीमारी और मृत्यु तक पर विजय पाने को तुला बैठा है। और यह सब कुछ मस्तिष्क ही के द्वारा है। संक्षेप में मस्तिष्क वह मशीन है जिसके द्वारा आदमी सोचता है, अनुभव करता है, नतीजा निकालता है, तौलता है, आदि।

यों तो यह आश्चर्यजनक मन या मस्तिष्क हमेशा से आदमी के पास रहा है, पर उसके अध्ययन की ज़रूरत हो सकती है, या उसके अध्ययन का कोई महत्त्व भी है, यह हम विज्ञान-युग के उदय के पहले नहीं जानते थे, यद्यपि दर्शन-शास्त्र के अध्ययन के सिलसिले में भारतीय ऋषियों ने मन का भी अध्ययन एक विशेष रूप और एक ख़ास हद तक किया है। पर मस्तिष्क या मन के अध्ययन को एक अलग विज्ञान के रूप में खड़ा करने का श्रेय विज्ञान-युग और आज के सामाजिक विकास को ही है। आधुनिक सामाजिक विकास ने हमें इसके प्रति विश्वस्त कर दिया है कि इस विज्ञान के—मन या मस्तिष्क के—वैज्ञानिक अध्ययन से मानव-सभ्यता में क्रान्तिकारी और हितकारी परिवर्त्तन किये जा सकते हैं। असल में इस विज्ञान के समुचित अध्ययन के बाद ही शिक्षण का कोई कार्य ठीक दिशा में चल सकता है; क्योंकि शिक्षण का अर्थ है मस्तिष्क बनाना और गढ़ना, जो सभ्यता अथवा संस्कृति का मूल है।

अब देखना है कि मनुष्य के मन या मस्तिष्क का अध्ययन किस तरह किया जा सकता है? यद्यपि मस्तिष्क में स्थित ज्ञान-तंतुओं तथा उन्हें चेतना प्रदान करनेवाली नसों की विद्युत्-शक्ति का अध्ययन शरीर-शास्त्र का विषय है तथापि कोई भी मनोविज्ञान-शास्त्री उस विशेष अध्ययन को मनोविज्ञान के अध्ययन के दायरे से बाहर करने का साहस नहीं कर सकता। लेकिन इसके बावजूद भी मस्तिष्क कोई इस तरह की ठोस चीज़ नहीं है जिसे शरीर-शास्त्री की तरह हम चीर-फाड़कर अध्ययन करें। दिमाग़ कहीं सिर में एक जगह बन्द है, ऐसा समझने की भूल भी साधारणतया लोग करते हैं, पर सिर को चीर-फाड़ कर देखने पर भी वह कहीं ठोस पदार्थ की तरह नहीं मिलेगा। मस्तिष्क-विज्ञान का विद्वानों (जिनमें भारतीय पंडित भी शामिल हैं) का मत है कि प्राणीमात्र में जीव होता है, जिसे आत्मा कहकर पुकारा जाता है। प्राणी में जो एक चेतना (consciousness) है, वह मात्र इस आत्मा के कारण ही है और इसी के कारण प्राणी में क्रोध, क्षोभ आदि भाव पैदा होते रहते हैं। इसके विपरीत नवीन शास्त्रकारों का मत है कि इस विज्ञान के अध्ययन में आत्मा और जीव के झमेले को खड़ा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। आत्मवाद और अनात्मवाद मनोविज्ञान शास्त्र के नहीं, बल्कि दर्शनशास्त्र के विषय हैं। मनोविज्ञान शास्त्र का अध्ययन इन झगड़ों में पड़े बिना भी हो सकता है। कदाचित् यही कारण है कि हमारे यहाँ मनोविज्ञान का दर्शनशास्त्र में ही समा-

तब और अब
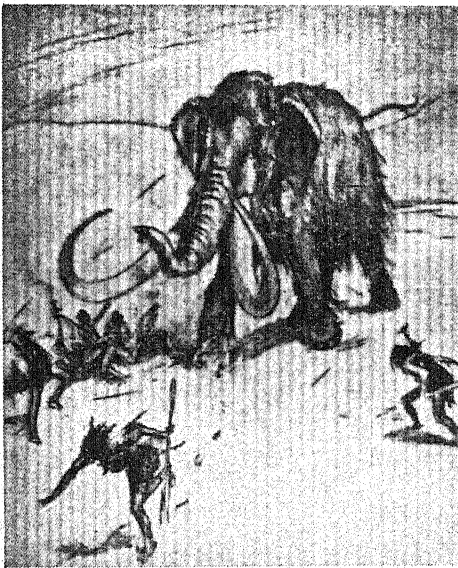
इतिहास के आरंभ-काल में चारों ओर से जंगली हाथियों और ख़ूँख़्वार जानवरों द्वारा त्रस्त मानव आज उन्हीं हाथियों से अपनी बेगार कराता है। किसके बल पर? केवल अपने मस्तिष्क की देन की बदौलत।

अध्ययन करने के लिए उसकी गतियों तथा उसकी क्रियाओं का अध्ययन करना होता है। मनुष्य किन परिस्थितियों में क्या और कैसे सोचता है, समझता है, किस तरह तर्क करता है, कब उसे क्रोध आता है, कब उसे क्षोभ उत्पन्न होता है, किन उपादानों के उपस्थित होने पर उसके मन में स्मृति जागती है, कल्पनाएँ उठती हैं, पुलक होता है, यही बातें और यही मानसिक क्रियाएँ मनोविज्ञान अथवा मन या मस्तिष्क के विज्ञान के अध्ययन का आधार और विषय हैं।

इस विषय का अध्ययन शुरू करने के पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि इस विज्ञान के पुराने और नवीन आचार्यों के विचारों में कितना मौलिक भेद है। प्राचीन वेश करते हैं, उसे अलग विज्ञान करके यहाँ नहीं माना गया है। आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्रियों का मत है कि प्राणियों के शरीर में स्नायु-तंतुओं का एक जाल है, जिसके सहारे और जिसकी गतिशीलता के कारण चेतना उत्पन्न होती है। आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि के द्वारा जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है, वह इन्हीं स्नायु-तंतुओं के सहारे ही होता है। इसके अतिरिक्त भय, साहस, तर्क, क्रोध, क्षोभ आदि आंतरिक भावों का उदय भी इन्हीं स्नायु-तंतुओं और मस्तिष्क की सम्मिलित क्रियाओं और प्रवृत्तियों के द्वारा होता है। यह विचार अधिक वैज्ञानिक और अधिक व्यावहारिक जँचता है, अतएव हम इसी विचार के अनुसार इस शास्त्र का अध्ययन करेंगे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस विज्ञान के अध्ययन का आधार है मन की विभिन्न क्रियाएँ। परन्तु प्रश्न यह है कि हमें उन क्रियाओं का बोध किस तरह होता है?

उनका बोध हमें दो प्रकार से होता है। एक तो इस तरह कि हम स्वयं अनुभव करते हैं और सोचते हैं, दूसरे इस तरह कि हम दूसरों की कई प्रकार की क्रियाओं से यह परिणाम निकालते हैं कि वह अमुक प्रकार की बात अनुभव कर रहा है, अमुक प्रकार की मनोवृत्ति में है। किसी व्यक्ति के मस्तिष्क का सीधा ज्ञान हमें नहीं होता, पर हम उस व्यक्ति के रहन-सहन से, उसकी मुख-मुद्रा से, उसकी मुसकुराहट से, उसकी त्योरियों पर बल आने से, यह परिणाम निकालते हैं कि वह क्या अनुभव कर रहा है अथवा सोच रहा है।

मान लीजिये कि आप जाड़ों की रात में कम्बल से मुँह ढके अँधेरे कमरे में सोये हुए हैं और तभी कमरे में कुछ आहट-सी मालूम होती है, और उसके द्वारा आपके कानों में एक प्रकार की अनुभूति होती है। आपको एक ऐसा ज्ञान होता है जो अनिच्छित होते हुए भी प्रत्यक्ष है, वास्तविक है। फिर आपके मन में एक जिज्ञासा पैदा होती है कि आख़िर यह किस चीज़ की आहट है? फिर आप सोचते हैं कि शायद घर का पालतू कुत्ता आ रहा है। तभी आपके मन में प्रतिवाद उठता है कि कुत्ते के पैर की आहट इतनी भारी नहीं हो सकती है और आप तर्क करने लगते हैं।

फिर सोचते हैं, शायद नौकर किसी काम से आया हो अथवा चोर तो नहीं है? चोर का ख़याल आते ही आपके मन में एक भय का संचार होता है, और साथ ही ख़याल दौड़ जाता है उस घटना की ओर कि जब गत मास आपके अमुक पड़ोसी चोरों ने इसी तरह सोये में मारा था। फिर आपके मन में एक भाव उठता है कि उठकर देखा जाय कि क्या बात है, किस चीज़ की आहट है? इस तरह आपके शरीर के समूचे स्नायु-जाल और स्नायु-तंतुओं में एक चेतना-प्रवाह, एक जागरूकता की लहर-सी फैल जाती है और आप उस आहट के संभव कारण का निश्चय करने के विचार से अपनी चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, पर आपकी कल्पना इधर से उधर फिरती रह जाती है और आप किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं। तब आपकी इच्छा-शक्ति आपको प्रेरणा देती है कि उठकर देखा ही जाय। अंत में आप साहस के साथ झट से उठते हैं और आपके ज्ञान-तंतु आपसे बिना किसी पूर्व-निश्चय के ही एक स्वाभाविक निर्णय कराते हैं और आपका हाथ फ़ौरन् ही स्विच की तरफ़ बढ़ जाता है। आप स्विच दबा देते हैं, जिससे तत्काल ही कमरे में प्रकाश फैल जाता है।

रोशनी होने पर आप पाते हैं कि यह तो वही बुड्ढा है, जिसके लड़के को आपने गत वर्ष जज की हैसियत से फाँसी की सज़ा दी थी! इस तरह आपको एक ऐसा ज्ञान आँखों के द्वारा होता है, जो प्रत्यक्ष होने के साथ-ही-साथ इच्छित भी है। तब आपकी स्मृति में उस मुक़दमे की दौरान की बहुतेरी बातें आने लगती हैं। इतने में आप उसके हाथ में चमकता हुआ छुरा भी देखते है, देखते ही आप में एक भयाकुल वृत्ति पैदा होती है और आप काँप उठते हैं। पर तत्काल ही आप एक साहसिक निर्णय करके उस पर टूट पड़ते हैं, और वह वार करे-न-करे कि आप छुरा उसके हाथ से छीन लेते हैं।

इसके बाद उस विफल-मनोरथ बूढ़े आदमी में एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया पैदा होती है और उसके मन की बदले की भावना पराजय और निराशा की भावना में बदल जाती है। वह अपने फाँसी पाये हुए पुत्र से सम्बन्ध रखनेवाले स्मृति-प्रेरक शब्द चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगता है। आपके मन में भी प्रतिक्रिया होती है और एक-एक बात को याद करके आप अपने फाँसी की सज़ा देनेवाले काम पर मन ही मन पश्चात्ताप करने लगते हैं।

अब इन सारी बातों पर ग़ौर कीजिए कि ये सब क्या हैं? इन सारी बातों से हमें मन की विभिन्न दशाओं और विभिन्न क्रियाओं का बोध होता है। यही क्रियाएँ हमारे अध्ययन की भूमि हैं, विषय हैं और उपकरण हैं। इन्हीं को हम आगे चलकर लम्बे-लम्बे पारिभाषिक शब्दों की सीमा में बाँधकर देखेंगे। जिस तरह व्याकरण-शास्त्र का विषय है शब्द, अंक-शास्त्र का अंक, तर्क-शास्त्र का वाक्य, उसी तरह हमारे इस विज्ञान का विषय है मन। इस विज्ञान के अध्ययन से हम जान पाते हैं कि अमुक विचार, अमुक भावना हमारे मन में क्यों पैदा हुई, उसके पहले कौन विचार या कौन भावनायें हमारे मन में चक्कर काट रही थीं, फिर किस क्रम से अन्य विचार और भावनायें आयीं। उन सबमें क्या सम्बन्ध है? अथवा कोई सम्बन्ध है ही नहीं? इत्यादि-इत्यादि।

इन्हीं बातों का वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञान कहलाता है। अगले प्रकरणों में इसी स्तंभ में हम क्रमशः विस्तार-पूर्वक इस विषय की आरंभिक बातों को लेकर इसका अध्ययन आरंभ करेंगे।

सामाजिक या आर्थिक जीवन का श्रीगणेश

मनुष्य को प्रकृति ने एकाकी नहीं बनाया—वह स्वभाव ही से एक सामाजिक जीव है। इस स्तंभ में उसके जीवन के इसी पहलू—उसके सामाजिक रूप—की विवेचना क्रमशः की जायगी।

व्यक्ति के रूप में मनुष्य के दो पहलू—शरीर और मस्तिष्क—का अध्ययन हम पिछले दो स्तंभों में कर चुके। अब इस विभाग में हमें उसके सामुहिक स्वरूप का दिग्दर्शन करना है, क्योंकि मूल रूप में मनुष्य एक सामाजिक जीव है। आज दिन हमारी जो सभ्यता है, वह किसी एक व्यक्ति के परिश्रम का फल नहीं है, वरन् सारी मानव जाति के सामुहिक प्रयत्न का परिणाम है। हमारा आज का जीवन हमारी इस सामुहिक एकता का सबसे बढ़िया उदाहरण है। यदि मनुष्य का सामाजिक रूप बिल्कुल मिट जाय तो हमारी यह सभ्यता की इमारत एकबारगी ही ताश के महल की तरह ढह पड़ेगी। आज दिन हम सब सामुहिक रूप से एक दूसरे की आवश्यकता-पूर्त्ति में लगे हैं—हमारे कल-कारख़ाने, बाज़ार, रेल और जहाज़, सड़कें, नगर, म्युनिसिपैलिटियाँ, शासन-सत्ताएँ आदि हमारे इस जटिल आर्थिक जीवन के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। वह कौन-सी अद्‌भुत व्यवस्था है जिसके अधीन रोज़ सुबह दूधवाला हमारे यहाँ दूध, अख़बारवाला अख़बार, डाकिया चिट्ठी-पत्री, और फेरीवाला खाने-पीने का सामान दे जाता है? किस व्यवस्था के अनुसार माता-पिता अपने बालकों को पालते-पोसते, परिवार का स्वामी अपने परिवार के व्यक्तियों के लिए कमाकर लाता, मज़दूर हज़ारों की संख्या में जुटकर तरह-तरह की चीज़ें कल-कारख़ानों और खेतों में उत्पादन करते, और वे चीज़ें संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक मानों जादू की लकड़ी घुमाते ही पहुँच जाती हैं? समाज क्या है, किस तरह मनुष्य के सामाजिक जीवन का विकास हुआ? परिवार क्या वस्तु है? स्त्री और पुरुष का क्या संबंध है? रीति-रिवाज और सामाजिक रूढ़ियों का कैसे जन्म हुआ? किस प्रकार राज्यों और शासन-तंत्रों का विकास हुआ? आज दिन जिनकी चर्चा हमारे दैनिक जीवन का एक अंग-सी बन गई है, वे साम्राज्यवाद और पूँजीवाद क्या हैं? मनुष्य-जाति सामुहिक रूप से किस लक्ष्य की ओर बढ़ रही है, आदि, आदि, महत्त्वपूर्ण बातों की जिज्ञासा होना हमारे लिए स्वाभाविक है। इस स्तंभ में हम इन्हीं बातों पर विचार करेंगे।

मनुष्य ने सामुहिक रूप में शिकार खेलना या पशु पालना आरंभ करके अपनी भावी सामाजिक या आर्थिक जीवन की नींव डाली, इसके बहुत पहले ही से उसके आर्थिक विकास की प्रारंभिक दशा से मिलती-जुलती अवस्थाएँ कई छोटे-छोटे अन्य जीवधारियों के जीवन में मौजूद थीं। चींटी उनमें से एक है। यह पाया गया है कि चींटियों में बहुत पहले से मिलकर आखेट करने तथा सामाजिक व्यवस्था बाँधकर रहने की दशा का विकास हो गया था। चींटियों की जातियाँ अपने पूर्वजों के बनाये हुए निवासस्थान को पैतृक सम्पत्ति की तरह ग्रहण करती थीं और निर्माण किये हुए निवासस्थान, चरागाह तथा आखेट-स्थान के लिए परस्पर युद्ध भी करती थीं। बहुधा यह भी देखा गया है कि चींटियों के समूह युद्ध की आकांक्षा करनेवाली सेना लेकर बन्दियों को पकड़ने के लिए भी जाते थे! इसी प्रकार भेड़ियों के झुण्ड भी आपस में मिलकर अच्छा शिकार कर लेते थे और अपने से अधिक बली तथा बड़े जानवरों को भी परास्त कर देते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करनेवाले पक्षियों के जीवन

में भी उनकी नियमित ऋतु-सम्बन्धी सुदूर यात्राओं में पारस्परिक सहयोग, नेतृत्व तथा संगठन का अच्छा परिचय मिलता है। इसी प्रकार मकड़ियों की कुछ जातियाँ मिलकर कताई व बुनाई का कार्य अच्छा करती हैं। इन जन्तुओं की प्राचीन काल से विकसित कलाएँ अब भी कभी-कभी किसी-किसी बात में मनुष्यों के नियमित आर्थिक प्रयत्नों से उच्च तथा श्रेष्ठ सिद्ध होती हैं। चींटियों और अन्य छोटे जन्तुओं के आर्थिक जीवन में सामुहिक प्रकार से कार्य करने की सुन्दर प्रणाली, तथा समाज-संगठन इतने उच्च श्रेणी के हैं कि उन्हें मनुष्य-समाज में प्रचलित करने के लिए बहुत-से समाज-सुधारकों को हताश होना पड़ा है।

यह बताना कठिन है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्रारंभ आज से कितने वर्ष पूर्व हुआ होगा। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि चूँकि मनुष्य स्वभाव ही से एक सामाजिक जीव है, अतएव उसके भावी आर्थिक विकास के सूक्ष्म बीज उसके प्रत्येक कार्य और प्रवृत्ति में आरंभ ही से रहे होंगे। मनुष्य को केवल चीज़ों का बनाना और उनका उपयोग करना ही नहीं, वरन् उनको बचाकर भविष्य के लिए जमा करना भी आता था। उसके खेती करने, कपड़ा बुनने और छोटे-छोटे उद्योगों के सादे औज़ार, उसके पालतू पशु और जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक अन्य पदार्थ अब परिवार के अन्य सामान के साथ इकट्ठा किये जाने लगे।

मनुष्य के आर्थिक जीवन का आरंभ

नुकीले दाँतोंवाले मैमथ हाथी, गैंड़े, सिंह आदि से रक्षा तथा जीवन-निर्वाह के लिए मृग, सूअर आदि जंतुओं के शिकार की आवश्यकता ने इतिहास के आरंभकाल ही में मनुष्य को पारस्परिक सहयोग का पाठ पढ़ाकर एक समूह बाँधकर रहने को विवश कर दिया। इस प्रकार आज की हमारी जटिल सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की नींव पड़ी।

क्रमशः यही मनुष्य की स्थायी सामाजिक सम्पत्ति हो गई, जिसने भोजन प्राप्त करने और इसे बचाकर रखने में उसे सुगमता प्रदान की और जिसके कारण अपने निवासस्थान की रक्षा करना उसके लिए अनिवार्य हो गया। मनुष्य के परिवार की संख्या अब बढ़ सकती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे परिवार सम्बन्धी जनसमूह अथवा जाति में परिवर्त्तित हो गया।

गृहस्थी के सामान की ओर जाति और सम्बन्धी जनों की सामूहिक अथवा व्यक्तिगत सम्पत्ति का भाव उत्पन्न हुआ और यह भाव यहाँ तक ही सीमित न रहा। पृथ्वी के भागों पर भी अधिकार समझा जाने लगा और इस अधिकार को सुरक्षित रखने की चेष्टा भी होने लगी। समाज के भाव से प्रेरित जन्तुओं और झुण्ड में रहनेवाले पशुओं की अनेक जातियों, जैसे चरागाह के मैदानों में रहनेवाले कुत्तों और ऊदबिलाव इत्यादि, की स्थायी सामाजिक वस्तुओं और उनकी जुटाई हुई पैतृक सम्पत्ति ने उन्हें सांसारिक संघर्ष में सफल होने में बहुत सहायता दी है। किन्तु ऐसे पशुओं की उक्त प्रकार की संपत्ति एक ही विशेष प्रकार की और अस्थायी होती थी; परन्तु मनुष्य की सामाजिक सम्पत्ति बहुत प्रकार की और अधिक स्थायी है और इस सम्पत्ति को घोर संघर्ष होते हुए भी स्थायी बनाये रक्खा गया है।

मनुष्य केवल औज़ार बनानेवाला ही नहीं वरन् परिस्थितियों के अनुसार औज़ार बदलनेवाला पशु भी है। उसके औज़ारों का भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। हिरन के टूटे हुए सींग, हल, ट्रैक्टर, एक पहिये की गाड़ी, बैलगाड़ी, मोटर, और हवाई जहाज़—सबका ही मनुष्य ने युग-युग में विविध परिस्थितियों में प्रयोग किया है। पृथ्वी के अनेक भागों की विभिन्नता और उनकी विशेषताओं के अनुरूप मनुष्य के आर्थिक जीवन के परिवर्त्तन के साथ-साथ इन नाना प्रकार के औज़ारों का रूप और कार्य भी आवश्यकतानुसार बदला है। क्रमशः वनों से चरागाहों, चरागाहों से उपजाऊ मैदानों और नदियों के मुहानों के आसपास की भूमि तक के कष्टप्रद भ्रमण ने मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न आर्थिक परिस्थितियाँ उपस्थित कीं, जिनके अनुसार उसे अपना आर्थिक कार्यक्रम समय-समय पर बदलना पड़ा और उसको पूरा करने के लिए नवीन तथा उपयोगी औज़ार बनाने पड़े।

इन प्रयोगों से मनुष्य को अनेक लाभदायक अनुभव प्राप्त हुए और उनके फलस्वरूप अनेक प्रथाएँ, विश्वास और संस्थाएँ पैदा हो गईं। मनुष्य की चेष्टाओं
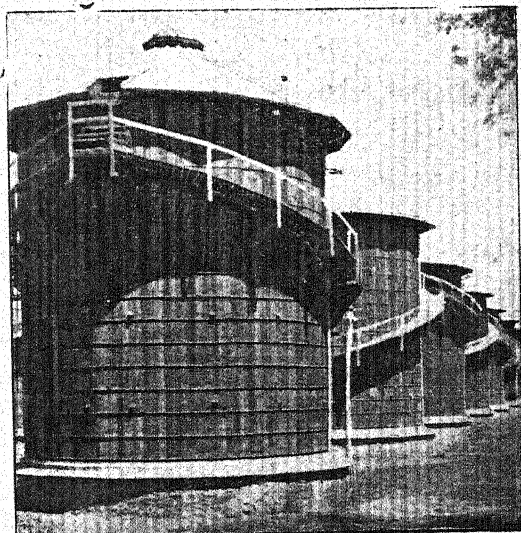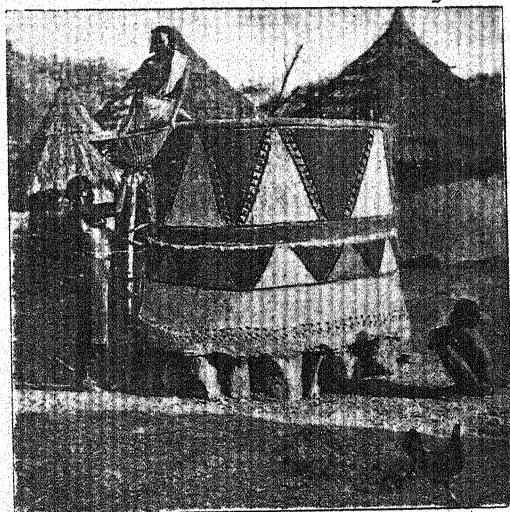
संपत्ति को बचाकर जमा करने की मनुष्य की आदिम और वर्त्तमान प्रवृत्ति

जिसके फलस्वरूप उसके सामाजिक जीवन में आर्थिक असमानता ने दृढ़ नींव जमा ली है। ऊपर के चित्र में एक ओर आदिम अवस्था में रहनेवाली जंगली जातियों की और दूसरी ओर सभ्य संसार की अनाज की बड़ी-बड़ी बखारें हैं, जो मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था की तह में जड़ जमाये हुए उपरोक्त मनोवृत्ति के मूर्त्तिमान प्रतीक के समान हैं।

को इन अनुभवों से बहुत लाभ और सहायता मिली। पशुदेव का पूजन, पवित्र अग्नि का उपयोग, सूर्य-चन्द्रमा की आराधना आदि कार्य अधिकांश सभ्यताओं के अंग बन गए।

इसी प्रकार घोड़े, बैल और पृथ्वी की आराधना का भी सभ्यताओं में समावेश हो गया। मनुष्य के बनाये हुए औज़ार और मकान आदि अब इतने अधिक शक्तिशाली और सुखप्रद हो गये कि वह धीरे-धीरे भूभाग के प्राकृतिक प्रतिबन्धनों से मुक्त हो गया। अब उसकी सभ्यता अधिकाधिक मिश्रित हो चली। जलवायु और भोजन, स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से, मनुष्य के मस्तिष्क के आकार-प्रकार, देह के रंग और जाति की विशेषताओं पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जातियों के परस्पर मिश्रण से मनुष्य की जातीय विशेषताएँ इतनी घट-बढ़ जाती हैं कि उसके आदिम स्वरूप को निश्चित रूप में पहचानना भी कठिन हो जाता है। दूसरी ओर, जातियों में पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध कभी-कभी शारीरिक तथा मानसिक विकास में भी सहायक हो जाते हैं। और यही विकास साहसपूर्ण चेष्टा, आविष्कार और अन्वेषण की जड़ है। इन्हीं से उत्तेजना और बल पाकर मनुष्य पृथ्वी के ऊपर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अग्रसर होता है। मनुष्य के दो विशेष आविष्कार जिनका कि परिणाम उसके जीवन पर बहुत प्रभावशाली हुआ है केवल उदाहरण के लिए यहाँ लिखे जा सकते हैं। पहला दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के रहनेवाले चरवाहों द्वारा ईसा से पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के मध्यकाल में घोड़े पर विजय पाना और दूसरा ईसा के बाद उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी-पश्चिमी योरप के निवासियों द्वारा उन्हें युद्ध में विजय देनेवाले भाप से चलने के जहाज़ों का आविष्कार। संसार में मनुष्य-जाति के बड़े-बड़े समूहों का भ्रमण, आर्थिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल, और अन्य अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन इनके ही द्वारा हुए हैं।

मनुष्य की आधुनिक सभ्यता में शिकारी का बल और पराक्रम, चरवाहों की संगठित कार्य-शैली और वाटिका के माली का परिश्रम और दूरदर्शिता मिश्रित है। आज के व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में पुराने समय जैसा विशेष वर्ग के व्यक्तियों का भिन्न-भिन्न नौकरियों और व्यवसायों पर आधिपत्य है।

मनुष्य का आर्थिक जीवन अन्य पशुओं के जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक पेचीदा और सुसंगठित है। इस पेचीदी सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति और समाज-संगठन, दोनों ही, एक साथ संभव है।

परंतु भारतवर्ष की तरह जहाँ जाति और वर्ग की भिन्नता के कारण परस्पर विवाह-सम्बन्ध वर्जित है और जहाँ बहुत बड़ी जनसंख्या आर्थिक और सामाजिक उन्नति के सुअवसरों से वञ्चित है, वहाँ सम्पूर्ण समाज की आर्थिक सम्पत्ति प्रत्येक मनुष्य को लभ्य नहीं है और न वहाँ मनुष्य अन्य जन्तुओं की तरह सबके सम्मिलित परिश्रम से उपार्जित धन-राशि अथवा कमाई का लाभ समाज के प्रत्येक व्यक्ति में वितरण करने ही को राज़ी होता है। भारतवर्ष का परम्परागत जातिभेद आज मनुष्य की सामाजिक एकता को निर्बल कर रहा है। इसी प्रकार आजकल की दूषित आर्थिक व्यवस्था में अविवाहित बालिकाएँ और विधवा स्त्रियाँ एक बड़ी संख्या में औद्योगिक कारख़ानों और अन्य व्यवसायों में काम करती हैं, जहाँ प्रति दिन का कठोर परिश्रम और कार्य-विशेषज्ञता उन्हें अपने मातृत्व या पत्नित्व को समाज की वेदी पर बलिदान करने के लिये बाध्य कर देती है। यह इस बात का उदाहरण है कि किस तरह कार्यनिपुणता और विशेषज्ञता शारीरिक और सामाजिक उन्नति की हानि पर होती है।

आज इस नवीन आर्थिक समाज में महाजन और पूँजीपति पुरातन काल के शिकारी मनुष्यों की मनोवृत्ति से अपने को वंचित नहीं कर सके हैं। वास्तव में वे इन्हीं लोगों का प्रतिनिधित्व आज के समाज में कर रहे हैं। पुराने समय के शिकारी मनुष्य का संपत्ति बचाकर रखने का भाव, उसकी चतुरता और अधिकार जताने अथवा अनुचित लाभ उठाने की मनोवृत्ति ने आज सामाजिक विरोध उत्पन्न कर दिया है और यह भाव आज मनुष्य की नई आर्थिक उन्नति में बाधक हो रहा है। मनुष्य अब एक समान असंख्य पदार्थों को पैदा करनेवाले बड़े और बहुमूल्य यंत्रों पर प्रभुत्व कर रहा है और उन्हें अपने वर्ग-लाभ के लिए कार्य में लाता है, जिससे वर्ग-विशेष और समस्त समाज के हित में घोर असमानता पैदा हो गई है।

यदि मनुष्य को आर्थिक उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो उसे अपना समाज-संगठन सामुहिक हित और न्याय की नींव पर करना चाहिए, जिसमें व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण का अंत हो जाय और प्रत्येक व्यक्ति सब के हित ही में अपना कल्याण समझे।
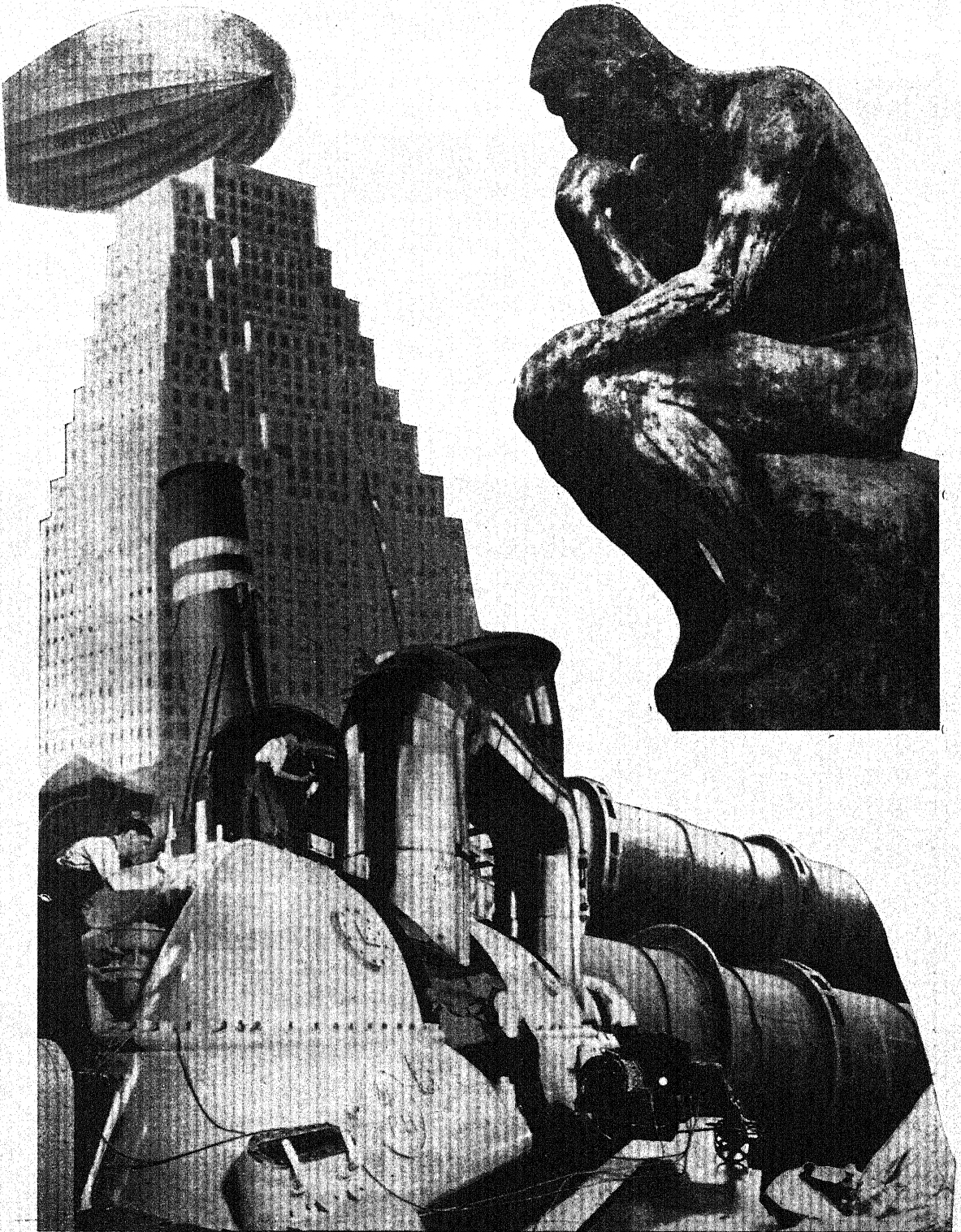
मनुष्य और उसकी विज्ञानमय यंत्र-सृष्टि

जो क्रमशः आर्थिक असाम्य और वर्ग-शोषण के शस्त्र का रूप ग्रहण करती हुई मानव के लिए वरदान के बदले क्रूर अभिशाप-स्वरूप होती जा रही है।
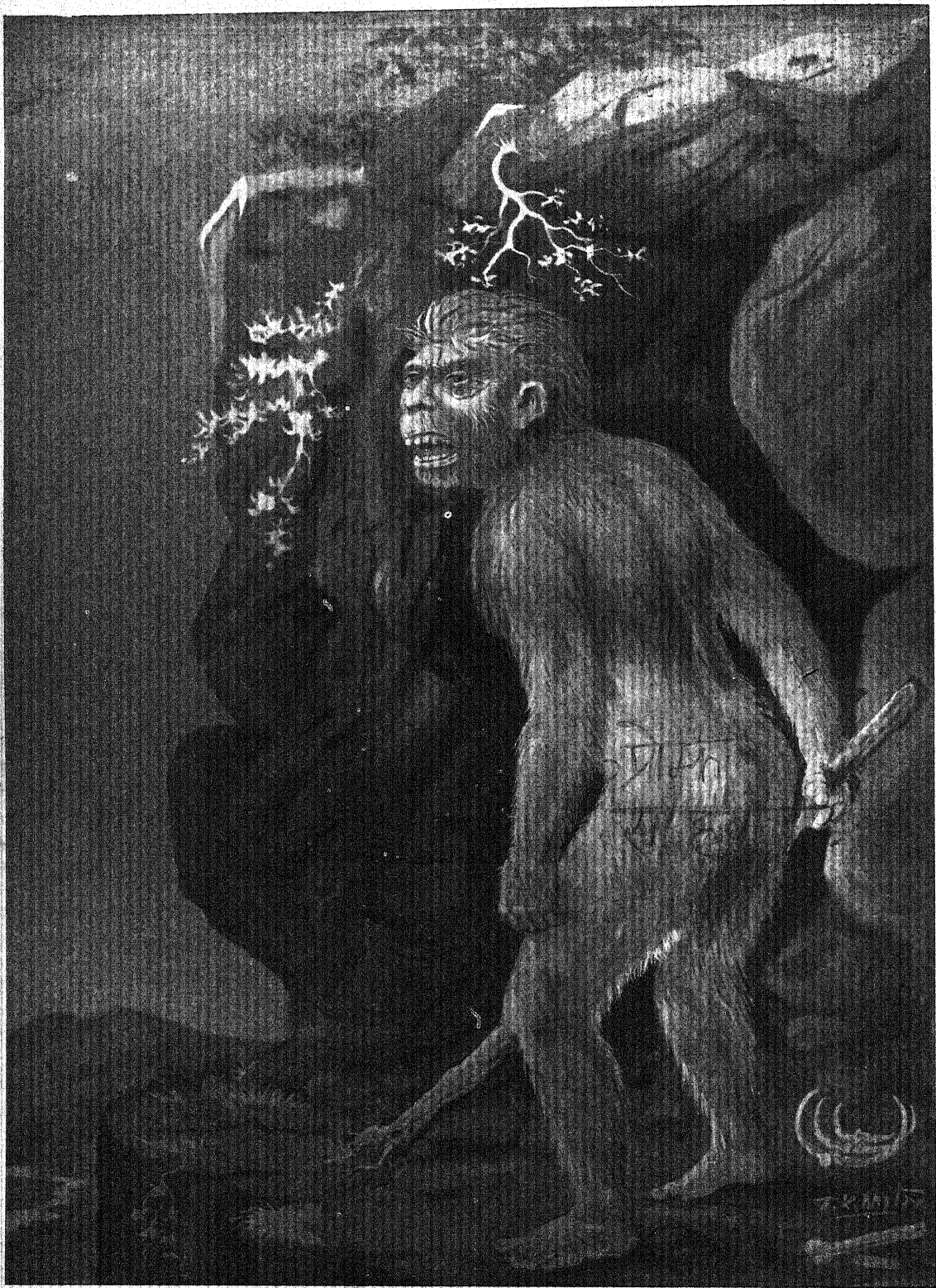
दस लाख वर्ष पूर्व का हमारा पूर्वज

अब तक जो प्राचीन मनुष्य की खोपड़ियाँ मिली हैं, उनमें सबसे पुरानी विद्वानों द्वारा दस लाख वर्ष की मानी जाती है।

मनुष्य की लंबी यात्रा का आरंभ

मनुष्य का इतिहास उसकी यात्रा का इतिहास है। आज जब हम युगों और महाकल्पों को लाँघकर चली आ रही अपने इतिहास की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी को घूमकर देखते हैं, तो कुछ ही हज़ार या लाख साल पीछे तक नज़र दौड़ा पाते हैं, उसके बाद वह पगडंडी निरंतर क्षीण होते-होते प्रागैतिहासिक युग के धुँधलेपन में लीन हो जाती है। किंतु इससे क्या? हमारी यात्रा का आरंभ तो निस्संदेह आज से लाखों वर्ष पहले हुआ होगा। अनादि काल से जिस पगडंडी पर हम चलते चले आ रहे हैं, उसके किनारे-किनारे के हमारे युग-युग के पड़ावों के जो थोड़े-बहुत ध्वंसावशेष आज दिन हमें मुड़कर देखने पर मिलते हैं, वे हमें विगत युगों की कैसी अद्‌भुत कहानी सुना रहे हैं!

यद्यपि वैज्ञानिकों ने तरह-तरह की खोजें कीं और अटकल लगाये, किन्तु अभी तक कोई दावे के साथ यह नहीं सिद्ध कर सका कि अब तक पृथ्वी की कितनी आयु बीत चुकी है। अधिकांश वैज्ञानिकों का मत है कि पृथ्वी को प्रकट हुए चालीस करोड़ से पन्द्रह करोड़ वर्ष बीत चुके। पृथ्वी पर जीव का प्रस्फुरण लगभग तीन करोड़ वर्ष हुए, सबसे पहले उथले जल अथवा दलदलों में हुआ था। उस समय जीवधारी का स्वरूप चिपचिपे जलकीट की तरह हुआ। इन्हीं से आगे चलकर मेंढक आदि निकले। बहुत समय बीतने पर जीव को रेंगनेवाले और सरककर चलनेवाले जन्तुओं का शरीर मिला। इस समय वनस्पतियों की भी उत्पत्ति हो चुकी थी, जिनसे आगे चलकर घने जंगल हो गये। इन्हीं जंगलों में पतंगों और उड़नेवाले कीटों का जन्म हुआ। इनके पशुओं की उत्पत्ति हुई। पशुओं के लाखों भेद थे। उन्हीं में से बन्दर भी थे। बन्दरों की अनेक जातियाँ हैं। बाज़-बाज़ बन्दरों—जैसे चिम्पैंज़ी, गोरिला, एप आदि—की शरीर-रचना मनुष्य की शरीर-रचना से इतनी मिलती-जुलती है कि कुछ लोगों की राय में उन्हीं से मनुष्य का विकास हुआ है। आदि वानरों को मनुष्य की तरह पत्थर, लकड़ी, लताओं और पत्तियों से काम लेने का ढंग मालूम हो चला था। मनुष्य के शरीर के समान शरीरवालों के चिह्नों का अब तक जो पता लगता है, उससे अनुमान किया जाता है कि शायद मनुष्य की उत्पत्ति अब से लगभग दस लाख वर्ष पहले हुई। चीन में एक मनुष्य की-सी खोपड़ी मिली है, जिसे लोग दस लाख वर्ष की पुरानी मानते हैं। जावा में प्राप्त खोपड़ी की आयु चार लाख पचहत्तर हज़ार वर्ष की आँकी गई है। जर्मनी की सबसे पुरानी खोपड़ी तीन लाख वर्ष की है। फ्रांस और इँगलैंड में जो खोपड़ियाँ मिली हैं वे एक लाख पचीस हज़ार वर्ष से लेकर दस हज़ार वर्ष की हैं।

भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी का पिछला जीवन कई युगों में विभक्त किया जाता है। इनमें एक युग ऐसा है, जिसका पृथ्वी पर बर्फ़ के पड़ने से आरम्भ होता है। बर्फ़ के युग के उन्होंने भाग किये हैं, जिनमें सबसे पहला अब से पाँच लाख वर्ष के पहले माना जाता है; और सबसे आख़िरी (चौथे) का आरम्भ अब से पचास या पचीस हज़ार वर्ष पहले हुआ था। आजकल वही युग चल रहा है। इस गणना के अनुसार मनुष्य बर्फ़ के युग के आरम्भ से ही चला आ रहा है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि मनुष्य सबसे पहले एशिया में ही पैदा हुआ, किन्तु मतभेद इस बात में है कि वह एशिया के किस भाग में उत्पन्न हुआ।

यह ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी का जो नक़शा आजकल है, वह हमेशा से ऐसा ही नहीं रहा। उसमें
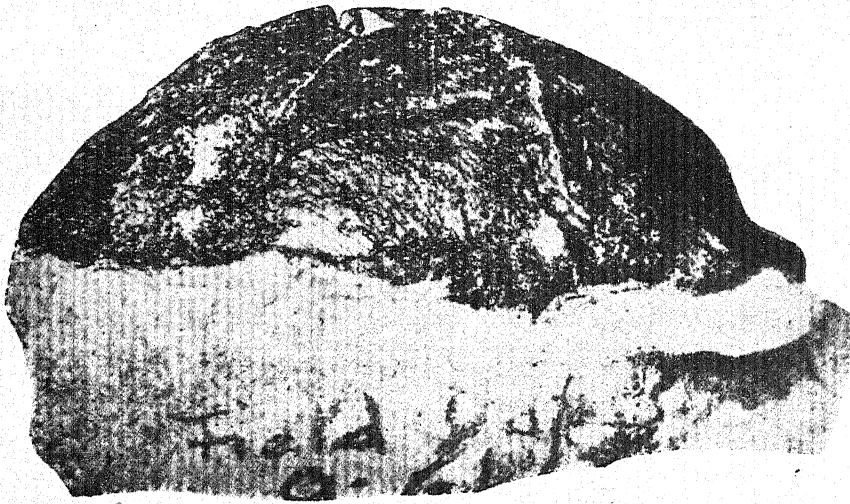
चीन में मिली आदि मानव की खोपड़ी

जो दस लाख वर्ष पुरानी मानी जाती है। यह पेकिंग के समीप मिली है। (नीचे के चित्र में) उक्त खोपड़ी के आधार पर १० लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य के पुरखे के रूप की कल्पना।

अनेक फेरफार हो चुके हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसा समय था जबकि जावा, सुमात्रा, मलय अन्तरीप एक साथ मिले हुए थे। एशिया, अफ्रीका, योरप आपस में मिले हुए थे। अब से तीस हज़ार वर्ष पहले ब्रिटेन योरप से मिला हुआ था। स्पेन और इटली अफ्रीका से जुड़े हुए थे, बल्कान अन्तरीप एशिया से मिला हुआ था। उस समय सीलोन हिन्दुस्तान से जुड़ा हुआ था, सिन्ध प्रदेश और बंगाल का कहीं पता न था, काला समुद्र, कैस्पियन सागर और तुर्किस्तान के ऊपर का हिस्सा जल में डूबा हुआ था। कहने का सारांश यह है कि उस समय आने-जाने के रास्ते आजकल के रास्तों से भिन्न थे। इन्हीं कारणों से मनुष्य और पशु आदि बिना जलयान की सहायता के एक द्वीप से दूसरे और एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में पहुँच जाते थे।

मनुष्य के अनेक समूह हो गये हैं। उनमें से कुछ उप-जातियों का लोप हो गया है और कुछ अभी तक बहुत पिछड़ी पड़ी हैं और कुछ ने अच्छी उन्नति और सभ्यता प्राप्त कर ली है। वस्तुतः मनुष्य अन्य पशुओं से इस बात में अधिक भाग्यवान् है कि वह उन्नतिशील है और उसकी उन्नति किसी-न-किसी अंश में बराबर होती चली आ रही और हो रही है। मनुष्य अन्य पशुओं से कई बातों में भिन्नता रखता है। पहली बात यह है कि वह सीधा खड़ा होकर दो पैरों से चलता है, दूसरी यह कि उसके हाथ और अँगूठे की रचना दूसरे ही ढंग की है। तीसरी यह कि वह अपने और दूसरों के अनुभवों से लाभ उठा सकता है। चौथी यह कि वह स्मरण, मनन और चिन्तन से अपनी कृतियों को सुधार सकता तथा अपनी इच्छा की पूर्त्ति के लिए अनेक उपाय और साधन निकालकर अपना सुधार और उन्नति कर सकता है। पाँचवीं यह कि वह अपने विचारों और भावों को वाणी और संकेतों के द्वारा प्रकट करने की शक्ति रखता है। इन्हीं सब गुणों के कारण वह निरंतर उन्नति करता जा रहा है। इन शक्तियों का विकास एक साथ ही अथवा पूर्ण रूप से नहीं हुआ। इनके विकास होने में बहुत-सा समय लगा और शायद अभी तक उसकी गुप्त अथवा प्रकट शक्तियों का पूरा-पूरा विकास नहीं हो पाया है।

मनुष्य को जो शक्तियाँ प्रकृति ने दी हैं वे उसकी उन्नति में सहायक हैं, किन्तु अपनी निजी शक्तियों के अलावा उसको अन्य जीव-जन्तुओं की तरह बाहरी प्रकृति से सहायता अथवा विरोध मिलता रहता है। पशु-पत्ती तो प्रकृति के अनन्य अनुचर रहते हैं, किन्तु मनुष्य प्रकृति पर दिनों-दिन अपना अधिकार जमाता चला आ रहा है। वह प्रकृति का दास नहीं बल्कि वह प्रकृति को ही अपनी अनुचरी बनाने की कोशिश करता चला आ रहा है। आरम्भिक पूर्व काल में वह प्रकृति के वश में अधिक था, इसलिए उसकी उन्नति बहुत धीरे-धीरे हुई। किन्तु जैसे-जैसे उसके साधन बढ़ते गये, वैसे ही उसकी उन्नति शीघ्रता के साथ होने लगी और प्रकृति के ऊपर उसका प्रभुत्व बढ़ने लगा। मनुष्य का इतिहास इन्हीं बातों की रंग-बिरंगी कहानी है।

अब से क़रीब एक लाख वर्ष पहले मनुष्य का जीवन पशु का-सा था। अपने हाथों के सिवा उसके पास रक्षा करने का कोई साधन न था। उसको शरीर ढाँकना तक नहीं आता था, झोपड़ी बनाना भी वह नहीं जानता था, उसके पास गाय, भैंस, बकरी, भेड़ी, कुत्ता कुछ भी न था। उसने अनाज का स्वप्न तक नहीं देखा था, और बर्त्तन आदि उसके ख़याल के बाहर थे। कन्द-मूल, जंगली फल, पत्तियाँ अथवा मरे जानवरों या जन्तुओं का मांस उसका आहार था। भाग्यवश उसे आग पैदा करना मालूम हो गया। लकड़ियों को ज़ोर के साथ रगड़कर वह
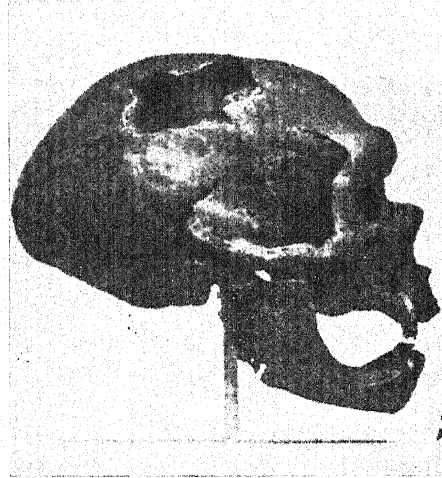
पचास हज़ार वर्ष की पुरानी खोपड़ी

यह फ्रांस में पाई गई थी।

आग पैदा कर लेता था। आग जलाकर उसके चारों ओर बैठकर लोग तापा करते थे। धीरे-धीरे उसने लकड़ी के नुकीले और चिपटे हथियार बनाना, मांस को भूनना और खाल अथवा पत्तियों से तन को ढकना सीख लिया। किन्तु इस थोड़े-से ज्ञान प्राप्त करने में उसे हज़ारों वर्ष लग गये। मनुष्य की उस समय की दशा बड़ी दयनीय है, किन्तु उस समय में भी आग पैदा करके और हथियार की रचना करके उसने सभ्यता की जड़ जमा दी। उसको अपनी आवश्यकताओं का अनुभव होने लगा, जिसके कारण उन्नति का रास्ता खुलने लगा। कहा जाता है कि मनुष्य इसी दशा में लाखों वर्ष तक टक्कर खाता रहा! इस समय भी टस्मेनियाँ में कुछ जंगली जन-समूह हैं, जो आज दिन भी आदिम दशा में रहते हैं।

पौने पाँच लाख वर्ष पूर्व का मनुष्य

यह चित्र जावा में प्राप्त खोपड़ी के आधार पर बनाया गया है।

क़रीब सवा लाख वर्ष हुए जब मनुष्य ने ऊपर वर्णित दशा से कुछ उन्नति करना आरम्भ कर दिया। उसी समय से पत्थर के युग का आरम्भ होता है। उसे पत्थर का युग इसलिए कहते हैं कि उसमें लोग पत्थर के औज़ारों और हथियारों से काम लेते थे। यह युग आज से क़रीब सवा लाख वर्ष पहले आरम्भ हुआ और क़रीब छः हज़ार वर्ष पूर्व तक (१२५०००—६०००) चलता रहा। पत्थर के युग के दो भाग माने जाते हैं, एक पूर्व भाग और दूसरा उत्तर भाग। इस युग के पूर्व भाग में आदमी पत्थर के ऐसे औज़ार बनाने लगे, जिन्हें मुट्ठी में पकड़कर वे काम में ला सकें। वे नुकीले और चिपटे औज़ार बनाने लगे। उस समय के बने हुए हथौड़े, घन, खरोंचने की चीज़ें, तीर,

एक लाख वर्ष का आदिम मानव

यह खोपड़ी इँगलैंड के पिल्टडाउन नामक स्थान में मिली थी। इसी के आधार पर साथ का चित्र कल्पना से बनाया गया है। यह ५० हज़ार से १ लाख वर्ष के लगभग पुरानी मानी जाती है।

बरछी के फल और चाकू वग़ैरह अमेरिका, योरप, अफ़्रीका और एशिया के देशों में अब तक पाये जाते हैं। इसी तरह एक लाख वर्ष बीत गये। फिर उन्होंने हड्डी की चीज़ें, जैसे पिन, घन, पालिश करने के औज़ार वग़ैरह, बनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्हें बरमा, आरी, बरछी, भाले आदि बनाना और उनमें हत्थे लगाना भी आ गया। इनके अलावा वे सींग और हड्डी के सूजे-सूजियाँ भी बनाने लगे। अब से सिर्फ़ सोलह हज़ार वर्ष की बनी हुई हाथी दाँत और सींग की ख़ासी अच्छी चीज़ें मिलती हैं। इस प्रकार पत्थर-युग के पूर्व काल में लकड़ी, पत्थर, हड्डी या सींग से वे लोग हथौड़े, घन, रन्दे, बरमे, रुखानी, कन्नी, खुरपी, बसूले, कुल्हाड़ी, फरसे, छोटे-बड़े चाकू, बरछे, ख़ंजर, कटिया, पिन, दिये वग़ैरह बनाने लगे। किन्तु सब से अचरज की बात तो यह है कि वे लोग पहाड़ की गुफ़ाओं में, जहाँ वे रहने लगे थे, कभी-कभी दीवार पर चित्र भी बनाते थे! स्पेन के अल्टामिरा नामक स्थान में अब से सोलह हज़ार वर्ष पहले के गुफ़ाओं में बने हुए काफ़ी सुंदर सजीव रंगीन चित्र मिलते हैं, जिनको देखकर यह मानना पड़ता है कि पत्थर के युग में भी मनुष्य में कला-कौशल का स्वाभाविक अनुराग प्रकट हो गया था। ये चित्र प्रायः बारहसिंघों, हाथियों, घोड़ों, भैंसों, रीछों और सुअरों आदि के हैं। कहीं-कहीं मोटी स्त्रियों के भी अनेक चित्र मिलते हैं। इसके अलावा चेकोस्लोवेकिया में हाथी, जंगली घोड़े और बारहसिंघों की पत्थर की बनी मूर्त्तियाँ भी मिलती हैं।

पत्थर-युग के उत्तरकाल में, जिसका आरम्भ अब से यदि दस हज़ार वर्ष नहीं तो सात हज़ार वर्ष पहले माना जाता है, कुछ मार्के के परिवर्तन हो गये। इस समय पत्थरों को रगड़कर औज़ार बनाये जाने लगे, क्योंकि उन पर पालिश मिलती है। लोगों को पशुओं के पालने और उनसे लाभों का ज्ञान होने लगा। गाय, बैल, बकरी, भेड़, घोड़े, कुत्ते और सुअर पाले जाने लगे। पहले लोग केवल शिकार करके मांस लाते और खाते थे किन्तु अब पले जानवरों को वे काम में लाने लगे। उनका दूध पीते और मांस खाते और उनसे खेती वग़ैरह के काम लेते थे। जौ, गेहूँ और बाजरा की वे खेती करते थे। वे मिट्टी के बरतन बनाने लगे। मिट्टी की ईंटें भी बनने लगीं। इसी काल में लोगों को बुनने का कौशल मालूम हो गया! वे पत्तियों, घासों और बाँसों से बुनकर डलिया, झौआ आदि बनाने लगे। सन को पैदा करके उसको बटकर रस्सियाँ बनाने लगे। उन्हें पहियों और गड़ारियों के बनाने और उनसे काम लेने का ज्ञान होने लगा। किन्तु शायद बरतन बनाना उन्हें नहीं आता था। पहियों की सहायता से बोझ उठाकर ले जाने में उनको सुविधा होने लगी। यही नहीं उनको मिट्टी की दीवालें, घास-फूस, झाऊ, बाँस आदि से
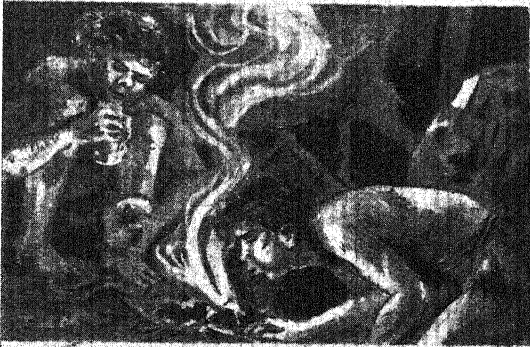
आदिम मनुष्य की सभ्यता की ओर प्रगति

(बाईं ओर ऊपर से नीचे) पहला चित्र, पत्थर के औजार बनाते हुए; दूसरा, आग जलाते हुए; तीसरा, मिट्टी के बर्त्तन बनाते हुए; चौथा, दूध, मांस, और कृषि के लिए पशुओं का पालन करते हुए। (दाहिनी ओर ऊपर से नीचे) पहला चित्र, बस्तियों में मिलकर रहने का प्रारंभ; दूसरा, कपड़ों के व्यवहार का आरंभ; तीसरा, गुफाओं में चित्र बनाते हुए; चौथा, भूत-प्रेत या देवी-देवताओं की मूर्त्तियों की पूजा करते हुए।

टट्टर और छप्पर आदि बनाना आ गया। इसलिए अब वे गुफाओं को छोड़कर झोपड़ों में रहने लगे। उनको पेड़ों के तनों को कोलकर नावें बनाना भी आ गया। नावों और पहिये के ठेलों आदि की बदौलत वे थोड़ा व्यापार भी करने लगे।

रहने के लिए झोपड़े, खेती, पशुपालन आदि का प्रभाव यह हुआ कि मनुष्य के कुछ समूह ख़ानाबदोशी छोड़कर स्थान विशेष के निवासी बन गये और किसानी करने लगे। इस नये प्रकार के रहन-सहन से सभ्यता की नींव ही बदल गई और आगे बढ़ने का रास्ता और भी साफ़ हो गया। लोगों को सम्पत्ति का ज्ञान और उससे लाभ उठाने की तरकीब भी मालूम हो गई, जिसका आगे चलकर व्यापार और समाज की रचना पर बहुत गहरा असर पड़ा। मनुष्यों में अमीर-ग़रीब, सभ्य और असभ्य का भेद पैदा होने लगा, और समाज में पेशों की श्रेणियाँ बनने लगीं। गाँवों और बस्तियों का आरम्भ हो गया। बस्तियों के चारों ओर रक्षा के लिए या तो वे लोग मिट्टी की दीवारें बना लेते, खाईं खोद लेते अथवा वे लकड़ी के कुन्दों की बाढ़ बना लेते थे। पत्थर युग के उत्तर काल में मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा और कलाओं को ठीक-ठीक जानने के काफ़ी साधन नहीं मिलते, इस कमी को पूरा करने के लिए वैज्ञानिकों ने जंगली जातियों के जीवन की छानबीन करके कुछ बातें निकाली हैं। वे कहते हैं कि कुछ आधुनिक जंगली जातियाँ अभी तक पत्थर के युग में हैं, अतएव सम्भव है कि उनके आचार-विचार भी उसी सभ्यता के हों। हो सकता है; किन्तु इस

पत्थर-युग के मनुष्यों के पाषाण के औज़ार

(ऊपर से नीचे) पहली पंक्ति में—मुट्ठी में पकड़कर काम में ला सकने योग्य पत्थर के औज़ार जो रगड़कर बनाये गये थे। ये ट्यूनिस में पाये गये हैं।

दूसरी पंक्ति में—ऊपर ही की तरह के और औज़ार। ये उत्तरी अमेरिका में पाये गये हैं।

तीसरी पंक्ति में—पत्थरों के बने भालों या तीरों के फल। ये भिन्न-भिन्न स्थानों में पाये गये हैं।

प्रस्तर-युग में मनुष्य का जीवन

मानव इतिहास के आरंभिक युगों में प्रस्तर-युग या पत्थर का युग सबसे महत्त्वपूर्ण है ; क्योंकि इस युग में मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्तियों का बड़ा अद्भुत विकास हुआ। पत्थर, सींग, हड्डी आदि से औज़ार बनाना, आग का उपयोग करना, सामुहिक रूप से शिकार खेलना तथा एक प्रकार की बस्तियों में रहना प्रारंभ करके मनुष्य ने इसी युग में हज़ारों वर्ष के अपने भावी जीवन और सभ्यता की नींव डाली थी।
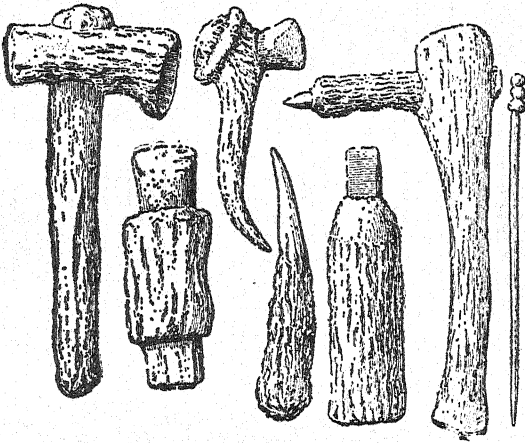
पत्थर-युग के उत्तरकाल के औज़ार
हड्डी-सींग आदि से बने कुल्हाड़ी, बसूला, रुखानी आदि।

ढंग की खोज कुछ कच्ची ही माननी पड़ेगी। अनुमान किया जाता है कि पत्थर के युग में भी मनुष्य भाषा का व्यवहार करते थे और उनको नाच और गाने का शौक़ था। उनकी भाषा में लिङ्गभेद पर ज़ोर दिया जाता था। उनका शब्द-भण्डार भी अच्छा ख़ासा था। यद्यपि उनके गाने-बजाने में मधुरता न थी, किन्तु उनके कोलाहल में ताल था। गाने-बजाने का प्रभाव उन पर गहरा पड़ता था, जिससे कि वे अत्यन्त उत्तेजित अथवा बीमार हो जाते थे। उनके बाजे ढोल, पिपिहरी या तुरही या तारोंवाले यंत्र थे। नाचने में भी उन पर ऐसी मस्ती छा जाती थी कि वे शल हो जाते और थक जाते थे। वे साधारण कामों को भी यदि देर तक करना चाहते थे तो गाने-बजाने की सहायता लेते थे। जंगली जातियों को भी साज-सिंगार का शौक़ था। वे अपने बदन पर रंग लगा लेते थे और आभूषण पहनते थे। उनके विचार और विश्वास तथा कहानियाँ बच्चों और मूर्खों-जैसी होती थीं। पेड़, पत्थर, पशुओं आदि में वे मनुष्य के-से व्यक्तित्व और जीवन की धारणा रखते थे। उनमें वे विचित्र शक्ति मानते थे। ताबीज़, जादू, झाड़-फूँक, टोटकों और टोनों में वे बड़ा विश्वास रखते थे। उनमें इन बातों के जाननेवाले सयाने आदि होते थे जो रोगों की दवा भी जड़ी, पत्ती, हड्डी, खाल, पत्थर आदि से करते थे। गा-बजाकर, मार-पीटकर, गालीख़्वारी करके वे रोग दूर करने का दावा रखते थे। वे जादू के बल से शत्रुओं या आदमियों में रोग ही नहीं बल्कि मृत्यु फैला देने की ताक़त मानते थे। जल बरसाने, ऋतु बदलने, मनुष्य या खेती में पैदावार बढ़ाने, देवता बुलाने, और भविष्य में होनेवाली बातों को जानने के लिए अनेक प्रकार के विधान रचते थे। भूत-प्रेत, मृत आत्माओं, देवी और देवों को तो वे बहुत मानते थे, किन्तु साथ ही में उनको एक परम पिता अथवा महादेव का भी ज्ञान होने लगा था। उनमें अनेक दन्तकथाएँ और अलौकिक गाथाएँ भी प्रचलित थीं। उनमें विवाह-प्रथा भी थी और प्रायः एक पति या एक पत्नी का नियम-सा था। विवाह के कुछ नियम भी, जो सब समूहों में एक-से न थे, प्रचलित थे। यद्यपि स्त्रियाँ पुरुषों से उतरकर समझी जाती थीं और वे बराबरी का दावा नहीं कर सकती थीं तथापि उनको काम करने की बहुत आज़ादी थी। कुछ लोगों में वंश पिता के नाम से न चलकर माता के नाम से ही चलता था। उनमें कुल, कुटुम्ब, जाति, भैयाचारा, बिरादरी के भेद और प्रभेद पैदा हो गये थे। उन्हें नृशंसता और बेरहमी दिखाने में तनिक भी संकोच न था। वे लकीर के फ़क़ीर और पुरानी प्रथा के बड़े भक्त थे। नयेपन से वे बहुत घबराते थे। उनमें थोड़े बहुत क़ानून भी चलते थे, जो किसी सिद्धान्त की बुनियाद पर न थे। बदला चुकाने के लिए वे बड़े तैयार रहते थे। शपथ दिलाकर अथवा अग्निपरीक्षा आदि से वे सत्य या असत्य का निर्णय करते थे। जाति-अपमान या बिरादरी से बाहर कर दिये जाने से उनको बहुत भय रहता था।

ऊपर के वर्णन से यह साफ़ मालूम होगा कि पत्थर के युग के समाप्त होने तक मनुष्य ने सभ्यता और उन्नति के अनेक साधन जमा कर लिये थे। फिर भी उनके पास तीन चीज़ों की भारी कमी रह गयी थी। उनको न तो धातुओं का पता था; न उन्हें लिखना आता था और न उन्हें राज-

काँसे के औज़ार
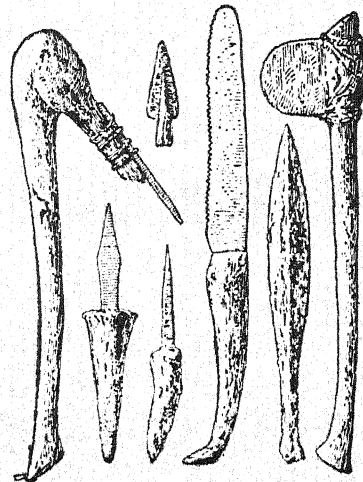
ये मिस्र में पाये गये हैं। इनके बेंट पत्थर, हड्डी आदि के हैं। इसी तरह के औज़ार दूसरे स्थानों में भी मिले हैं।

नीतिक संगठन आता था। आगे चलकर इन तीनों चीज़ों का ज्ञान जब मनुष्यों को हुआ, तब सभ्यता और उन्नति में बड़ी शीघ्रता आ गयी। विद्वानों का अनुमान है कि पत्थर का युग क़रीब पचास हज़ार वर्ष तक चलता रहा।

सबसे पहली धातु जो मनुष्य को मिली वह शायद सोना थी, किन्तु उसने सबसे पहले ताँबे का ही उपयोग करना सीखा। क़रीब आठ हज़ार वर्ष से ताँबे का उपयोग होना शुरू हो गया था। स्विटज़रलैंड, मसोपटेमिया, मिस्र, हिन्दुस्तान और अमेरिका में ताँबे के औज़ारों के अवशेष मिलते हैं। किन्तु इससे यह नतीजा न निकालना चाहिए कि पत्थर के युग के बाद ताम्रयुग का आगमन हुआ। वस्तुतः ताम्रयुग केवल काल्पनिक है, उसके होने का कोई प्रमाण नहीं है। पोलीनेशिया, फ़िनलैंड, उत्तरी रूस, मध्य अफ़्रीका, दक्षिण भारत, आस्ट्रेलिया, जापान और उत्तरी अमेरिका में पत्थर के युग के बाद ही लोहे का प्रयोग आरंभ हो गया। उन देशों में भी जहाँ ताँबे का प्रचार माना जाता है, थोड़े ही मनुष्य शौक़िया उसे काम में लाते थे। सर्वसाधारण पत्थर का ही प्रयोग करते थे। हथियारों के बनाने के लिए ताँबे के मुक़ाबले में पत्थर ज़्यादा मज़बूत है। मनुष्य को काँसे का पता भी लग गया, किन्तु काँसा काफ़ी मात्रा में न मिलने के कारण और धातुओं को मिलाकर काँसा बनाने की विधि न जानने के कारण वह काँसे का उपयोग अधिक न कर सका। किन्तु जिनको काँसा काफ़ी मात्रा में मिल सका वे लड़ाई में दूसरों से अच्छे रहे और शक्तिशाली बन बैठे। कोई छः हज़ार वर्ष से लोहे का भी उपयोग हो रहा है। उत्तरी रोडेशिया में अब से क़रीब छः हज़ार वर्ष की लोहे की चीज़ें मिली हैं। ढाई-तीन हज़ार वर्ष की पुरानी लोहे की चीज़ें मिस्र और बेबीलन में मिलती हैं। किन्तु ढले हुए लोहे की सबसे पुरानी चीज़ फ़िलिस्तीन में प्राप्त चाकू का फल है, जिसे लोग साढ़े तीन हज़ार वर्ष का मानते हैं। आस्ट्रिया (योरप) में क़रीब तीन हज़ार वर्ष हुए लोहे का उपयोग आरम्भ हो गया था। कहते हैं कि हिन्दुस्तान में लोहे का आरम्भ सिकंदर के समय से हुआ है।

आदि मानव की कला

यह स्पेन के अल्टामिरा नामक स्थान की गुफा में दीवार पर अंकित कम से कम सोलह हजार वर्ष पुराने चित्रों में से एक है।

लेखनकला का आरम्भ भी कोई सात या छः हज़ार वर्ष से हुआ है। पहले सुमेरिया, मिस्र और मेडिटरेनियन समुद्र के आस-पास लोग चित्रों अथवा रेखाओं द्वारा अपने विचार अंकित करते थे। किन्तु वे अक्षर न थे। अक्षरों का आरम्भ क़रीब पाँच हज़ार वर्ष हुए मिस्र में हुआ। वे चौबीस अक्षरों से काम लेते थे। वहाँ से अथवा क्रीट से उत्तरी अफ़्रीका के निवासी फ़ोनीशियन लोग उसे अपने व्यापार के साथ देश-देशान्तरों में ले गये। अक्षरों में सबसे पहले लिखे लेख सिनाई की शिला पर मिलते हैं। इनको क़रीब साढ़े चार हज़ार वर्ष का पुराना विद्वान् लोग मानते हैं।

हज़ारों वर्ष पूर्व के अक्षर

ये अक्षर कील के आकार के हैं और बैबीलोनिया और फ़ारस के अति प्राचीन लेखों में पाये गये हैं।

एक नई दुनिया का निर्माण

हमने ईश्वर और प्रकृति की बनाई हुई अद्भुत सृष्टि की अचरज-भरी कहानी पिछले स्तंभों में पढ़ी ; किन्तु क्या उससे कम आश्चर्यजनक है स्वयं मनुष्य द्वारा रची गई उस दूसरी अनोखी सृष्टि की कहानी, जिसका निर्माण करके मनुष्य दूसरा विधाता बनने जा रहा है ? पृथ्वी को अपने एक खेल का मैदान-सा बनाकर रेल, मोटर, जहाज़ आदि दौड़ाते हुए आज एक से दूसरे कोने तक यह उसे रौंद रहा है । मनुष्य ने पहले-पहल जिस दिन पत्थरों को तोड़कर उनसे औज़ार बनाना सीखा, उस दिन से हवाई जहाज़, रेडियो, और टेलीवीज़न के इस युग तक की प्रकृति पर विजय पाने तथा एक नई सृष्टि रच डालने की पूरी कहानी इस स्तंभ में क्रमशः आपके लिए फिर से दोहराई जा रही है ।

हम अपने को भाँति-भाँति की वस्तुओं से घिरा हुआ पाते हैं। पत्र लिखना हुआ तो मेज़ पर से फाउन्टेनपेन उठाया, पन्ने के पन्ने भर दिये । बग़ल से टेलीफ़ोन लिया, सात समुन्दर पार बैठे हुए मित्रों से बात कर ली। कमरे से बाहर निकले, दो मिनट भी इन्तज़ार नहीं करना पड़ा कि ट्राम आयी, और बात-की-बात में आप आफ़िस पहुँच गये । बाहर जेठ की लू चल रही है, किन्तु आप आफ़िस में बैठे बिजली के पंखे के नीचे ठण्डी हवा का आनन्द ले रहे हैं । जिधर आँख उठाएँ, आपको हैरत में डाल देने वाली चीज़ें नज़र आएँगी । ज़रा-सा स्विच दबाया और लन्दन-पेरिस के गाने आपको सुनाई देने लगे। घर-बैठे सैकड़ों कोस दूर की घटनाएँ भी टेलीवीज़न की सहायता से अब आप देख सकते हैं।

क्या आपने कभी सोचा है कि जादू ऐसी काम कर दिखानेवाली ये वस्तुएँ कैसे बनी हैं ? निस्संदेह पेड़-पौधों की तरह प्रकृति में ये स्वयं तो उत्पन्न नहीं होतीं। तो आख़िर उनका निर्माण मनुष्य ने कैसे कर डाला ? बड़े-बड़े वायुयान, विशालकाय रेल व इंजिन, इन सबको क्या मनुष्य ने किसी दैवी प्रेरणा से बना डाला या ये निरंतर अनेक पीढ़ियों तक इन समस्याओं के हल करने की उसकी कठोर लगन और साध का प्रसाद हैं ।

आदिकाल में मनुष्य तत्कालीन जीवधारियों में सबसे अधिक अरक्षित और असहाय था । ख़ूँख़्वार जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए उसके पास न तो मज़बूत पंजे, न सींग और न सुदृढ़ टाँगें ही थीं कि उनकी सहायता से वह शत्रुओं का मुक़ाबला कर सकता । किन्तु शायद वह ही अकेला प्राणी था, जो सोचने की शक्ति रखता था । अपनी रक्षा के निमित्त प्रति क्षण उसे तरह-तरह के उपाय सोचने पड़ते थे । इस तरह पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए मनुष्य को बरबस आविष्कारकर्त्ता बनना पड़ा । उसके शरीर पर बाल नहीं थे कि वह ठण्ड से बच सके, निदान यहाँ भी उसे मस्तिष्क से ही काम लेना पड़ा—उसने पत्तों को जोड़कर शरीर ढकने के लिए परिधान बनाया । आधुनिक पुतलीघरों तक पहुँचने के लिए नवीन मार्ग उसी दिन खुला। इस बल्कल-वस्त्र से आधुनिक पुतलीघरों तक पहुँचने में फिर मनुष्य को कुछ विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा—इस श्रृंखला में आविष्कारों की कड़ियाँ एक के बाद दूसरी जुड़ती ही गईं ।

व्यर्थ के परिश्रम से बचने के लिए उसने सदा से ही नई-नई तरकीबें ढूँढ़ी हैं । जंगल से ईंधन सिर पर लादकर लाने में उसे तकलीफ़ होती थी। उसने इस परेशानी से बचने के लिए सोचा-विचारा और तब चक्की के पाट-जैसे लकड़ी के टुकड़े काटकर उसने पहिये तैयार किये । और इस बेढंगी गाड़ी पर बोझा ढोने का काम वह लेने

लगा। पहियेदार गाड़ी के विकास का यहीं से प्रारंभ होता है। मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्तियाँ बराबर काम करती रहीं। भद्दे पहियेवाली गाड़ियों के युग से हज़ार-दो हज़ार वर्षों के भीतर ही मनुष्य लम्बी-लम्बी रेलगाड़ियों के इस आधुनिक युग तक आ पहुँचा। इस दिशा में अभी मनुष्य की प्रगति रुकी नहीं है। भविष्य में क्या निहित है, इस प्रश्न के उत्तर देने का किसमें सामर्थ्य है?

कन्दराओं और अँधेरी गुफाओं से बाहर निकलकर मनुष्य ने दूँह से घेरकर अपने लिए घास-फूस की झोपड़ी तैयार की। इस तरह जाड़े और धूप से उसने अपनी रक्षा की। फिर लाखों वर्ष तक इस झोपड़ी के सँवारने-सुधारने का काम जारी रहा और आज उसके लिए ताजमहल जैसी सुंदर या न्यूयार्क की गगनचुंबी अट्टालिकाओं-जैसी इमारतों का निर्माण करना बायें हाथ का खेल हो रहा है। इसी प्रकार साधारण डोंगी से आधुनिक जहाज़ों तक पहुँचने में मानव-समाज को एक लम्बी मंज़िल तै करनी पड़ी है। एक ओर आप बैलगाड़ी खड़ी कर देवें और दूसरी ओर हवा से बातें करनेवाली मोटरगाड़ी। लाख प्रयत्न करने पर भी आप यह न जान सकेंगे कि मोटर बैलगाड़ी का ही परिष्कृत रूप है! और साधारण गुब्बारों से ज़ैप्लिन तक पहुँचने की कहानी भी क्या कुछ कम आश्चर्यजनक है?

मानव जाति के भविष्य का निर्माता—वैज्ञानिक

प्रयोगशालाओं में रात-दिन यंत्रों द्वारा छान-बीन करनेवाले वैज्ञानिक की लगन और तपस्या ही के फलस्वरूप आज हमें रेल, मोटरें और हवाई जहाज आदि मिले हैं।

इस प्रकार आविष्कारों के बल पर मनुष्य एक-एक इंच करके सभ्यता की ज्योति की ओर बढ़ता गया—और उसके हमजोली जंगल के अन्य जानवर और ख़ासकर उसके निकटतम संबंधी बंदर बहुत दूर पीछे जहाँ-के-तहाँ रह गये।

निस्संदेह प्रकृति के रहस्य का पता लगाने का हमारे पुरखों ने सराहनीय प्रयत्न किया था, किन्तु वे अधिक गहराई तक पहुँच न सके। क्योंकि उनके पास उपयुक्त साधन मौजूद न थे। अपनी इन्द्रियों द्वारा ही वे बाह्य संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे—किन्तु केवल इन्द्रियाँ ही मस्तिष्क को इस रास्ते पर दूर तक नहीं ले जा सकतीं। मनुष्य का दृष्टिक्षेत्र, उसकी सुनने की शक्ति और सूँघने की क्षमता अनेक जानवरों की अपेक्षा कहीं कम है। अतएव इन घटिया क़िस्म के साधनों को लेकर प्रकृति की भूलभुलैया में मनुष्य एक भूले हुए पथिक की तरह लाखों वर्ष तक भटका किया। आँख उठाकर उसने आसमान की ओर देखा, तो मुश्किल से हज़ार-दो हज़ार तारे नज़र आये। उसने समझा, बस आकाशपिंडों की संख्या इतनी ही है। किंतु उस समय भी अरबों और खरबों की संख्या में आज ही की तरह आकाश में तारे टिमटिमाते थे। फिर जब वह अपने पैरों की ओर धरती पर नज़र डालता, तो शायद एकाध चींटियाँ उसे दिखाई दे जातीं—उसे स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि उस मिट्टी में करोड़ों पिस्सू और क्षुद्र कीटाणु बिलबिलाते रहते हैं। रास्ता चलते समय उसके पैरों से जब ठोकर लगती, तो आज की भाँति उन दिनों भी कंकड़ों में विद्युत् का संचार हो आता—किंतु इन सब बातों से अनजान, वह अपनी पुरानी चाल से मुद्दतों तक चलता रहा, वह तो इस ख़याल में था कि आँख मूँदे हुए समाधि लगाकर ही वह प्रकृति के रहस्य का पता लगा सकेगा!

लेकिन इतिहास बताता है, इन जटिल गुत्थियों की दो-एक गाँठ भी खोलने के पहले, मनुष्य को हज़ारों-सैकड़ों आविष्कार अपनी इन्द्रियों की परिमित शक्ति

मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्ति का विकास

(ऊपर से नीचे) पहली पंक्ति में—आदि मानव का पहले-पहल पत्तों से शरीर ढकने का प्रयत्न, और आज का पुतलीघर ; दूसरी पंक्ति में—आदिम कुटिया की रचना, और आज की गगनचुंबी अट्टालिकाएँ ; तीसरी पंक्ति में—आदिम पहियोंवाली गाड़ी, और आज का रेल का इंजिन ; चौथी पंक्ति में—आदिम डोंगी की रचना और आज का जहाज़ ।

बढ़ाने के लिए करने पड़े—आजकल के यंत्रयुग की नींव भी तभी पड़ी।

आँखों की शक्ति बढ़ाने के लिए उसने दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यंत्रों का निर्माण किया और तब अनन्त अन्तरिक्ष में प्रवेश करने में वह सफल हो सका। दूरदर्शक की सहायता से उन आलोक-रश्मियों का उसे पहली बार परिचय मिला, जो हज़ारों वर्ष पहले पृथ्वी तक पहुँचने के लिए रवाना हो चुकी थीं! जगत् की विशालता का मनुष्य को पहली बार सही पैमानों पर अन्दाज़ मिला। सूक्ष्मदर्शक की सहायता से सूक्ष्म दृष्टि भी उसने प्राप्त की—अदृश्य वस्तुओं को भी देखने में वह समर्थ हुआ। उसने इन सूक्ष्म पदार्थों का अध्ययन किया और इस तरह पदार्थ के मूल तत्त्वों तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक को रास्ता दिखाई पड़ा। अणु-परमाणुओं की समस्या वह हल कर सकेगा, इस आशा का उसके मन में संचार हुआ।

किंतु मनुष्य की जिज्ञासा बड़ी ही बलवती है, वह तृप्त होनेवाली वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने दृष्टिक्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करता ही गया और अब उसके लिए घर बैठे दूरदर्शक (टेलीविज़न) भी लभ्य है। टेलीविज़न के आविष्कार ने मनुष्य की इस चिरसंचित अभिलाषा को भी पूरा कर दिखाया।

कानों की शक्ति बढ़ाने के लिए भी उपयुक्त यंत्रों की रचना की गई। टेलीफ़ोन ने तार के ज़रिये हज़ारों कोस की दूरी पर बैठे हुए व्यक्तियों से बात करने की शक्ति मनुष्य को प्रदान की। किंतु इस क्षेत्र में भी मनुष्य यहाँ रुका नहीं, वह निरन्तर आगे बढ़ता गया, और आज वह लाखों मील की दूरी पर बैठे मित्रों से 'रेडियो' द्वारा एकदम शून्य में बातचीत करने लग गया है।

ताप का अनुभव करने की शक्ति भी मानव शरीर में कुछ अधिक नहीं है—कभी-कभी तो ताप के ज्ञान में उसे धोखा भी हो जाता है। अतएव इस काम के लिए भी उसने आश्चर्यजनक यंत्र बनाये। वैज्ञानिक अपने थर्मामीटर से मील भर की दूरी पर रक्खी हुई मोमबत्ती की गर्मी को भी नाप सकता है। यही नहीं, प्रयोगशालाओं में अनेक यंत्र ऐसे भी मिलेंगे, जिनकी सहायता से वैज्ञानिक दिव्य दृष्टि प्राप्त कर आकाशीय नक्षत्रों के बारे में जानकारी हासिल करता है। अमुक नक्षत्रों में कौन से पदार्थ मौजूद हैं—वे वाष्प के रूप में वहाँ हैं या द्रव रूप में? उस नक्षत्र का वज़न क्या है? उसका तापक्रम कितना है? इन सब प्रश्नों का उत्तर प्रयोगशाला में बैठा हुआ वैज्ञानिक खोजता रहता है। यदि आपको उसकी बात में किसी प्रकार का संदेह है, तो आप ख़ुशी से प्रयोगशाला में चले आइए और स्वयं अपनी आँखों से इन प्रयोगों का निरीक्षण कीजिए—एकदम सच्चाई का सौदा, एकदम खरा व्यवहार। अंध श्रद्धा, विश्वास—इन सब चीज़ों की दुहाई वैज्ञानिक नहीं देता।

प्रकृति का विश्लेषण कर उसके रहस्य को वैज्ञानिक ने भली भाँति पहचाना, और इस तरह प्रकृति के ऊपर उसने अपना प्रभुत्व भी जमाया। समुद्र की उत्ताल तरंगों से वह अब भय नहीं खाता, वरन् विशालकाय जहाज़ों पर वह स्वच्छन्दतापूर्वक समुद्र के वक्षःस्थल के ऊपर तैरा करता है। दूरी भी अब उसे नहीं खलती। पहले जो मंज़िलें महीनों में तै होती थीं, उन्हें अब वह पाँच मिनट में तै कर लेता है। शीघ्रगामी मोटरों पर वह बिजली की भाँति तीव्र गति से एक स्थान से दूसरे स्थान को डोलता फिरता है। आकाश में भी पक्षी की भाँति वह निर्द्वन्द विचरने लगा है। घंटे में ४०० मील की गति तो उसने प्राप्त कर ही ली है, और वह आशा करता है कि शीघ्र ही ५०० मील प्रति घंटे की गति से आकाश में उड़ेगा। आश्चर्य नहीं, कुछ ही दिनों में जलपान हम बम्बई में करें और दोपहर का भोजन लन्दन में! समूची पृथ्वी सिकुड़कर मानों वैज्ञानिक के लिए एक छोटा-सा प्रदेश बन गया है। पनडुब्बियों में बैठकर वैज्ञानिक समुद्र के गर्भ में भी प्रवेश करता है। इस तरह रत्नाकर की तह में भी वह पैठ रहा है।

प्रकृति की किसी रुकावट के सामने वह हार मानने को तैयार नहीं है। अनेक मोर्चे उसने फ़तेह कर लिये हैं और जो बाक़ी हैं उन पर भी वह विजय प्राप्त कर लेगा, इसका उसे दृढ़ विश्वास है। हर प्रकार से वैज्ञानिक प्रकृति पर हावी हो रहा है—जो बाढ़ सहस्रों गाँवों को नष्ट-भ्रष्ट कर देती थी आज उसी का जल बाँध से घेरकर रेगिस्तानों के सींचने के काम आता है। जहाँ चारों ओर बालू-ही-बालू थी, वहाँ अब हरे-हरे धान के खेत लहलहाते नज़र आते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी झरनों से पंजाब, बम्बई, युक्तप्रान्त सब कहीं विद्युत्-शक्ति प्राप्त की जा रही है। सस्ती लागत पर इन झरनों से प्राप्त की गई विद्युत्धारा मोटे-मोटे तारों के ज़रिये पावरहाउस में पहुँचती है, और फिर वहाँ से शहर या गाँव के प्रत्येक घर में उसका वितरण होता है। रात को सड़कें, गली और मकान का अंधकार यह दूर करती है, आधुनिक चूल्हों पर वह खाना भी पकाती है। नगर के निवासियों को टेलीफ़ोन और तार के ज़रिये एक घनिष्ट सूत्र

में वह बाँधती भी है। कारख़ानों में आपकी मशीनों का परिचालन करती, आपके लिए आटा पीसती, खेत सींचती तथा अन्य सभी छोटे-मोटे काम करती है। इस नई शक्ति ने पहाड़ी प्रान्तों को, जो अब तक कारोबार की दृष्टि से पिछड़े हुए थे, एक अद्भुत् महत्त्व प्रदान कर दिया है। लोहे के कारख़ानों में भट्टियों को प्रज्ज्वलित रखने के लिए कोयले के बजाय विद्युत् का प्रयोग हो रहा है—विद्युत् शक्ति की सहायता से चूना, सोडा तथा अमोनिया-जैसी काम की चीज़ें हवा से पैदा की जा रही हैं।

अपने बाहुबल बढ़ाने के उद्देश्य से मनुष्य ने सैकड़ों प्रकार की मशीनें ईजाद की हैं, जिनकी मदद से वह तरह-तरह की वस्तुएँ तैयार करता है। प्राचीन युग में लाखों की संख्या में लोग चींटियों की तरह जुटकर किसी भारी काम को पूरा कर पाते थे। कहा जाता है, मिस्र के स्तूपों के निर्माण में एक लाख से अधिक मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी थी; किंतु वैज्ञानिक युग की इस बीसवीं शताब्दी में अस्सी-अस्सी तल्ले की गगनचुम्बी इमारतें मशीनों की सहायता से थोड़े-से व्यक्ति बात-की-बात में तैयार कर लेते हैं। मशीनों की बदौलत अकेला व्यक्ति हज़ारों आदमियों से ज़्यादा काम कर लेता है।

आज दिन हमारे पास पाँच ही नहीं, वरन् सैकड़ों इन्द्रियाँ हैं—और उनकी सहायता से मनुष्य प्रतिदिन चमत्कारपूर्ण कृतियाँ उत्पन्न कर रहा है। मशीनों के बल पर वह पर्वतों और नदियों की परवा नहीं करता। पर्वत-श्रेणी के उस पार जाना है तो वैज्ञानिक २॥ दिन का रास्ता ६ दिन में नहीं चलेगा, वह सीधे पहाड़ को छेदकर अपने लिए इस पार से उस पार तक सुरंग बनाएगा। नदी के उस पार जाना है, तो वह ऊँचे-ऊँचे मीलों लम्बे पुल बना डालेगा, जिन्हें देखकर स्वयं विश्वकर्मा भी लज्जित हो जायँ; या नदी के नीचे सुरंग खोदकर वह अपने लिए रास्ता बनाएगा। लंदन की सड़कों पर उसने बेहद भीड़ देखी, फ़ौरन् ज़मीन के नीचे सुरंगें बनाई गईं, और उनमें विशालकाय लोहे की ट्यूबों के जाल बिछा दिये गये। रात-

प्रकृति का विजेता—मनुष्य
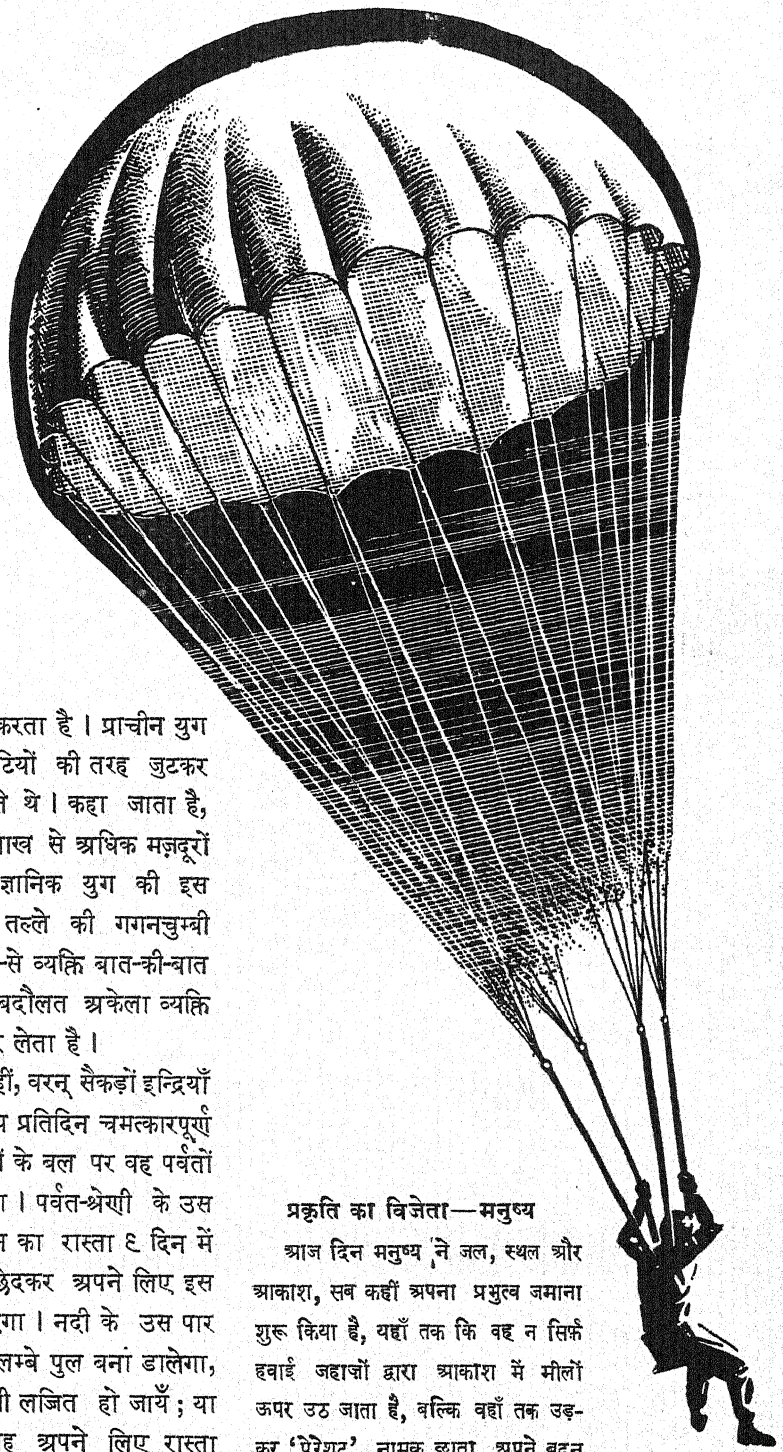
आज दिन मनुष्य ने जल, स्थल और आकाश, सब कहीं अपना प्रभुत्व जमाना शुरू किया है, यहाँ तक कि वह न सिर्फ़ हवाई जहाजों द्वारा आकाश में मीलों ऊपर उठ जाता है, बल्कि वहाँ तक उड़कर 'पैरेशूट' नामक छाता अपने बदन में बाँधकर वह शून्य आकाश में कूद पड़ता है और धीरे-धीरे धरती पर आ जाता है। ऊपर इसी का चित्र दिया गया है।
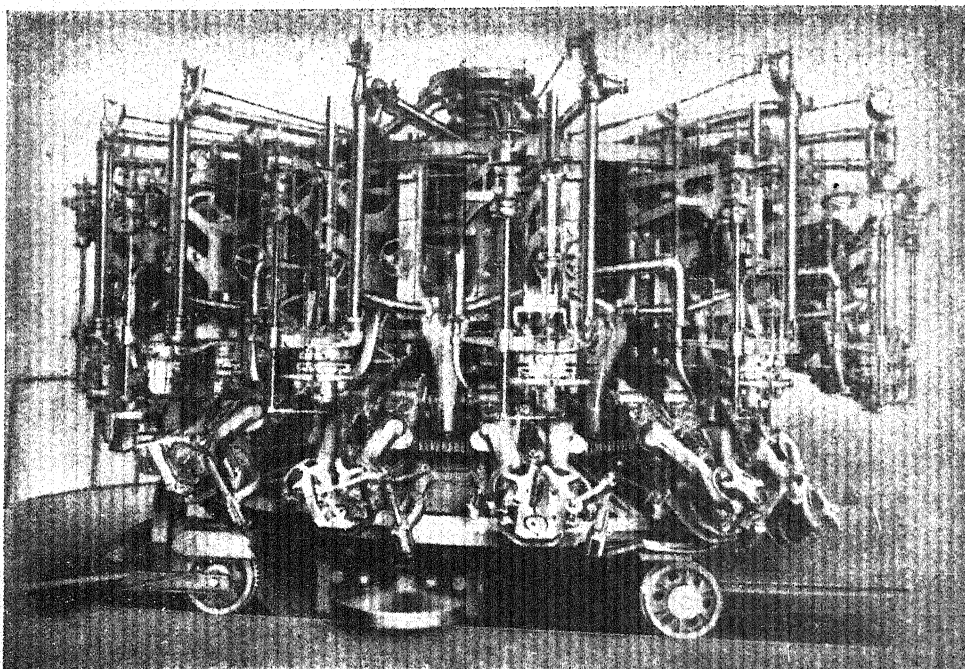
आज के मनुष्य की जादू की लकड़ी—मशीन

जिसे घुमाते ही अब उसके काम आप ही आप होने लगते हैं। ऊपर एक ऐसी ही शैतान की आँत-जैसी पेचीदा मशीन का चित्र है। इसमें १० हजार से अधिक पुर्जे हैं। यह शीशे की बोतलें बनाने का काम करती है और इतनी बुद्धिमानी, सावधानी और कोमलता के साथ इस काम को करती है कि कागज की तरह पतले शीशे में भी इससे खरोंच तक नहीं लग पाता। फिर भी इसमें इतनी शक्ति है कि ५० हाथियों को यह उनकी पूँछ पकड़कर एक साथ ही घुमा सकती है! इससे ११५ बोतलें प्रति मिनट तैयार होती हैं।

मनुष्य की नई शक्ति—विद्युत्

जिसको पाकर अब छोटे से बड़े तक सभी काम वह केवल ज़रा-सा स्विच या बटन दबाकर ही करा लेता है। बिजली आज दिन मनुष्य की सभ्यता की नींव हो रही है। प्रकाश, तार, टेलीफ़ोन, कल-कारख़ाने, रेडियो आदि सभी कुछ मनुष्य को बिजली की देन हैं।

[फ़ोटो 'फ़ोर्ड मोटर कंपनी आफ़ इण्डिया' की कृपा से प्राप्त।]
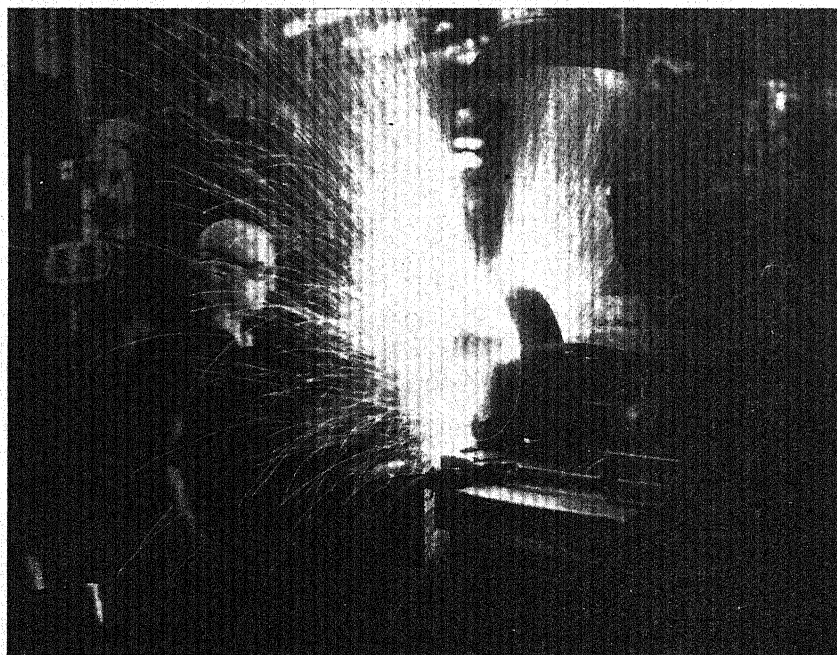
दिन अब वहाँ शहर के कोलाहल से परे रेलें दौड़ा करती हैं।

विज्ञान के महारथियों ने तो अब कृत्रिम रेशम, कृत्रिम रबड़, इत्र, सेन्ट आदि भी बनाना आरंभ कर दिया है। ये वस्तुएँ नक़ली होने पर भी असली चीज़ों से किसी भी तरह घटिया नहीं उतरतीं। नक़ली रेशम इतने बढ़िया क़िस्म का आपको मिल सकता है कि डेढ़ सेर धागे से समूची पृथ्वी को आप एक बार घेर सकते हैं।

पिछले सौ वर्षों में अनेक काम मशीनों द्वारा संपादित होने लग गये हैं। और ये मशीनें न तो कभी ग़लती करती हैं, न थकती ही हैं। कोई कह नहीं सकता कि इनकी बदौलत वैज्ञानिक निकट भविष्य में क्या न कर दिखाएगा। ५० वर्ष पूर्व जब एक्स-रे का पहली बार पता चला था, किसी के मस्तिष्क में यह ख़याल भी न आया था कि एक दिन इन किरणों का प्रयोग हमारे अस्पतालों में भी होगा। लेकिन आज छोटे-बड़े सभी अस्पतालों में एक्स-रे फ़ोटोग्राफ़ी का सामान आपको मिलेगा—फेफड़े में कोई ख़राबी तो नहीं है, या शरीर के भीतर कहीं हड्डी तो नहीं टूट गई है? इनका पता आप एक्स-रे से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ से फ़ौरन् लगा सकते हैं। चर्मरोगों की चिकित्सा में भी एक्स-रे का प्रयोग प्रचुरता से होता है। जब डायनमो के सिद्धांत पर विद्युत्धारा उत्पन्न करने की प्रणाली का सर्वप्रथम आविष्कार प्रो॰ फ़ैरेडे ने किया, तो एक सम्भ्रान्त कुल की महिला ने फ़ैरेडे से प्रश्न किया—'आख़िर तुम्हारे इस नवीन आविष्कार से समाज को क्या लाभ है?' फ़ैरेडे ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'श्रीमती जी, क्या आप बता सकती हैं कि आपकी गोद का यह बच्चा बड़ा होने पर क्या कर दिखाएगा?' आज फ़ैरेडे के उक्त आविष्कार के सौ वर्ष के भीतर ही डायनिमों द्वारा उत्पन्न की हुई बिजली सड़कों या

विश्वकर्मा को भी लज्जित करनेवाली मनुष्य की भीमकाय कृतियों का एक नमूना—सिडनी बन्दरगाह का पुल

जो दुनिया का सबसे लंबा तो नहीं, किन्तु एक महराबवाले पुलों में सबसे विशाल और भारी है। इसकी बीच की महराब १६५० फ़ीट लंबी और पानी से १७० फ़ीट ऊँची है। बड़े-बड़े जहाज़ आसानी से इसके नीचे से निकल जाते हैं। इस पुल में कुल १४ लाख मन लोहा लगा है। लंबाई में सबसे लंबा पुल सेन फ्रांसिस्को का 'गोल्डन ब्रिज' है, जो १२ मील लंबा है।

कारख़ानों में और आपके घरों में इस्तेमाल की जा रही है। बिजली की रेलगाड़ियाँ सवारी और माल ढो रही हैं। बिजली द्वारा परिचालित क्रेन अपने जबड़ों में बड़े-बड़े इंजिनों को तिनके की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर रख देते हैं। न तो कहीं धुआँ है न कोयले की राख। सूर्य को मात करनेवाली सर्चलाइट बिजली ही की बदौलत हमें प्राप्त हुई है। टेलीफ़ोन और वायरलेस भी विद्युत्शक्ति ही द्वारा संचालित होते हैं।

पेड़-पौधों की दुनिया में भी विज्ञान ने कमाल कर दिखाया है। कृषि-विज्ञान के आचार्य सर्वथा नवीन प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न कर रहे हैं। इन नये फूलों के रंग और आकार-प्रकार पहले के फूलों से कहीं बढ़-चढ़कर हैं। नये फूल-पत्तों के उत्पादन के साथ-ही-साथ वैज्ञानिक इस बात का भी प्रयत्न कर रहा है कि ठण्डे देश के पौधे गर्म देशों में और गर्म देश के पौधे ठण्डे देशों में उगाये जा सकें। सोवियट रूस इस क्षेत्र में सबसे आगे बढ़ा हुआ है। उत्तरी रूस के बर्फ़ीले प्रांतों में नये उपनिवेश बसाए जा रहे हैं, वैज्ञानिक रीति से वहाँ फल और तरकारियों की कृषि एक भारी पैमाने पर की जा रही है। कल जहाँ वीरान था, आज वहाँ नगर बस गये हैं, चारों ओर चहल-पहल है। जर्मनी में तो शाकभाजी, बिना मिट्टी और धूप के, प्रयोगशाला के भीतर ही रासायनिक द्रव्यों की सहायता से उत्पन्न की जाने लगी हैं। आश्चर्य नहीं, इस रीति से लोग फ़ैक्टरियों के भीतर ही निकट भविष्य में टोपी और छतरी की तरह शाकभाजी भी पैदा करने लगें। और तब किसी भी फल या शाकभाजी को पैदा करने के लिए विशेष ऋतु की हमें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। आधुनिक बाग़-बानी और कृषि-प्रणाली में एक ज़बर्दस्त क्रान्ति उत्पन्न हो जायगी।

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र पर भी विज्ञान की गहरी छाप लग चुकी है। 'सर्जरी' को ही लीजिए। क्लोरोफ़ार्म-जैसी औषधियों की सहायता से डाक्टर आश्चर्यजनक करतब कर दिखाते हैं। साधारण फोड़े की चीरफाड़ की बात जाने दीजिए, वह तो डाक्टरों के बाएँ हाथ का खेल है। अब तो सर्जरी का उपयोग आपके शरीर की काट-छाँट के लिए भी होने लगा है। सर्जरी की बदौलत योरप की कितनी ही कुरूप स्त्रियाँ आज सौंदर्य-प्रतियोगिताओं में भाग ले रही हैं। जिनकी नाक चिपटी थी उन्होंने शरीर के अन्य अंगों से चमड़ा कटवाकर उसे सुडौल करा लिया। किसी ने अपने अधर ठीक कराये। घंटों आपरेशन होता रहे, किंतु रोगी को कोई कष्ट नहीं। इस प्रकार शल्य-चिकित्सा-विज्ञान एक नवीन युग में पदार्पण कर रहा है—मनुष्य दूसरा सृष्टिकर्त्ता बनने जा रहा है। प्रयोगशाला में बैठा हुआ डाक्टर मानव-शरीर के किसी भी ख़राब पुर्ज़े को बदलकर उसकी जगह नया और स्वस्थ पुर्ज़ा लगा सकने का स्वप्न देख रहा है। अभी हाल में अमेरिका के एक डाक्टर ने एक मरते हुए व्यक्ति की आँख मृत्यु के कुछ मिनट पहले निकालकर एक अंधे पादरी की आँखों में लगा दी है। अंधा पादरी अब बख़ूबी देखने लग गया है। पैरिस के एक डाक्टर ने कृत्रिम हृदय बनाने का भी प्रयत्न किया है। इसकी मदद से उसने एक मुर्ग़ी के शरीर से निकाले हुए गुर्दे और जिगर को लगभग तीन सप्ताह तक जीवित बनाये रक्खा था। इस प्रकार मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का निरंतर उद्योग हो रहा है।

किंतु जितने भी आविष्कार आज आप देखते हैं उनका निर्माण वैज्ञानिक ने अचानक एक दिन में नहीं कर डाला है। वरन् प्रत्येक आविष्कार के पीछे एक लंबी और परिश्रम से भरी कहानी है। हरएक नई खोज में उच्च त्याग और लगन निहित है। एक महान् तपस्या—एक अटूट साधना की इसमें आवश्यकता होती है। इस वैज्ञा-निक सृष्टि के निर्माण का श्रेय सहस्रों छोटे-बड़े वैज्ञानिकों को है, जिनमें से प्रत्येक ने अपने हिस्से की दो-दो चार-चार ईंटें रक्खी हैं, प्रत्येक ने अपने हिस्से का त्याग किया है। किसी ने रेडियम के प्रयोग में अपना हाथ गला डाला, तो कोई सूक्ष्मदर्शक के संग उलझकर अंधा बन बैठा।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य ने आविष्कारों के पथ में एक लंबी मंज़िल पार कर ली है, और अब वह ब्रह्मा से होड़ लगाकर अपने लिए एक नवीन संसार का निर्माण करने में दत्तचित्त है। कदाचित् लाखों वर्ष तक वह अज्ञान के गहरे खड्ड में पड़ा-पड़ा प्रकृति पर क़ाबू पाने की कोशिश करता रहा, और अब इतने दिनों उपरान्त वह प्रकृति के रहस्योद्घाटन में सफल हो सका है। विज्ञानरूपी अलाउद्दीन का चिराग़ उसे मिल गया है—और इससे भरपूर फ़ायदा उठाने का वह प्रयत्न कर रहा है।

पलक मारते-मारते मनुष्य चींटी से हाथी बन गया। विज्ञान की बदौलत उसने संसार की कायापलट कर दी है। तरह-तरह के आविष्कारों द्वारा चारों और उसने चकाचौंध पैदा कर दी है। उसके हाथों में शक्ति के अक्षुण्ण भण्डार की कुंजी आ गई है।
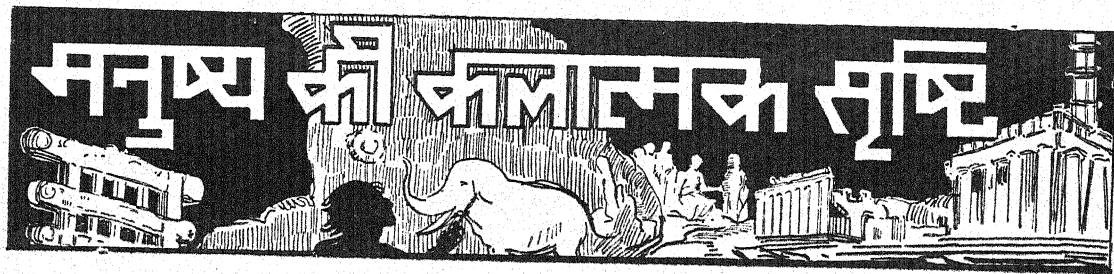
कला का आरंभ

मनुष्य की जिस नवीन सृष्टि का हमने पिछले स्तंभों में उल्लेख किया है, उसका उद्देश्य केवल उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति ही रहा है। किन्तु इसके अतिरिक्त हम मनुष्य को एक और अद्भुत सृष्टि के निर्माता के रूप में भी देखते हैं, जो उसकी आध्यात्मिक भूख का परिणाम है, जिसकी तृप्ति के लिए वह अपने इतिहास के प्रभातकाल ही से बेचैन रहा है। उसकी यह पिपासा उसके बनाये हुए चित्रों, मूर्त्तियों, कारीगरी की वस्तुओं, इमारतों, गीतों तथा नृत्य के हावभावों के रूप में प्रति युग में प्रकाशित होती रही है। इस स्तंभ में मनुष्य की जीवनी के इसी विशेष अध्याय की कहानी है।

जब हम अपने चारों ओर देखते हैं, तो हमें निःसंशय रूप से दो प्रकार की वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं—एक तो ईश्वर की बनाई हुई, अर्थात् प्राकृतिक; दूसरी मनुष्य की बनाई हुई या कृत्रिम। सूर्य, चंद्र आदि आकाश के कौतुक; ऊँचा सिर उठाये हुए विशाल पर्वतमालाएँ; तरंगाकुल महासागर; ओर-छोर-हीन मरुप्रदेश; जाति-जाति के पशु-पत्ती और मनुष्यों के विभिन्न रंग-रूप और बोलियाँ; फूलों का सौंदर्य; इठलाती और बल खाती हुई नदियों का बाँकापन—संक्षेप में, जो भी वस्तु प्रकृति में हमें दिखाई पड़ती हैं, वे सब उस ईश्वर की महिमा का गुण-गान और उसकी कारीगरी का प्रदर्शन करती हैं। इसके विपरीत, घर्राटे के शब्द के साथ मानो आकाश की छाती को चीरते हुए वायुयान, पहाड़ों को छेदकर लाँघती हुई रेल-गाड़ियाँ, महासागर की अनन्त जल-राशि पर तैरते हुए जहाज़, रेगिस्तानों को भी हरा-भरा बना देनेवाली नहरें और बाँध, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से युक्त संसार के बड़े-बड़े नगर, तथा इसी प्रकार की अन्य हज़ारों वस्तुएँ, जिनकी बदौलत मानव-जीवन को आज का रूप मिला है, मनुष्य की युग-युग-व्यापी सृजन-शक्ति के कौशल का परिचय दे रही हैं। वास्तव में, आज के हमारे नित्य उपयोग की सामान्य-सी प्रतीत होनेवाली वस्तुओं की भी खोज या आविष्कार करने तथा उन्हें आज के इस पूर्ण रूप तक पहुँचाने में मनुष्य को सदियों तक कठोर तपस्या करनी पड़ी है। उदाहरण के लिए, बर्त्तन बनाने या कातने-बुनने की कला का उद्भव इतिहास के प्रभातकाल से भी बहुत पहले युग में हो चुका था, और सच पूछिए तो हममें से कोई भी नहीं जानता कि कब और कहाँ हमारे पूर्वजों ने कुम्हार के चाक, या हाथ के करघे के प्राथमिक मोटे रूप का आविष्कार किया। इसी प्रकार, खनिज कच्ची धातुओं से शुद्ध धातु निकालने, लकड़ी से भिन्न-भिन्न वस्तुएँ बनाने, और ऐसे अन्य सभी छोटे-बड़े कारीगरी के कामों की आरंभिक प्रक्रियाओं के श्रीगणेश की कहानी, जिसके बारे में आज-कल के इस सभ्यता के युग में क्षण-भर के लिए भी कोई सोचने-विचारने का कष्ट न करेगा, प्रागैतिहासिक युग की भूली हुई शताब्दियों के धुँधले कुहरे में विलुप्त हो गई है।

ऊपर जो-जो वस्तुएँ हमने गिनाई हैं, उनसे तुम्हें ज्ञात होगा कि मानव द्वारा बनाई हुई अधिकांश वस्तुएँ उसके उपयोग की वस्तुएँ हैं, जो प्रकृतिजन्य आपदाओं से रक्षा कर पृथ्वी पर उसके जीवन को अधिक सुगम बनाती हैं। किन्तु इन उपयोग की वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य की बनाई हुई कुछ और भी वस्तुएँ हैं—जैसे सजावट की चीज़ें, चित्र और मूर्त्तियाँ आदि, जिनका उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति से कोई संबंध नहीं, फिर भी जो एक प्रकार से उसके आध्यात्मिक कल्याण के लिए उतनी ही अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं, जितना कि उसके खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान। इन्हीं वस्तुओं, अर्थात् चित्रकला, शिल्प, स्थापत्य, आदि के

क्षेत्रों में मनुष्य की रचनात्मक कृतियां—का विवेचन इस और आगे के प्रकरणों में हम करेंगे।

जिस प्रकार कि यह ठीक-ठीक कहना असम्भव है कि कब पहले-पहल मनुष्य ने कुम्हार के चाक, या हाथ के करघे का आविष्कार किया, उसी तरह किसी दूर के युग में इसकी भी ठीक-ठीक शताब्दी या तिथि निश्चित करना असम्भवप्राय है कि कब मनुष्य की ललित कलाओं का यथार्थ में आरम्भ हुआ। कोई भी निश्चित रूप से इस बात को नहीं बता सकता कि वह कौन-सी भावना थी जिसने हमारे आदिम पुरखों को उन दूर के युगों में अपने थोड़े-बहुत घरेलू औज़ारों पर नक़्क़ाशी करके उन्हें सजाने का प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया; न यही कोई बता सकता है कि पृथ्वी के किस विशेष भाग में मनुष्य-जाति की कलाओं की सर्वप्रथम किरणें फूटीं। शनैः-शनैः एक के बाद एक आनेवाली शताब्दियों और महाकल्पों के प्रवाह में मनुष्य की कलात्मक और रचनात्मक कृतियों के सबसे पूर्व के स्मारक सदा के लिए लुप्त हो गये और जो कुछ थोड़ा-बहुत बच पाया है, उसका भी बहुत-कुछ पता लगाना अभी बाक़ी है। यही कारण है कि हमारे लिए निश्चयात्मक रूप से यह निर्णय करना असम्भव-सा ही है कि मनुष्य की आदिम कलात्मक प्रक्रियाओं का ठीक रूप क्या था या किस युग में इनका सर्वप्रथम आरंभ हुआ था; यद्यपि प्रागैतिहासिक युग की कला के जो टूटे-फूटे स्मारक हमें प्राप्त हुए हैं, उनसे स्पष्टतया हम थोड़ा-बहुत निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं और उनके आधार पर बहुत-कुछ कल्पना भी कर सकते हैं।
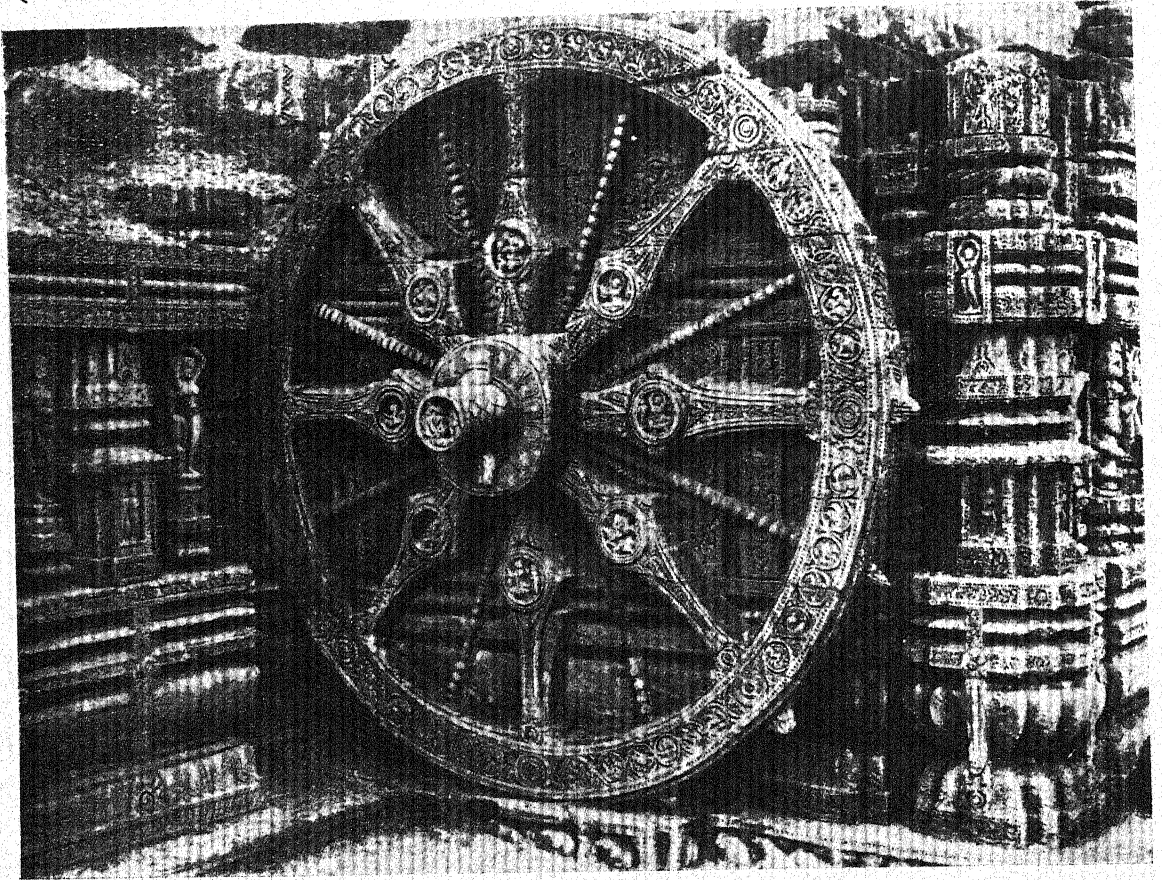
मनुष्य की सौन्दर्योपासना और कला की भूख का एक उत्कृष्ट उदाहरण

उड़ीसा के कोनार्क नामक स्थान में कई शताब्दियों पूर्व के पाषाण में बने हुए सूर्य के रथ का एक चक्र, जो इस बात को पुकार-पुकारकर कह रहा है कि चिरकाल ही से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ अपनी आध्यात्मिक भूख मिटाने के लिए भी मनुष्य सदैव प्रयत्नशील रहा है—और इसका एक मुख्य क्षेत्र कला का क्षेत्र है।

अल्टामीरा की गुफाओं के कुछ चित्र

कला के लिए मनुष्य की स्वाभाविक चिर पिपासा के बारे में धुरंधर विचारकों और दार्शनिकों द्वारा सदियों से बहुत-कुछ कहा जा चुका है। इस विषय की बहुत-सी बातों पर, चाहे वे कितनी ही उपयोगी या मनोरंजक क्यों न हों, यहाँ इस समय कुछ कहना व्यर्थ है। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब से मनुष्य का इस पृथ्वी पर आविर्भाव हुआ, तब से ही उसकी आत्मा में मज़बूती से जड़ जमाये हुए सौन्दर्य-दर्शन की एक तीव्र भावना सदैव विद्यमान रही है, जिसे वह स्वनिर्मित ध्वनि, आकार और रंग के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करने का सतत प्रयत्न करता रहा है। यह सौन्दर्य-तत्त्व क्या है, इसकी कोई भी ठीक-ठीक शब्दों में परिभाषा नहीं दे सकता, यद्यपि हममें से अधिकांश किसी भी सुन्दर वस्तु को देखने पर अपनी आन्तरिक स्वाभाविक प्रेरणा ही से हृदय में उसका बोध या अनुभूति कर लेते हैं। जिस प्रकार कि हम अपनी बाह्य इंद्रियों द्वारा देखते, सुनते, सूँघते, स्पर्श का अनुभव करते, और स्वाद ले सकते हैं, उसी तरह अपनी आत्मा की स्वाभाविक बोध-वृत्ति द्वारा हम किसी सुरीले स्वर, सलोनी रूप-रेखा या रंगों के सुरम्य मेल की भी अनुभूति कर सकते हैं।

जो सोलह से बीस हजार वर्ष तक पुराने माने जाते हैं। इनको मनुष्य ने तब बनाया था, जब कि वह प्रागैतिहासिक युग के धुँधले क्षितिज से प्रकट हो रहा था। किन्तु इस समय तक तो उसकी कला का काफी विकास हो चुका था। वास्तव में, मनुष्य में कला का आविर्भाव इससे भी कई हजार या संभवतः लाखों वर्ष पूर्व हुआ होगा। (दाहिने ओर के चित्र में) अल्टामीरा की गुफाओं में दीवारों पर तत्कालीन जानवरों के चित्र बनाते हुए आज से बीस हजार वर्ष पूर्व के मनुष्य का एक काल्पनिक चित्र जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ तक इतिहास की पहुँच है उस युग में भी मनुष्य के मन में कला द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की भावना कितनी तीव्र थी। उन दिनों पृथ्वी के अधिकांश भागों में बर्फ़-ही-बर्फ़ का साम्राज्य था; अतएव मनुष्य प्रायः गुफाओं ही में रहकर जीवन बिताते थे।

आदिम मनुष्य के मन में भी सौंदर्य्य की भावना के ये झिलमिलाते अस्थिर स्वप्न अवश्य ही उठते रहे होंगे, और अपनी अपरिपक्व अवस्था के अंध, अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण निराले ढंग से सौंदर्य्य की इन अस्पष्ट अस्थिर मानसिक मूर्तियों को स्पष्ट और स्थिर रूप देने की आकुल प्रेरणा भी उसमें अवश्य ही जाग्रत हुई होगी—ठीक उसी तरह जिस तरह कि आज हम एक अस्थिर किन्तु मनोरंजक दृश्य विशेष का चित्र फ़ोटो के कैमरे द्वारा उतार लेने का प्रयत्न करते हैं।

सौंदर्य्य की एक अस्पष्ट-सी चाह की तृप्ति तथा अपने आपको अभिव्यक्त करने की आकांक्षा की पूर्त्ति के लिए मनुष्य के आदिम संघर्ष और आज के उसके कला के उच्च जीवनादर्श के बीच विगत युगों और महाकल्पों की एक लम्बी-चौड़ी खाईं है, जिसको उसके युग-युगव्यापी सहस्रों प्रकार के प्रयोग और कठोर परिश्रम व तपस्या सेतु की तरह जोड़ रहे हैं।

आरम्भ में जो एक अस्पष्ट आन्तरिक पिपासा-मात्र थी, वही क्रमशः ध्वनि, आकार और वर्ण के लय, संतुलन और सामंजस्य के माध्यम द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने की एक अतृप्त आकांक्षा या कभी न बुझनेवाली पिपासा के रूप में परिणत हो गई।

भारत की प्राचीन चित्रकला का एक उत्कृष्ट नमूना

अजंता की गुफा का एक चित्र जो ढाई हज़ार वर्ष पुराना माना जाता है।

मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति का सबसे आदिम रूप वस्तु के बाह्य रूप के आकार का प्रदर्शन है। प्रकृतिजन्य आपदाओं से बचने के लिए उसने अपने रहने को मकान बनाना सीखा, या अपने उपयोग के लिए कपड़ा बुनने अथवा अक्षरों का आविष्कार किया, या इसी तरह की नित्य उपयोग की हज़ारों दूसरी चीज़ों को बनाने की योग्यता प्राप्त की, इसके बहुत पहले ही वह रेखाओं से चित्र बनाने लग गया था। इस बात की कल्पना करना कठिन है कि सबसे पहले उसने किस वस्तु का चित्र बनाने का प्रयत्न किया होगा, लेकिन इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वह कोई ऐसी ही वस्तु होगी, जिससे उसको बहुत प्रेम रहा होगा। निःसंदेह इस बात को समझने में उसे सैकड़ों वर्ष लग गये होंगे कि तालाबों या पोखरों के शांत स्थिर जल पर तथा प्राकृतिक चट्टानों आदि की चिकनी सतहों पर दिखाई पड़नेवाले स्वयं उसके और दूसरों के प्रतिबिंब न तो वानरों-जैसे उसके हाव-भावों की हँसी उड़ाते हुए भूत-प्रेत हैं, न स्वयं उसी की मानसिक भ्रांति के फलस्वरूप उत्पन्न छलनाएँ ही; साथ ही यह कि ये अस्थिर प्रतिबिंबित चित्र जल के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु पर उनकी छाया की आकृति के आस-पास रेखा खींचकर चिरस्थायी बनाये जा सकते हैं। उसके अपरिपक्व मस्तिष्क में धीरे-धीरे यह बात जमी होगी कि स्वयं अपने तथा अपने अन्य प्रिय व्यक्तियों के चित्र बनाने का सबसे सरल ढंग यही है कि पहले सूर्य की रोशनी से पड़नेवाली अपनी या किसी की छाया की बाहरी रूप-रेखा अंकित कर दी जाय, और फिर उन रेखाओं से घिरे हुए भाग को किसी ठोस रूप देनेवाले पदार्थ से भर दिया जाय, जिससे कि एक छायाचित्र-सा बन जाय और असली वस्तु का रूप-रंग स्थाई रूप से अंकित हो जाय।

यही मेरे विचार में चित्रकला के आरम्भ का सर्वप्रथम रूप रहा होगा और इसकी तुलना में "बारहसिंगा युग" के अथवा अल्टामीरा की गुफ़ाओं या और स्थानों में पाये गये प्राचीन मनुष्यों के चित्रकला के नमूने निस्संदेह बहुत अधिक बाद के युग के हैं।
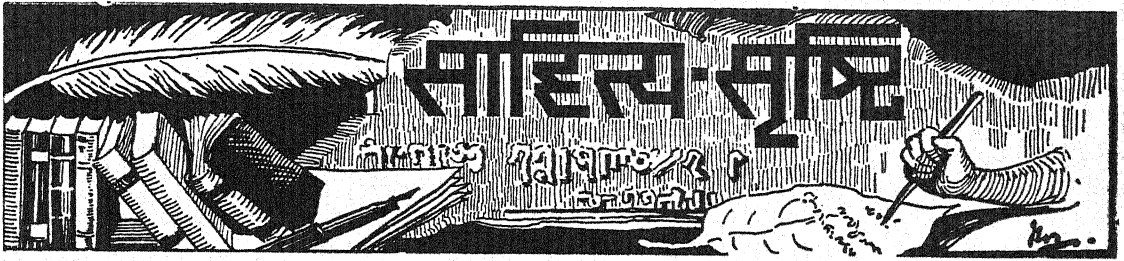
साहित्य क्या और कैसे ?

मनुष्य की सभ्यता और उन्नति का चरम विकास और उसका सबसे अद्‌भुत् आविष्कार न तो रेल और हवाई जहाज़ ही हैं, न पेचीदा यंत्रों से भरे हुए उसके वे कल-कारख़ाने ही जिनका हाल आप ऊपर वर्णित स्तंभों में पढ़ चुके हैं। उसकी सबसे अद्‌भुत् सृष्टि वास्तव में उसकी साहित्य-सृष्टि है। वह कौन-सा साधन है जिसकी बदौलत आपको आज से हज़ारों वर्ष पूर्व या हज़ारों मील दूर की बातों या घटनाओं का हाल आज घर बैठे मालूम हो जाता है? इसी समय आप इस पुस्तक द्वारा मानव-जाति के अब तक के संचित ज्ञान की जो झलक पा रहे हैं, वह मनुष्य के भाषा और अक्षरों के अद्‌भुत् आविष्कार ही का फल है। ज्यों-ज्यों हम अपनी पुस्तकों के पन्ने उलटते हैं, वर्त्तमान और भूतकाल के एक-से-एक बढ़कर गंभीर विचारकों को मूर्त्तिमान होकर अपने साथ कल्पना के मधुर लोक की सैर कराने के लिए हम तत्पर पाते हैं। यह विभाग इन्हीं सब साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का चित्रपट है।

मैं अपने कमरे की खिड़की से एक दृश्य देख रहा हूँ; अमीरों के प्रासाद और अट्टालिकाएँ, ग़रीबों की झोपड़ियाँ, मोटर, ताँगे, इक्के, विविध रंग की रेशमी साड़ियाँ पहने हुए महिलाएँ, चीथड़े लपेटे भीख माँगते हुए भिक्षुक, इत्यादि।

इस दृश्य को देखकर मेरे मन में भाव जाग्रत हो रहे हैं, एक प्रतिक्रिया हो रही है। मैं विचार कर रहा हूँ अमीरों-ग़रीबों के आर्थिक असाम्य पर। ग़रीबों की दयनीय दशा देख मेरी आँखों में आँसू छलछला आये हैं। अमीरों का ऐश्वर्य देख मैं क्रोध से दाँत पीस रहा हूँ। मैं इस जीवन के वैषम्य का दोषी भाग्य को न ठहराकर मानव की स्वार्थान्धता को ठहरा रहा हूँ।

मैं इस जगत् को दो प्रकार से देख रहा हूँ। एक प्रकार है, इंद्रियों की अनुभूति द्वारा; दूसरा, विचार द्वारा। यह दोनों ही प्रकार मुझे वस्तुस्थिति समझाने में सहायक हैं। अंतर केवल इतना ही है कि प्रथम प्रकार से मैं बाह्य पदार्थ-संसार को देख भर लेता हूँ, और दूसरे प्रकार से मैं बाह्य पदार्थ-संसार पर मस्तिष्क का प्रयोग करके समाज के हिताहित को देखता—समझता हूँ।

मनन करने पर हमको यह समझने में देर न लगेगी कि दूसरा प्रकार ही अधिक विस्तृत तथा उपादेय है। इंद्रियों द्वारा तो मुझे केवल अपने कमरे या कमरे से बाहर के सीमित जगत् का ही ज्ञान उपलब्ध होता है, पर विचार द्वारा तो मैं विश्व भर का भ्रमण एवं दर्शन कर आ सकता हूँ।

दूसरे प्रकार द्वारा ही साहित्य का बीजारोपण हुआ है। मानव को जब अपने विचारों, रीति-रस्मों और अनुभवों को एक स्वरूप देने एवं सुरक्षित रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई, तो वह ईश्वर की सृष्टि से भी अधिक सुन्दर सृष्टि-रचना की खोज में अग्रसर हुआ। यही खोज कला एवं साहित्य की जननी है।

जीवन के प्रभात में मानव कितना संबलहीन होगा, इसका अनुभव हम अपनी सभ्यता के मध्याह्नकालीन प्रकाश में बहुत-कुछ कर सकते हैं। जब अकाल पड़ता है और मानव भूख से तड़पता फिरता है, तब हमारी आँखों के सामने एक दारुण दृश्य उपस्थित हो जाता है। उस आदि काल में, जब पहले-पहल मानव-हृदय में अपने साथी को कष्ट से चीख़ते हुए सुन और देखकर करुणा का संचार हुआ होगा! तब हृदय सहानुभूति के दो शब्द कहने को कैसा तड़पा होगा, जी ने कितने अभाव का अनुभव किया होगा!

मेरे पड़ोस में एक गूँगा रहता है। वह बहरा भी है।

जब उसे भूख लगती है, थाली लाकर रख देता है। प्यास लगती है तो गिलास हाथ में ले लेता है। जब थाली नहीं होती, मुँह में झूठमूठ को कौर बनाकर रखता है। गिलास नहीं मिलता तो ओक करके बैठ जाता है। जीवन के उषाकाल में भाषा के अभाव में मानव का व्यवहार इस गूँगे के व्यवहार से मिलता-जुलता ही रहा होगा, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। इंगितों का प्राधान्य रहा होगा। आवश्यकताओं के आधिक्य में पारस्परिक विचार-विनिमय के समय प्रकृति के विविध दृश्यों एवं पदार्थों से काम निकाला गया होगा। उनके अभाव में उनके चित्र बनाये गये होंगे। यही प्रथम चित्र बदलते-बदलते सहस्रों वर्ष बाद आधुनिक अक्षरों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हैं।

प्रत्येक अक्षर जो हम पढ़ते-लिखते हैं, कल्पना की नींव पर अवस्थित है। कहारिन जैसे बर्त्तनों को जूने-मिट्टी से माँजकर स्वच्छ कर देती है, वैसे ही मानव ने भी कल्पना के जूने-मिट्टी से भोंड़े-बदसूरत चित्रों एवं चिह्नों को माँज-माँजकर आधुनिक रूप दिया है। प्रत्येक अक्षर एक अमिट स्मृति है, मानव के कृत्यों को अमर बनाने का साधन है—मानव को मानवता के सूत्र में बाँधने का, जीवन की विभिन्नता में एकता संपादन करने का एक अमूल्य उपाय है। यह वह अमर ज्योति है, जिसके अभाव में मानव मानवता की परिधि से बाहर रह जाता और सदैव अज्ञान के लोक में कालयापन करता रहता।

ज्ञान और विज्ञान की विविध स्रोतस्विनियों के वर्त्तमान स्वरूप का श्रेय अक्षर ही को है। अक्षर 'अक्षर' है। यदि ऐसा न होता तो वेद और उपनिषद्, क़ुरान और इंजील,

आदि काव्य का जन्म

संसार के साहित्य के इतिहास में साहित्य के उद्गम पर प्रकाश डालनेवाला इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण हमें शायद ही और कहीं मिलेगा, जैसा कि हमारे साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि की प्रथम काव्यधारा के प्रस्फुटन सम्बन्धी उपाख्यान में मिलता है। कहते हैं, व्याध के बाण से हत क्रौंच (कुररी) पक्षी की तड़पन से आदि कवि का हृदय करुणा से आर्द्र हो उठा था और उसी समय उनके मुख से आप ही आप अनुष्टुप छन्द में कविता की धारा फूट पड़ी थी। ऋषि ने इसी छन्द में बाद में अपने महाकाव्य 'रामायण' की पूरी रचना कर डाली।

रामायण और महाभारत, होमर की वीर-गाथाएँ, सुक़रात और प्लैटो के अमर वचन, कबीर और सूर के अमर पद आज कभी के मिट गये होते और इन सबके अभाव में आधुनिक साहित्य का, हमारी सभ्यता का, निश्चय ही दूसरा स्वरूप हुआ होता।

अक्षर को 'अक्षर' या अक्षुण्ण बनाये रखने का श्रेय मुद्रणालय को है। मुद्रणालय के आविष्कार के पहले पुस्तकों का उत्पादन-क्षेत्र बहुत ही संकुचित तथा सीमित था। कहीं वर्षों में एक पुस्तक लिखी जाती थी। पाठकों की संख्या भी सीमित ही थी। ज्यों-ज्यों ज्ञानेषणा बढ़ती गई, उत्पादन-क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। पर उत्पादन-कार्य में वास्तविक प्रेरणा उन बालकों द्वारा मिली, जो खेल के लिए उद्यान में छाल पर अक्षर काटकर छाप रहे थे। हमारा आधुनिक मुद्रणालय उसी खेल का मार्जित स्वरूप है।

साक्षरता एवं सभ्यता के प्रसार में मुद्रणालय का प्रमुख भाग है। यदि कहा जाय कि हमारी सभ्यता की प्रगति अधिक-से-अधिक पुस्तकों एवं समाचारपत्रों के उत्पादन पर अवलंबित रही है, तो अत्युक्ति न होगी। सफल सामाजिक जीवन के लिए साक्षरता अनिवार्य है। जिस प्रकार भोजन और आच्छादन हमारे जीवन के लिए परमावश्यक हैं, उसी प्रकार साक्षर होना है। साक्षरता के अभाव में मानव कंदरा-निवासी पूर्वजों के ही युग में श्वासें भरता दृष्टिगोचर होता है। प्रातःकाल बिस्तरे पर से उठते ही सर्वप्रथम समाचारपत्र चाहिए। उसका अभाव आज उतना ही खलता है, जितना भोजन का। मानव का हित बहुत अंशों में साक्षरता पर निर्भर है। साक्षरता की उन्नति पर ही साहित्य की उन्नति अवलंबित है। ज्यों-ज्यों मानव को अपने हित का ज्ञान बढ़ता जायगा, उसी अनुपात से सुन्दर साहित्य की रचना होगी। साहित्य शब्द तभी सार्थक होगा। यह समझ लेना आवश्यक है कि साहित्य शब्द उन्हीं ग्रन्थों पर लागू होता है, जिनमें सार्वजनीन हित-संबंधी विचार सुरक्षित हैं। साहित्य में प्राकृतिक दृश्यों, नगरों, वनस्पतियों, महलों, झोपड़ियों, खेतों, वृक्षों, नदियों, पुलों इत्यादि का वर्णन केवल वर्णन के लिए नहीं होता; वरन् इस दृष्टि से कि इन सबकी मानव के लिए क्या उपादेयता है, इनसे मानव का क्या बनता-बिगड़ता है। जहाँ तक इनका संबंध मानव से है, वहीं तक इनका साहित्य में स्थान है। साहित्य के लिए मानव मुख्य है, इसीलिए साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। साहित्य के अंतर्गत मानव-जीवन से संबंध रखनेवाली समस्त प्रकट एवं गुप्त बातें और प्रकृति की समस्त ज्ञान-क्रियाएँ हैं। जो कुछ मानव ने किया, कहा और विचारा है, उस सबका समावेश साहित्य में है। इसी कारण मानव-जीवन पर साहित्य का पूर्ण प्रभाव रहा है। साहित्य को ही हमारी सभ्यता का सर्वाधिक श्रेय प्राप्त है।

जो संबंध विश्वास और प्रेम का है, वही साहित्य और सभ्यता का है। यह संबंध थोड़ा विचारणीय है। आप और हम वर्तमान में रहते हैं, पर निरे वर्तमान के लिए नहीं, भविष्य के लिए भी। बर्बर और सभ्य में यही तो अंतर है। बर्बर वर्तमान के लिए जीवित है; सभ्य वर्तमान के लिए और भविष्य के लिए भी। हमारी सभ्यता का आधुनिक स्वरूप मेरे इस कथन को प्रमाणित करता है। जीवन एक विकास है। मानव का वर्तमान स्वरूप विकास का प्रतिफल है। हम एकदम वृद्ध नहीं हो जाते—शिशु, बालक, युवा, प्रौढ़—इनके पश्चात् कहीं वृद्ध होने की नौबत आती
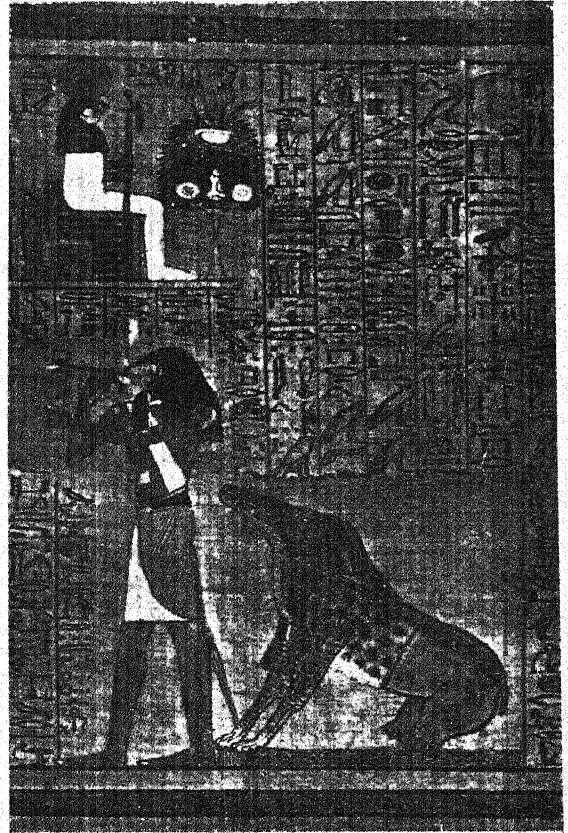
हज़ारों वर्ष पूर्व के अक्षर

यह कई हजार वर्ष पूर्व के मिस्र के सम्राटों के समाधि-स्तूप से प्राप्त लेखों के एक अंश का चित्र है। इनमें से अधिकांश अक्षर वस्तुओं के चित्र के रूप में होते थे। इन्हीं से आगे चलकर आधुनिक ग्रीक आदि की वर्णमालाओं का विकास हुआ।

है। यही दशा सभ्यता की है। ज्यों-ज्यों विचारशीलता बढ़ती गई, स्वार्थांधता की अपेक्षा निःस्वार्थ-भावना मान्य समझी जाने लगी। साथ-ही-साथ साहित्य का दृष्टिकोण भी बदलता गया और सभ्यता विकसित होती गई।

साहित्य की तुलना सरिता से की गई है। सरिता सदैव प्रवाहित रहती है। साहित्य की भी यही दशा है। कारण मानवता इसके सतत प्रवाहित रहने में ही है। जीवन परिवर्तनशील है। जिस जगत् में हम रह रहे हैं, उसका अर्थ ही है चलते रहना। साहित्य यदि सरिता न होकर एक तलैया अथवा पुष्करिणी जैसा होता, तो मनुष्य बर्बर ही रहता और जिसको हम संस्कृति अथवा सभ्यता कहते हैं, उसका अस्तित्व ही न होता।

साहित्य द्वारा ही हम ऋषियों की अमृत वाणी, जो वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, दर्शनों और पुराणों में सुरक्षित है, सुन सकते हैं—वेदव्यास, वाल्मीकि, तुलसी, सूर, जायसी, महात्मा बुद्ध, मीरा बाई, प्लैटो, सुक़रात, कबीर, शेक्स-पीअर, गेटे, दाँते, ह्यूगो, वाल्ट विट्मैन, कीट्स, शैली इत्यादि महान् कवियों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, औपन्यासिकों, आदि से वार्तालाप कर सुख पा सकते हैं। साहित्य का महत्व यह है कि वह महान्-से-महान् और छोटे-से-छोटे व्यक्तित्व को हमारे निकटतम कर देता है। साहित्य द्वारा हम बाह्य जगत् को भली प्रकार समझने में समर्थ होते हैं। जितना भी हमारा निजी अथवा व्यक्तिगत दृष्टिकोण मार्जित होगा, उतना ही हम मानवीय एवं प्राकृतिक जीवन को समझने में सफल हो सकेंगे।

संक्षेप में साहित्य मानव-जाति का एक बृहत् मस्तिष्क है। जिस भाँति व्यक्तिगत रूप से हम निज के अनुभव का लेखा अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रखते हैं और इस पूर्वा-नुभव के द्वारा नवीन ज्ञान और अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, उसी भाँति समष्टि रूप में मानव-जाति का अब तक का अर्जित ज्ञान एवं अनुभव साहित्य में सुरक्षित है। मानव अपनी वर्तमान परिस्थिति को समझने के लिए इसी पूर्वार्जित ज्ञान पर पूर्णतया निर्भर है। निरी इंद्रियों द्वारा अर्जित अनुभव मस्तिष्क के सहयोग के अभाव में निरर्थक हो जाते हैं।
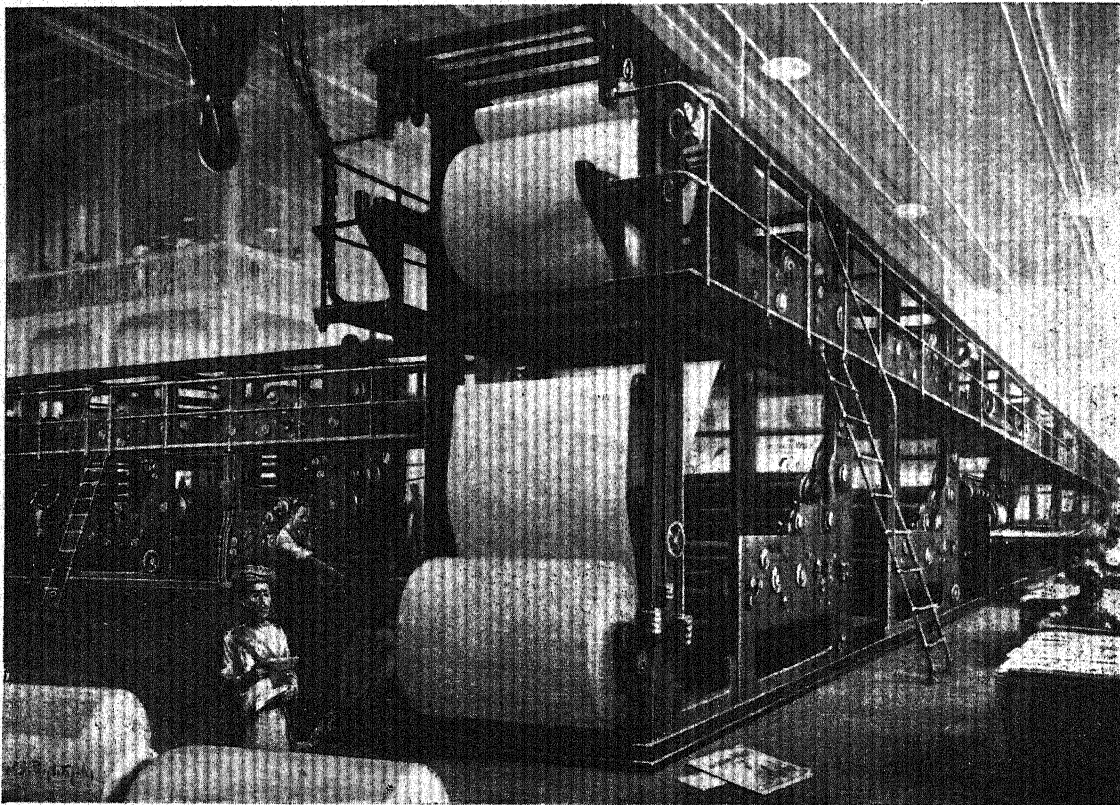
मुद्रण-यन्त्र या छापे की कल

जिसने 'साहित्य' का संदेश पृथ्वी के इस ओर से उस छोर तक पहुँचा दिया है। [फ़ोटो 'टाइम्स आफ़ इण्डिया प्रेस' की कृपा से प्राप्त]

पृथ्वी के देश और उनके निवासी

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में बिखरी हुई भिन्न-भिन्न विशेषताओं से युक्त मनुष्य की जातियों और उनकी निवासभूमि का दिग्दर्शन।

पृथ्वी पर अपना एकच्छत्र शासन जमाये हुए मनुष्य और उसकी आश्चर्य्यजनक, उपयोगी तथा कलात्मक कृतियों का परिचय आपको पिछले स्तंभों में मिल ही चुका है। अब यह देखना है कि साहित्य, कला आदि के क्षेत्रों में पुरातन काल से अब तक इतनी आश्चर्य्यजनक उन्नति करनेवाली तथा अपने सतत् परिश्रम और उद्योग से ज्ञान का भण्डार भरनेवाली मानव-जाति किन-किन देशों में किस-किस रूप में निवास करती है। पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग जल और एक-चौथाई भाग स्थल है। संसार की आबादी लगभग एक अरब और बीस करोड़ है। इस आबादी का आधे से ज़्यादा हिस्सा एशिया के भिन्न-भिन्न देशों में बिखरा पड़ा है और शेष भाग योरप और अमेरिका में। जैसे कि पृथ्वी की सतह पर अनगिनत जातियों के पेड़-पौधे, जीव-जन्तु पाये जाते हैं—वैसे ही पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों में मनुष्य की भी भिन्न-भिन्न जातियाँ पाई जाती हैं। भारत के बम्बई या कलकत्ता-जैसे बड़े नगरों में एक ही साथ चीनी, हब्शी, काबुली, तुर्क, ईरानी, अमेरिकन, जापानी, आदि भिन्न-भिन्न देशों के लोग देखने में आते हैं। चीनी काग़ज, मिट्टी आदि के रंग-बिरंगे खिलौने बेचते हुए, अफ़ग़ान "हींग लो हींग" चिल्लाते हुए या किसी ग़रीब हिन्दुस्तानी से रुपयों का तक़ाज़ा करते हुए दिखाई देते हैं। एक ही देश के भिन्न-भिन्न प्रान्त में भिन्न-भिन्न रहन-सहन, वेश-भूषा और भाषावाले लोग पाये जाते हैं। भारतवर्ष को ही लीजिए। बंगाली महाशय धोती और कुर्ता पहनते हैं, सिर पर टोपी नदारद! चपकन और चूड़ीदार पायजामा पहने, दुपल्ली टोपी लगाये युक्त प्रान्त के लखनौआ भाइयों को भी देखिये। इसी तरह गुजरात, महाराष्ट्र, सिन्ध, पंजाब, काश्मीर आदि में भी विभिन्न भाषा-भाषी और भिन्न - भिन्न
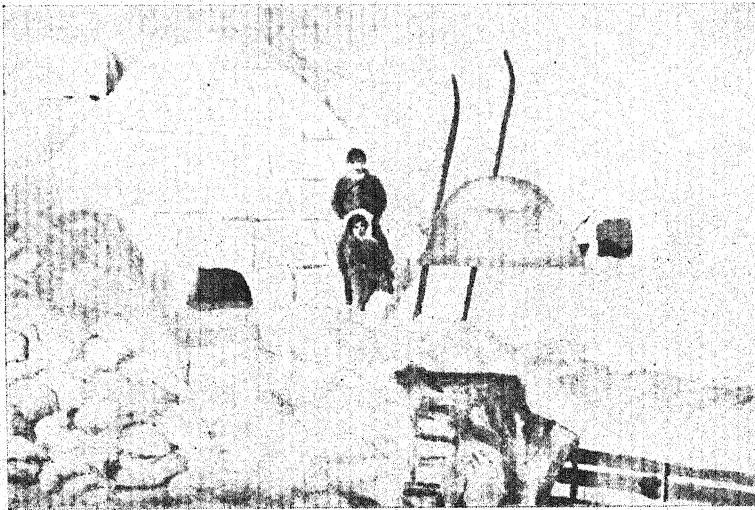
उत्तरी ध्रुव के बरफ़ीले प्रदेशों में रहनेवाले 'एस्किमो' जो बर्फ़ की बड़ी-बड़ी शिलाओं के घर बनाकर उनमें रहते हैं।

संसार में बसनेवाली विभिन्न रंग-रूप की जातियाँ

(बाईं से दाहिनी ओर) बरफ़ीले ध्रुव प्रदेशों के निवासी एस्किमो, अमेरिका के लाल चमड़ीवाले मनुष्य, पीली चमड़ीवाले चीनी और जापानी, मोटे ओठ और काली चमड़ीवाले हबशी, रेगिस्तानों के निवासी खानाबदोश अरब, अधिकतर गाँवों में बसनेवाले और खेती पर बसर करनेवाले भारतीय, तथा योरप-अमेरिका में बसनेवाले गोरी जाति के लोग ।

वेश-भूषावाले लोग रहते हैं। एक ही देश में कितनी जातियाँ, कितनी भाषाएँ, कितनी विभिन्न रहन-सहन की रीतियाँ, कितने भिन्न धार्मिक विश्वास मिलते हैं। इससे यह मालूम हो सकता है कि संसार के अन्य देशों में भी कितनी भिन्न प्रकार की संस्कृति, वेश-भूषा, भाषा और चाल-ढाल वाले जन-समुदाय होंगे। इन सब विभिन्नताओं का एक प्रमुख कारण प्रत्येक देश की भौगोलिक स्थिति भी है। प्रत्येक देश का वातावरण मनुष्य के रंग-रूप, रहन-सहन, तथा सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक विकासों पर बहुत प्रभाव डालता है। अफ़्रीका के हब्शी काले-काले और मोटे-मोटे होठवाले क्यों ? योरप-निवासी गोरे रंग और नीली-नीली आँखवाले क्यों ? चीनी और जापानी पीले रंग और छोटी-छोटी आँखवाले क्यों ? यह सब अलग-अलग देशों के वातावरण का ही प्रभाव है। संसार के विशाल चित्रपट पर मानव-जाति की हज़ारों तरह की जुदा-जुदा चलती-फिरती तस्वीरें नज़र आती हैं। यदि संसार को एक बड़ा भारी पिंजड़ा मान लें तो विभिन्न जन-समुदाय रङ्ग-विरङ्गे पक्षियों-से मालूम होते हैं। विद्वानों का यह मत है कि सबसे पहले मनुष्य पश्चिमी एशिया के दक्षिण में रहते थे, जहाँ कि हरे-भरे मैदान थे। धीरे-धीरे वे लोग भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर बढ़ते गये। एक समुदाय सुदूर दक्षिण अफ़्रीका की ओर गया और तेज़ गर्मी के कारण उक्त समुदाय के लोग काले पड़ते गए। इसी तरह दूसरा समुदाय चीन, जापान और पैसिफ़िक के द्वीपों में जा बसा। इस समुदाय के लोग पीले रङ्गवाले होते हैं। योरप की ओर जो लोग गये वे शीत-प्रधान वातावरण के कारण गौर वर्ण के हो गये। इन मनुष्य-समुदायों का भ्रमण जारी रहा और

भिन्न-भिन्न देशों के वातावरण के अनुसार उनकी आकृतियों और रहन-सहन आदि में परिवर्तन होते गये। जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि का प्रकृति के सम्पर्क से विकास होता गया और जैसे-जैसे उसने प्रकृति की छिपी हुई शक्तियों तथा धरातल पर बिखरी हुई वस्तुओं के उपयोगों का ज्ञान प्राप्त किया, वैसे-वैसे वह उत्तरोत्तर सभ्यता की सीढ़ियों पर चढ़ता गया। पशु-पालन, खेती-बारी, परिवार, छोटे-छोटे वर्ग-समुदाय, समाज, राष्ट्र आदि सब क्रमशः उसके विकास के ही रूप हैं। आज भी यदि एक ओर अफ़्रीका की जङ्गली जातियाँ छोटे-छोटे झोपड़ों में निवास करती हैं तो दूसरी ओर अमेरिका की साठ-साठ, अस्सी-अस्सी मंज़िलोंवाली अट्टालिकाओं में गौर वर्ण की जाति रह रही है। कहीं जनता सामाजिक और राजनीतिक नियमों से बद्ध है तो कहीं बिल्कुल मुक्त।

कितना आश्चर्यजनक है यह संसार! दुनिया के नक़्शे पर कितनी रेखाएँ खिंचीं और मिटीं—कितनी संस्कृतियाँ निर्मित हुईं और नष्ट हो गईं—कितनी सभ्यताएँ और साम्राज्य क़ायम हुए और आख़िर इस सृष्टि के विराट रेतीले मैदान में अपने पद-चिह्नों को छोड़कर सब विलीन हो गये! और आज की दुनिया के नक़्शे पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं ने दुनिया को भारत, चीन, तिब्बत, बर्मा, लङ्का, इंगलैण्ड, फ़ांस, जर्मनी, इटली, अरब, स्विट्ज़रलैण्ड, हालैण्ड, हंगरी, ऑस्ट्रिया, ऑस्ट्रेलिया, नॉरवे, स्वीडन, अमेरिका आदि-आदि देशों में विभाजित कर रक्खा है! आइये, हम लोग दुनिया के इन्हीं में से कुछ देशों पर एक विहंगम दृष्टि डाल लें।

इस पृथ्वी का कुछ भाग शीत-प्रधान है तो कुछ गरम। कहीं सूर्य्य-देवता नियमित रूप से जागते और सोते हैं तो कहीं छः-छः माह तक सोते रहते हैं। कहीं-कहीं बारहों महीने बर्फ़ जमी रहती है—कहीं ज्वालामुखी पहाड़ धुआँधार लावा उगलते रहते हैं। ग्रीनलैण्ड के पास, जो कि ध्रुव उत्तर में है और जहाँ सदैव बर्फ़ जमी रहती है, "एस्किमो" जाति के लोग रहते हैं। इन लोगों को न तो लकड़ी-कोयला मिलता है, जिससे कि ये लोग आग जलाकर अपने को गरम रख सकें और न इनको अन्न पैदा करने की ही सुविधा है।

ये लोग सील नामक जन्तु के चमड़े तथा लकड़ी, या ह्वेल की हड्डियों से छोटी-छोटी नौकाएँ बनाते हैं और मछली आदि का शिकार करते हैं। गर्मी के मौसम में यहाँ सूर्य्य कई हफ़्तों तक नहीं डूबता। जाड़ों में ये लोग जमे हुए बर्फ़ के बड़े-बड़े टुकड़ों से छोटे-छोटे स्तूप जैसे घर बनाते हैं तथा ह्वेल की चर्बी को विचित्र क़िस्म के दीयों में जलाते हैं, जिससे कि रोशनी रहती है। ये लोग बड़े पेटू होते हैं। जब इनको बहुत-सा मांस मिल जाता है, तो इतना खा लेते हैं जितना कि एक अंग्रेज़ सात दिन में खाता है।

उत्तरी अमेरिका में बसनेवाली लाल चमड़ीवाली जाति भी विचित्र है। अब यह जाति बहुत-कुछ सभ्य हो चली है। जब तक यूरोपियन यहाँ नहीं आये थे, तब तक ये लोग आदिम अवस्था में ही थे। तीर-कमान आदि ही इनके हथियार थे। भैंसे के चमड़े के बने हुए तम्बुओं में ये लोग रहते थे और इधर-उधर घूमा करते थे। ये लोग बड़े लड़ाके होते थे और जब अपने से विरुद्ध गिरोह पर चढ़ाई करना चाहते थे तो गाँव-गाँव में लड़ाई के लिए तय्यारी करने का संदेश दूतों द्वारा भिजवाया करते थे। संदेश पाते ही सब लोग एक स्थान पर इकट्ठा हो जाया करते थे, फिर युद्ध-नृत्य करते थे और रण-

रेगिस्तानों के निवासी अरब

जिनका जीवन ऊँटों पर और ख़ेमों ही में बीतता है।
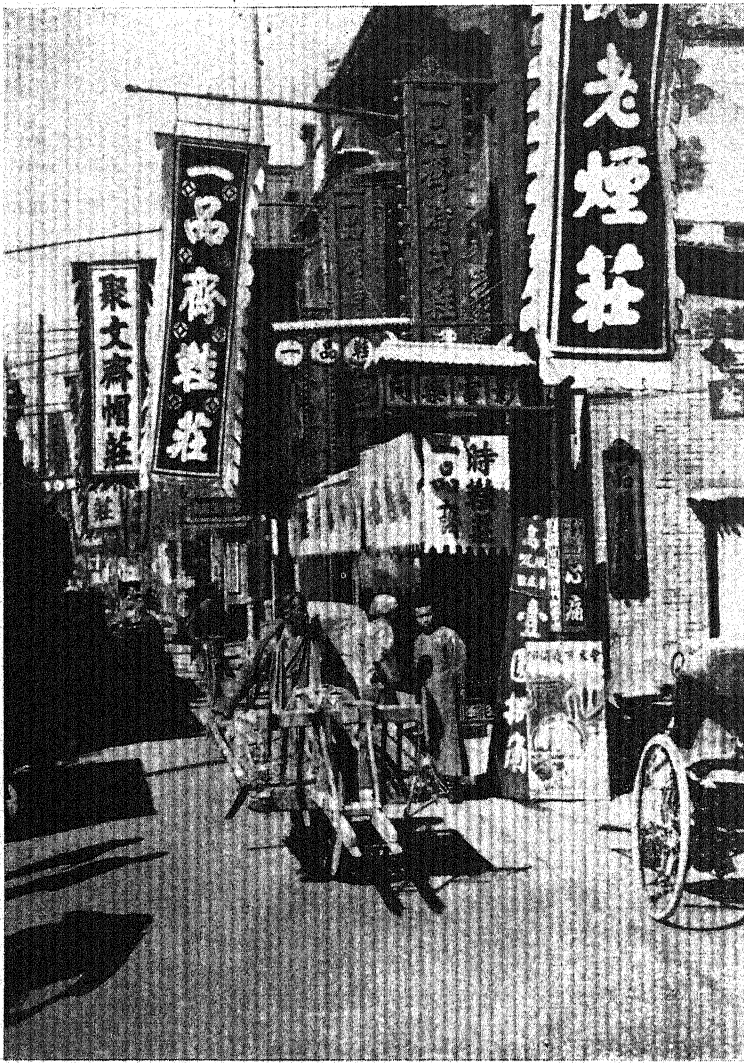
चीन के पेकिंग शहर की एक गली का दृश्य

दूकानों पर लगे आकर्षक साइनबोर्डों और स्त्री-पुरुषों की विचित्र वेश-भूषा की छटा देखिए।

यात्रा के लिए चुपचाप चल पड़ते थे। यदि कहीं बीमारी फैलती थी या अकाल पड़ता था तो कई लोग नृत्य करने के बाद भारी-भारी गुँथे हुए एक प्रकार के डण्डे लेकर 'हाकी' के खेल-सा मिलता-जुलता एक खेल खेलते थे। अन्तर इतना ही था कि इनके गोल एक-एक मील की दूरी पर होते थे। गेंद हवा में उछाल दी जाती थी, और खेल प्रारम्भ हो जाता था। फिर क्या था—डण्डों से वे एक-दूसरे के हाथ-पाँव तक तोड़ डाला करते थे और कभी-कभी तो भीषण प्रहारों से लोग मर भी जाते थे।

अब ये लोग सभ्य बन रहे हैं।

आधुनिक जापान-निवासियों ने यद्यपि पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है, किन्तु इससे पहले तक ये लोग संसार के शेष भागों से बिल्कुल कटे हुए से थे। अब तो जापान संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र है! यह "फूलों का देश" कहा जाता है—क्योंकि यहाँ के लोग बहुत पुष्पप्रेमी होते हैं।

भारत के पड़ौसी चीन, तिब्बत और बर्मा के लोग बौद्ध धर्म के माननेवाले हैं। चीन-जापान के लोगों की आकृतियों में बहुत-कुछ समानता है। ये लोग पीले वर्ण के होते हैं। चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है। यहाँ की मीलों लम्बी प्राचीन "चीनी दीवार" संसार के आश्चर्यों में से है। चीन के किसी शहर में चले जाइये। छोटी-छोटी तंग सड़कें, आकर्षक दूकानें, बाढ़ की तरह उमड़ता हुआ जन-समुदाय आप देखेंगे। इन दूकानों के साइनबोर्ड कैसी आकर्षक भाषा में दूकानों की ख़ूबियाँ बतलाते हैं! चाहे कोयले की दूकान हो, पर नाम होगा "सोने की खान"! दूकानों में स्त्रियों के लिए छोटे-छोटे एड़ीदार बूट टँगे हैं। जिस स्त्री के जितने ही छोटे पैर हों वह सौंदर्य की दृष्टि में उतनी ही बढ़ी-चढ़ी मानी जाती है। लोहे के जूतों में इनके पैर छुटपन से फँसा दिये जाते हैं, जिससे कि वे बढ़ने नहीं पाते। अब यह दुःखदायी रिवाज दूर हो रहा है। लुङ्गी लगाये और कभी-कभी टोपी के अन्दर से लम्बी गुँथी हुई चोटी लटकाये हुए चीनी इधर-उधर आते-जाते दिखलाई पड़ते हैं। कोई-कोई घुटी खोपड़ी भी रखते हैं। भारत में भी चीनी लोग सायकिल पर क़ीमती

रेशमी कपड़ों के गट्ठर रखे हुए सम्पन्न व्यक्तियों के बंगलों पर चक्कर लगाते हुए दिखाई पड़ते हैं। चीन में अब बहुत-कुछ जागृति हो गई है। प्रगति की दृष्टि से एशिया में जापान के बाद चीन का नम्बर आता है।

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में बसे हुए अफ़ग़ान अपने लम्बे-चौड़े डील-डौल के लिए प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ानिस्तान एक पहाड़ी देश है। यहाँ ख़ून-पसीना एक करने पर, कहीं-कहीं पहाड़ी स्थलों में अन्न पैदा होता है। प्रकृति की कठोरता ने अफ़ग़ानों को ताक़तवर, बहादुर और ख़ूँख़्वार बना दिया है। ये लोग बन्दूक़ को प्राणों से भी प्यारी वस्तु समझते हैं। इनका निशाना अचूक रहता है। इन्हीं के पड़ौसी अफ़रीदी लोग सीमा-प्रान्त की अंग्रेज़ी सेना को तङ्ग किये रहते हैं। पहाड़ों में छिपे हुए ये दनादन गोलियाँ दागते हैं। बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। इनको वश में लाना बहुत मुश्किल है।

अब अपने भारत को ही लीजिये। भिन्न-भिन्न वेषभूषा और भाषाओंवाले ३५ करोड़ नर-नारियों की यह शस्य-श्यामला जादूभरी भूमि! उत्तर में संसार का सबसे ऊँचा हिमाच्छादित गिरिराज हिमालय, मध्य में विंध्य-सतपुड़ा की श्रेणियाँ, उनके बीच सिंध, ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना, नर्मदा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ! विश्व में सर्वप्रथम सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचनेवाला यह देश आज भी अजन्ता के विश्व-विख्यात चित्र एलोरा के पाषाण-मंदिर, बौद्धकालीन स्तूप और संसार के भवनों के मुकुट अद्वितीय ताजमहल को लेकर अपना सिर ऊँचा उठाये हुए हैं। यही महाकवि वाल्मीकि, कालिदास, व्यास, तुलसीदास आदि की जन्म-भूमि है। यही है राम, कृष्ण, बुद्ध, गांधी आदि महापुरुषों की कर्म-भूमि! तीन हज़ार जातियों का यह देश! हल चलानेवाले, झोपड़ियों में रहनेवाले तीस करोड़ किसानों का यह देश! यही एक ज़माने में साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन आदि का केन्द्रस्थल रहा है। इस देश के वक्षःस्थल पर कितनी विदेशी जातियों, सभ्यताओं ने क्रीड़ाएँ कीं! कितने साम्राज्य बने और मिटे! पिछले कुछ सौ वर्षों से यह महादेश अपने आपको मानो भूलकर पीछे की ओर ढुलकता हुआ ग़ुलामी और अज्ञान की ज़ंजीरों से जकड़ गया था। किंतु अब फिर से कैसी जागृति की लहर उठ चली है! आज इसकी झोपड़ियों में कैसी स्वतन्त्रता की भावना जाग उठी है! भारत में हिन्दी, बंगला, मराठी, तामिल, तेलगू, मलयानल, कनाड़ी, गुजराती आदि प्रमुख भाषाएँ बोली जाती हैं। बोल-चाल की भाषाएँ हज़ारों हैं। प्रति डेढ़ सौ मील पर भाषाओं में कुछ-कुछ परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है। संसार का यह सबसे अधिक धर्मप्राण देश है। भिन्न-भिन्न रूप-रंग के मन्दिर, मस्जिद, गिरजे यहाँ के भिन्न-भिन्न धर्मों का अस्तित्व बतलाते हैं।

भारत के दक्षिण-पश्चिम में स्थित अफ़्रीका महाद्वीप घने-घने जंगलों, जंगली जातियों, और विचित्र रीति-रिवाजों का प्रदेश है। यह योरप से तिगुना बड़ा है, फिर भी सभ्यता की किरणें इसके घने जंगलों में दूर तक नहीं पहुँच सकीं। अब भी यहाँ कहीं शेर आदि भयानक जन्तु दहाड़ते हैं, तो कहीं ढोल बजा-बजाकर बर्बर मनुष्य भय उत्पादक युद्ध-नृत्य करते रहते हैं। अफ़्रीका के "बुशमैन" या बौने लोग जो कि पाँच फ़ीट से अधिक लम्बे नहीं होते, बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। ये लोग मुख्यतः शिकार करते हैं। ज़हरीले तीरों से

अमेरिका के आदिम निवासियों का एक प्रतिनिधि

ये लाल वर्ण के होते हैं और पंख आदि की बनी बड़ी आकर्षक रंग-बिरंगी वेश-भूषा धारण करते हैं।

बड़े-बड़े जानवर मार डालते हैं। ये भागने में बड़े तेज़ होते हैं। कभी-कभी तो दौड़कर ही दौड़ते हुए जंगली जानवरों के पास पहुँचकर उन्हें मार डालते हैं। कपड़े तो नाममात्र को ही पहनते हैं। गरम राख पर युवकों को सुलाकर उनकी परीक्षा ली जाती है। यदि नौजवान गरम राख पर कुछ समय तक पड़ा रह सके और पीठ की चमड़ी जल जाने पर भी चूँ तक न करे, तो वह परीक्षा में उत्तीर्ण माना जाता है।

अफ्रीका की अन्य जातियाँ झोपड़ियों में रहती हैं। मनुष्य तीर-कमान और भाले लेकर शिकार को जाते हैं। स्त्रियाँ अन्न और तरकारियाँ पैदा करती हैं। दक्षिणी अफ्रीका की "ज़ूलू" जाति के लोगों के झोंपड़े बड़े-बड़े और साफ़-सुथरे होते हैं। इनके गाँव "क्रआल" कहलाते हैं। ये लोग अन्न पैदा करते, ढोर आदि पालते और घरेलू काम के लिए कुछ हथियार बनाते हैं। अब यहाँ अंग्रेज़ी सभ्यता के संसर्ग से कुछ जाग्रति हो रही है। अफ्रीका के कई भागों पर विदेशियों का अधिकार है। व्यापार आदि की बागडोर उन्हीं के हाथों में है। अफ्रीका के कुछ निवासी "हब्शी" कहलाते हैं। ये लोग काले-काले और मोटे-मोटे होठोंवाले होते हैं। जंगली जाति के लोग शरीर पर विचित्र रंगों से चित्रकारी किये रहते हैं, और कौड़ियों और जानवरों के दाँतों की बनाई हुई मालाएँ पहनते हैं। आस्ट्रेलिया और उनके आसपास के द्वीपों में भी जंगली जातियाँ पाई जाती हैं।

अफ्रीका के उत्तर में स्थित योरप महाद्वीप के देशों के निवासियों ने आज विज्ञान में आश्चर्यजनक उन्नति की है। रेडियो, हवाई जहाज़, मशीनगन, बड़े-बड़े कारख़ाने, मोटर, रेलगाड़ी आदि-आदि वस्तुए इसी महाद्वीप में उत्पन्न सभ्यता के चकाचौंध करनेवाले आविष्कार हैं।
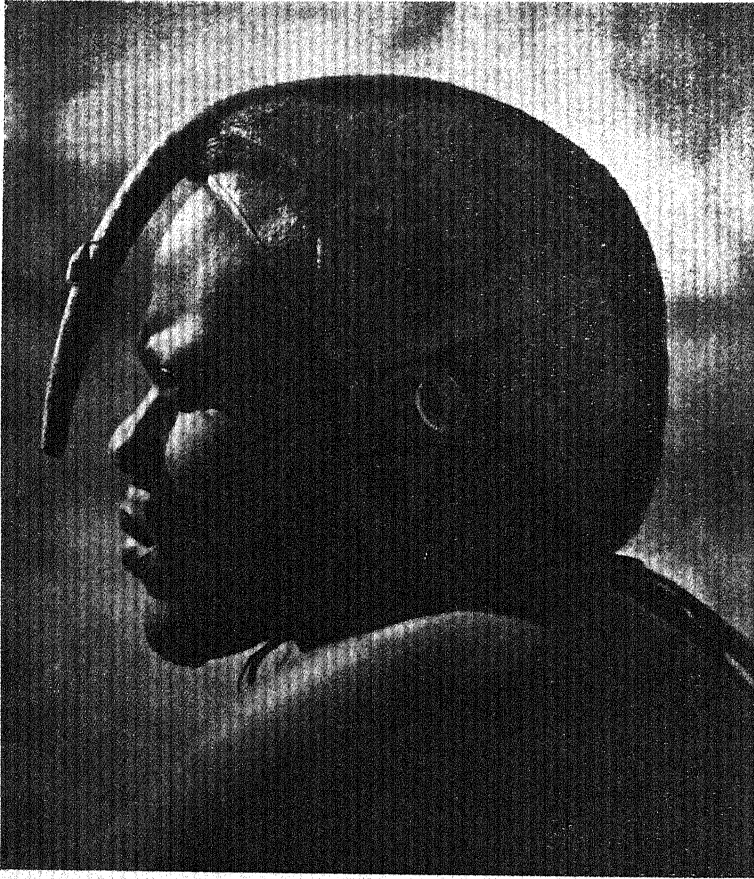
अफ्रीका की जंगली जातियों का एक प्रतिनिधि

इसकी वेश-भूषा और शरीर-रचना अब भी मनुष्य की अपनी यात्रा के आरंभिक युगों की याद दिलाती हैं, जब वह सभ्यता के बन्धन में नहीं बँधा था और निर्द्वन्द विचरता था।

योरप के पश्चिम में अटलांटिक महासागर के उस पार अमेरिका महाद्वीप में भी गोरी जातियों के उपनिवेश हैं, जिनमें से एक "संयुक्त राष्ट्र" आज धन-संपत्ति और शक्ति में सबसे बढ़कर है। अमेरिकन इस बीसवीं शताब्दी की सभ्यता का प्रतीक है। योरप में पैदा हुई सभ्यता का केंद्र अब धीरे-धीरे पेरिस, लंदन या बर्लिन से हटकर और भी पश्चिम में न्यूयार्क या लास एंजिल्स की ओर जा रहा है।

हमने ऊपर पृथ्वी पर बसनेवाली मनुष्य-जाति के चित्र-विचित्र जमघट पर एक विहंगम दृष्टि डाली, अब आगे के अध्यायों में हम क्रमशः एक-एक देश—जैसे चीन, तिब्बत, ब्रह्मा, जापान, रूस, ईरान आदि को—अलग-अलग लेकर विस्तारपूर्वक उनमें बसनेवाली मनुष्य-जाति का हाल बतावेंगे।
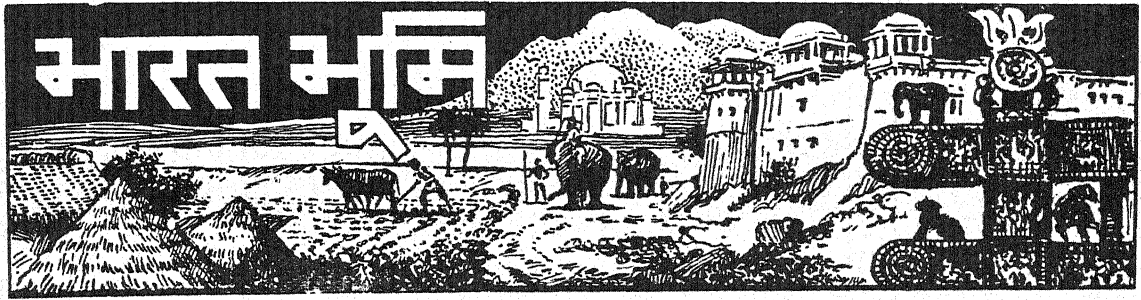
'सुजलां सुफलां....शस्य श्यामलां'

जीते-जागते ४० करोड़ भारतीयों के सजीव जाग्रत राष्ट्र का मूर्तिमान् चित्र।

भारतवर्ष का नाम सुनते ही हमारे हृदय में कितने विचित्र भाव उठने लगते हैं? संसार के सबसे पहले मानव-सभ्यता को जन्म देनेवाले देशों में इसका विशिष्ट स्थान है। हज़ारों वर्ष पहले ही साहित्य, दर्शन, विज्ञान, शिल्प-कला, संगीत, चित्र-कला, ज्योतिष आदि विद्याएँ यहाँ उन्नत अवस्था को पहुँच चुकी थीं। आज भी बची-खुची देव-भाषा संस्कृत की हज़ारों पुस्तकें, प्राचीन मन्दिर, क़िले, खँडहर आदि अनेक भग्नावशेष इस बात की साक्षी दे रहे हैं। महापुरुषों, कलाकारों, ज्ञानियों, महात्माओं की यह जन्म-भूमि, अनेक सभ्यताओं, संस्कृतियों, साम्राज्यों, भाषाओं का यह "सुजलां, सुफलां, शस्य श्यामलाम्" जादू भरा देश, अपने हज़ारों वर्ष के विचित्र इतिहास को लिये हुए एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित है।

दुनिया के सात बड़े-बड़े ज़मीन के टुकड़े मान लिये गये हैं—जिन्हें कि महाद्वीप कहते हैं। भारतवर्ष दुनिया के सबसे बड़े महाद्वीप एशिया का एक भाग है। भारतवर्ष एक बड़ा भारी देश है—जादू की पिटारी है—रंग-बिरंगे पक्षियों का एक पिंजड़ा है, प्रकृति और पुरुष का अजायब-घर है। भारतमाता के सिर पर पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ, दो हज़ार मील लम्बा हिमालय पर्वत का, बर्फ़ की चाँदी से बना हुआ, मुकुट रखा है। इसकी हरी-भरी छाती पर गंगा-यमुना, मोती और नीलम की मालाओं-सी, झूल रही हैं। इसकी बिखरी हुई केश-राशि के समान सिंध, चिनाब, झेलम, व्यास, ब्रह्मपुत्र आदि सरिताएँ लहरा रही हैं। इसकी कमर पर करधनी के समान विंध्या और सतपुड़ा पर्वतों की श्रेणियाँ शोभित हैं। नर्मदा नदी भी इसके मध्य-भाग में कल-कल करती हुई बह रही है। कृष्णा, कावेरी आदि नदियाँ आँचल-सी फहरा रही हैं। पद-प्रान्त के पास कमल-कली-सी लंका सुशोभित है। हिंद-महासागर इसके चरण को पखार रहा है। यह बहुत बड़ा देश है। इसकी आबादी ३५ करोड़ से भी अधिक है यानी इँगलैंड से क़रीब ७ गुनी आबादी है। काश्मीर के उत्तर से लगाकर दक्षिण तक यह दो हज़ार मील से भी अधिक लम्बा है। भारत का दक्षिणी भाग तीनों ओर से समुद्र-जल से घिरा हुआ है। पश्चिम की ओर अरब-सागर, पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी और दक्षिण की ओर हिंद-महासागर है। दक्षिणी भाग एक बड़ा भारी पठार है। इस पठार के पश्चिम और पूर्व के उठे हुए भाग पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट कहलाते हैं। पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट पहाड़ों की श्रेणियाँ नहीं हैं वे केवल पठार के ऊँचे उठे हुए किनारे हैं। यह पठार पश्चिम से पूर्व की ओर ढलुआँ है। भारत के समुद्र-तट अधिकतर कटे हुए नहीं हैं, एवं समुद्र का पानी दूर तक ज़मीन के अन्दर नहीं घुस पाता, इसलिए यहाँ प्राकृतिक बन्दरगाह नहीं हैं और यही कारण है कि भारतवासी हमेशा से समुद्र से दूर ही रहे हैं। वे अच्छे मल्लाह नहीं हो पाये। अधिकांश मनुष्यों ने तो समुद्र के दर्शन भी नहीं किये। दूसरे देशों में, जैसे इंगलैंड में, अच्छे-अच्छे प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। वहाँ समुद्र का पानी दूर तक अन्दर घुस आया है। उन देशों के बहुत-से नगर समुद्र के पास ही हैं, इसलिए वहाँ के लोग समुद्र के पास रहने के कारण समुद्र-प्रेमी और अच्छे मल्लाह हैं।

भारत की ज़मीन, ख़ासकर गङ्गा और यमुना के बीच की ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। इस देश में घने जङ्गल भी हैं।

दक्षिण भारत के पाँच हज़ार फ़ीट से अधिक ऊँचे पहाड़ों पर और हिमालय की तीन हज़ार फ़ीट ऊँचाई पर सदैव हरे रहनेवाले जङ्गल पाये जाते हैं। हिमालय के ऊँचे भागों में कोई वनस्पति पैदा नहीं होती, क्योंकि वहाँ हरदम बर्फ़ जमी रहती है। गङ्गा के मुहाने पर "सुन्दर वन" नामक एक वन है। ब्रह्मा के जंगलों तथा भारत-वर्ष के जंगलों में अच्छे-अच्छे वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी कि लकड़ी बहुत उपयोगी होती है। इन दरख़्तों को काट-काटकर बड़े-बड़े लट्ठे भैंसों या हाथियों के द्वारा खिंचवाकर, गर्मी के दिनों में सूखी हुई नदियों की धाराओं में डाल दिये जाते हैं। जब बरसात में नदियों में पानी आ जाता है तब वे लट्ठों के गट्ठे बह-बहकर अपने निश्चित स्थान तक पहुँच जाते हैं। ब्रह्मा प्रान्त में लट्ठों को सिलसिले से एक के ऊपर एक जमाने का काम हाथी करते हैं। ये चतुर हाथी अपनी सूँड़ से लट्ठों को उठा-उठाकर जमा कर देते हैं।

भारत में ज्वार-बाजरा, गेहूँ, दाल, सन, कपास, नारियल, चाय, काफ़ी, तमाखू, रबर, चावल आदि चीज़ों की पैदावार होती है तथा रुई, सन, रेशम, ऊन, आदि से उपयोगी वस्तुएँ भी बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, कानपुर आदि की मिलों में तैयार की जाती हैं। मुर्शिदाबाद, बनारस, अमृतसर, अहमदाबाद और सूरत रेशमी काम के लिए प्रसिद्ध हैं। अभी कुछ वर्ष पहले ही भारत के गाँवों में रेशम की साड़ी आदि बनानेवाले बड़े होशियार कारीगर पाये जाते थे। काश्मीर के ग़लीचे प्रसिद्ध हैं। जमशेदपुर में लोहे की वस्तुओं को तैयार करने का बड़ा भारी कारख़ाना है। बनारस, बम्बई, पूना आदि की चाँदी की वस्तुएँ तथा जयपुर और दिल्ली की सोने की वस्तुएँ प्रसिद्ध हैं। पीतल के बर्त्तन तो हर जगह बनाये जाते हैं, और गाँवों में मिट्टी के बर्त्तन तो कुम्हार आदि बनाते ही हैं।

गगनचुम्बी हिमालय

यह दार्जिलिंग से दिखाई पड़नेवाली हिमालय के एक उत्तुंग शिखर कंचनजंघा का चित्र है। यह चोटी २८, १५६ फ़ीट ऊँची है।

भारत की उर्वरा भूमि पर हरी-भरी प्रकृति सदैव लहलहाया करती है। प्राकृतिक सौंदर्य्य की दृष्टि से गगन-चुम्बी हिमालय की बर्फ़ से ढकी हुई चोटियाँ बेजोड़ हैं। काश्मीर तो प्राकृतिक सौंदर्य्य का स्वर्ग है। यहाँ तो मानो प्रकृति स्वयं ही अपना साज-सिंगार किया करती है। तरह-तरह के सुन्दर जीव-जन्तुओं की भी इस देश में कमी नहीं है। भारतवर्ष वास्तव में गाँवों ही में बसा हुआ है। यहाँ योरपीय देशों के समान न तो अधिक संख्या में बड़े-बड़े नगर हैं और न उतने बिजली और लोहे के कारख़ानों की हलचल! आधुनिक भारत जब से ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत आया तब से यहाँ भी पश्चिमी हवा चल पड़ी है। भारत के बड़े-बड़े नगरों में आलीशान इमारतें, मोटरें, सायकलें, रेडियो, सिनेमा, ट्राम-गाड़ियाँ आदि की अब धूम है। तो भी सच पूछिए तो भारत के छः-सात लाख गाँवों के बीच में बीस-पचीस बड़े-बड़े नगरों का अस्तित्व नगण्य-सा ही प्रतीत होता है। असली भारत तो गाँवों ही में है। यहाँ के पचहत्तर या अस्सी प्रतिशत लोग किसान हैं। किन्तु ये किसान—अपने पसीने से देश को अन्न-वस्त्र देनेवाले ये भारत के असली प्राण—आज असहाय ग़रीबी में डूबे हुए हैं। वह भारतवर्ष जिसने कि सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान के क्षेत्र में किन्हीं दिनों आश्चर्य्यजनक प्रगति की थी, आज निरक्षरता का शिकार बना हुआ है। सदियों की ग़ुलामी ने भारत को बहुत नीचे गिरा दिया है। फिर भी आज के भारत में महात्मा गांधी ऐसे महापुरुषों ने फिर नवजागृति उत्पन्न कर दी है। असहयोग आन्दोलन में सैकड़ों स्त्री-पुरुषों ने जेल जाकर और देश-प्रेम के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर सिद्ध कर दिया है कि यह राष्ट्र अब भी जीवित है।

आइये, अब ज़रा गाँवों में चलकर सच्चे भारत का दर्शन करें। आपको यहाँ कहीं मिट्टी और फूस की बनी हुई साफ़-सुथरी तो कहीं टूटी-फूटी छोटी-छोटी झोपड़ियाँ मिलेंगी। इन्हीं में किसान अपने परिवार के साथ रहता है। गाँव के
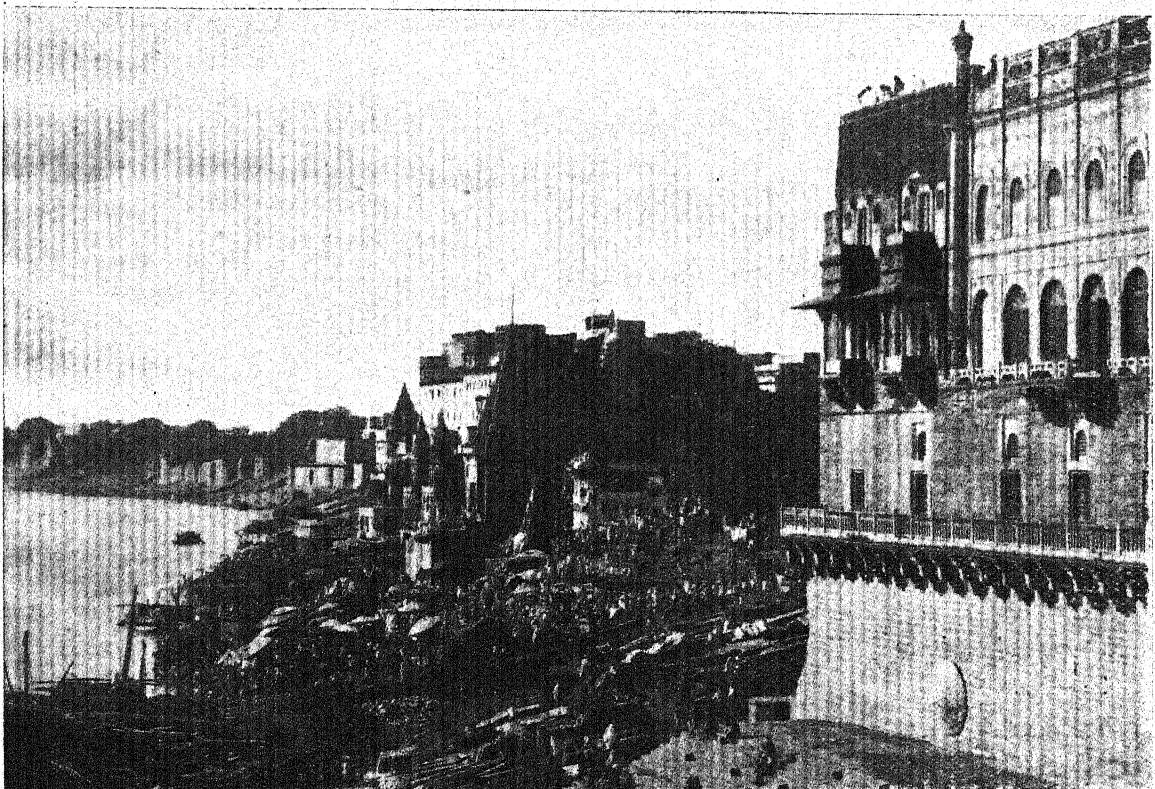
भारत के गौरवशाली अतीत की साक्षी—गंगा

जिसके तटों पर भारतीय सभ्यता का जन्म और विकास हुआ और जिसका नाम तक प्रत्येक भारतवासी के लिए एक पुनीत श्रद्धा की वस्तु है। गंगा इस देशवासियों के लिए एक जड़-वस्तु नहीं, वरन् एक अलौकिक मूर्त्तिमान देवी के रूप में विद्यमान है।

आस-पास छोटे-छोटे ज़मीन के टुकड़े हैं। उन्हीं टुकड़ों पर किसान अपना देशी हल चलाकर खेती करता है। चाहे गर्मी हो, चाहे जाड़ा, चाहे बरसात हो, पर बेचारा ग़रीब किसान, चिथड़े लपेटे हुए अपने दुबले-पतले बैलों को हल में जोतकर, सुबह से शाम तक खेतों की छाती पर हल चलाता है। मिट्टी से जो कुछ अन्न पैदा होता है, उसी से उसको साल भर तक अपना और अपने परिवार का पेट भरना पड़ता है। कभी वर्षा में बाढ़ आने के कारण सैकड़ों गाँव जल-मग्न हो जाते हैं। गाय-बैल आदि मवेशी पानी में बह जाते हैं। कभी अकाल पड़ता है, तो कभी अति वृष्टि, और कभी अनावृष्टि। प्रकृति की सब क्रूरताओं को किसान सहता है और किसी तरह जीवन यापन करता है। किसी-किसी गाँव में सौ-दो सौ या इससे भी ज़्यादा घर होते हैं तो किसी-किसी में दो-चार झोपड़ियाँ ही। बंगाल में किसान अधिकतर दो-दो चार-चार झोपड़ियाँ डालकर ही अपने खेतों के पास रहते हैं।

प्रत्येक गाँव में एक-न-एक कुआँ अवश्य होता है। इन कुओं पर पानी भरने के लिए किसानों की स्त्रियाँ, अपने-अपने प्रांत के रस्म-रिवाज के अनुसार पोशाक पहने, सुबह-शाम इकट्ठा होती हैं। ये स्त्रियाँ कुएँ के पनघट पर इकट्ठी होकर सुख-दुःख की बातें करती हैं। कभी घर-गृहस्थी से संबंध रखनेवाली बातों की चर्चा होती है, तो कभी किसी की माँ या बहू आदि की शिकायत या तारीफ़ होती है। सुबह कुएँ से पानी खींचकर घड़े सिर पर रखे और बग़ल में दबाये ये घर की ओर जाती हैं, चूल्हा जलाती हैं और अपने पति तथा बाल-बच्चों के लिए रूखा-सूखा भोजन तय्यार
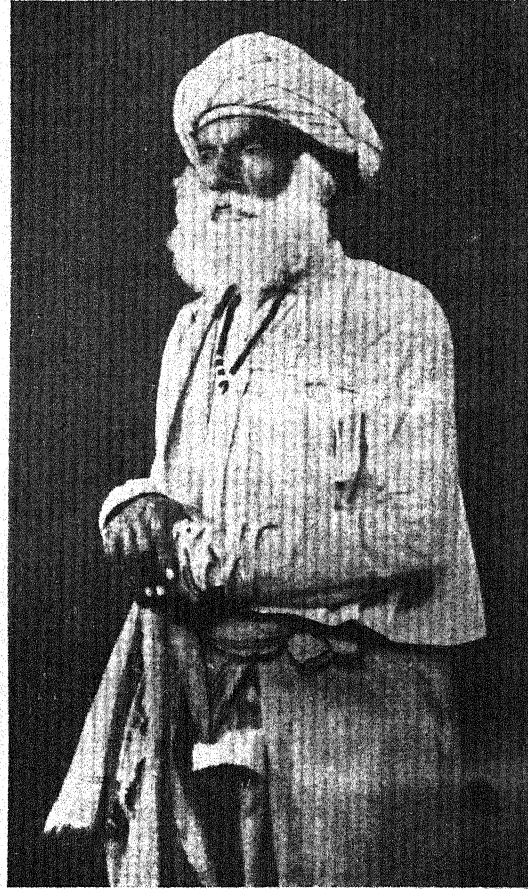
एक ग्रामीण भारतीय

जिसकी भवभङ्गी और वेषभूषा इस बात की साक्षी है कि इसकी नसों में अब भी प्राचीन आर्य्यों का रक्त सुरक्षित है।
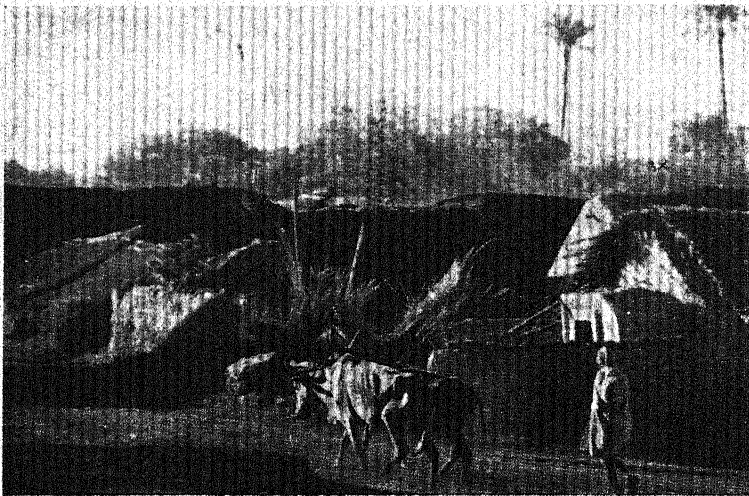
(बाईं ओर) ग्रामीण भारत

जिसे प्रकृति ने तो हर तरह के साज-सिंगार से सजा रक्खा है, किन्तु मनुष्य की असाम्य व्यवस्थाओं के फल-स्वरूप जहाँ आज प्रायः टूटी झोपड़ियाँ, दुबले-पतले चौपाये और दीन-हीन किसान ही दिखाई देते हैं।

नवीन भारत

पिछले कई सौ वर्षों से अकर्मण्यता और अज्ञान की निद्रा में अचेत-सा भारत इस कालावधि में जकड़ी गई पराधीनता की बेड़ियों को झकझोरता हुआ आज नया शरीर धारण कर उठ खड़ा हुआ है। केवल राजनीतिक और सांपत्तिक दासता ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक भयंकर निरक्षरता और अज्ञानांधता की बेड़ियों से भी मुक्ति पाने की साध उसमें अब जग उठी है। पिछले कई वर्षों से उठा हुआ स्वतंत्रता का आंदोलन तथा अभी हाल में उत्पन्न साक्षरता के प्रसार का आंदोलन इस बात के साक्षी हैं। एक नवीन भारत का जन्म हो रहा है। नूतन जागृति की यह लहर अब केवल शहरों या शहरवालों ही तक सीमित नहीं है, प्रत्युत गाँवों में भी जहाँ कि असली भारत बसता है, फैल रही है। पिछले आंदोलन के समय स्वतंत्रता का संदेश सुनने के लिए लाखों की संख्या में किसानों का इकट्ठा होना इस बात का सजीव प्रमाण है।

करती हैं। किसान ज्वार या बाजरा की मोटी-मोटी रोटियाँ प्याज या तरकारी के साथ खाकर सुख-संतोष की साँस लेता है और सुबह होते ही फिर हल चलाना शुरू कर देता है।

भारत संसार का सबसे अधिक धर्मप्राण देश है। धर्म की भावना ही ने इस देश को अब तक जीवित रक्खा है। परंतु लोगों की सरल श्रद्धा से बहुत-कुछ अनुचित लाभ भी उठाया जा रहा है और जगह-जगह धर्म के व्यापारी उठ खड़े हुए हैं। गाँवों में जाइए, किसी चबूतरे पर बैठे कोई साधु महाराज आप अवश्य पायँगे। ये महात्मा गाँजे की दम लगाते हुए लोक-परलोक की लम्बी-चौड़ी डींग हाँकते हैं। कभी पीपल या बरगद के दरख़्तों के नीचे सेंदुर से पुते हुए गोल-गोल पत्थर रखे रहते हैं जो भाँति-भाँति के देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्रामीण स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ उन देवताओं पर जल-धारा डालकर पत्र-पुष्प चढ़ाते हैं। यदि कोई बीमार पड़ता है तो लोगों को झट भूत-प्रेत का अन्देशा हो जाता है। झाड़-फूँक करनेवाले, भूत-प्रेत को शरीर से निकालनेवाले, "ओझा" नामक महापुरुष बुलाये जाते हैं या किसी भगतजी या औघड़पंथी के शरीर पर किसी देवता या सीतला माई आदि की आत्मा बुलाई जाती है। घृत का दीपक रात-भर जलता है। धमाधम ढोल बजते हैं और देवता धोती-मात्र पहने हुए भगत के शरीर पर धावा बोलते हैं। भगत जी का शरीर हिलने-काँपने लगता है। शराब की बोतल खुलती है। देवता बोतल गटागट साफ़ कर जाते हैं, फिर भभूत बाँटते हैं तथा बीमार आदमी के भूत-प्रेत को डरा-धमकाकर निकाल बाहर करते हैं। तब काँपते स्वर में भविष्यद्वाणी कर, सरलहृदय ग्रामीणों को चकित और आतंकित कर देते हैं।

भारत में भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वास रखनेवाले लोग पाये जाते हैं। जातियाँ भी यहाँ कई हैं। हिन्दुओं में मुख्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियाँ हैं जो कि बहुत पुराने ज़माने से अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। इन जातियों की भी कई शाखाएँ और उपशाखाएँ हो गई हैं जैसे वृक्ष की डालियाँ और पत्ते। रेलगाड़ी के प्रसार से या शहरों में पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग से जाति-बंधन ढीले पड़ चले हैं, फिर भी अधिकांश लोग संस्कार, विवाह आदि के मामलों में जात-पाँत के भेद-भाव का पालन करते हैं। अपनी ही जातिवालों में आपस में विवाह-संबंध होते हैं। एक ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र की जाति में शादी नहीं कर सकता और न अन्य जातियाँ ही अपनी सीमा के बाहर जाती हैं। हाँ, आज-कल के कुछ नवयुवक अन्तर्जातीय विवाह भी करने लगे हैं। देश के नेतागण भी इन जातियों को एकाकार बनाने में प्रयत्नशील हैं। पर गाँवों में यह जाति-प्रथा दृढ़ है। कहा जा चुका है कि भारत की आबादी ३५ करोड़ से भी ऊपर है। इसमें हिन्दू-धर्म के माननेवाले क़रीब २३,६५,६५,००० अर्थात् ६८-६६ प्रतिशत मनुष्य हैं। शेष सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, मुसलमान, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न मुख्य धर्मों के माननेवाले हैं। कुछ जंगली जातियाँ भी पहाड़ों में रहती हैं, जो भूत-प्रेत आदि की पूजा करती हैं। मुग़ल शासन-काल में कई हिन्दू मुसलमान बना लिये गये। अब भारत का एक-चौथाई हिस्सा, यानी लगभग आठ-नौ करोड़ मनुष्य मुसलमान हैं। ईसाई पादरियों ने भी तिरसठ या चौंसठ लाख या इससे भी ज़्यादा लोगों को ईसाई बना लिया है। इतनी सब विभिन्नताएँ होते हुए भी, भारत का प्रत्येक भाग एक विशेष संस्कृति में बँधा हुआ है। अन्य बातों में विभिन्नता होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से यहाँ ऐक्यता है। मुसलमान भी यहीं पैदा होकर और बरसों यहाँ रहकर यहीं के हो गये हैं। हिन्दी, बंगला, पंजाबी, कश्मीरी, तेलगू, मलयालम, कनाडी, तामिल, गुजराती, मराठी, उर्दू ये यहाँ की मुख्य भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के भी अनेक भेद हैं। बोल-चाल की भाषा या "बोली" तो प्रत्येक बारह मील में कुछ-कुछ परिवर्तित-सी दिखाई पड़ती है। इनमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा मुख्य है और यही यहाँ की राष्ट्र-भाषा बनती जा रही है।

यह भारत नगरों, गाँवों, धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों, पहाड़ों, नदियों, प्राकृतिक दृश्यों, जीव-जंतुओं, आदि का विचित्र अजायबघर है। इन विचित्रताओं के बीच भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ कलात्मक प्रतीक-स्वरूप प्राचीन इमारतें इस देश के अतीत को वर्त्तमान से संबंधित कर देती हैं। साँची के बौद्धकालीन भव्य स्तूप; चित्तौड़, ग्वालियर, आदि के क़िले; मथुरा, वृन्दावन, बनारस आदि के मन्दिर और सदियों से अटल खड़े हुए अन्य सैकड़ों स्मारकों के अवशेष आर्य्य-सभ्यता की पुरातन महिमा का गौरव-गान कर रहे हैं। आगरे का ताजमहल, फ़तहपुर सीकरी, दिल्ली, लाहौर, लखनऊ आदि की मुग़लकालीन इमारतें, मीनारें और समाधियाँ मध्यकालीन संस्कृति की रंगीन तस्वीरें खींच देती हैं। सम्राट् शाहजहाँ के अमर आँसू विश्व-विख्यात "ताजमहल" के रूप में जमकर काल के कपोल पर मानो लटक गये हैं। "ताजमहल" और एलोरा का प्रसिद्ध "कैलाश-मंदिर"

संसार की भवन-निर्माण-कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में से हैं, इसमें संशय नहीं। उधर राजपूताने के बूढ़े खण्डहर राजपूतों की नङ्गी तलवारों को आज भी भनकार रहे हैं।

अब पाश्चात्य सभ्यता ने भारत के नगरों को बहुत-कुछ आधुनिक बना दिया है। सैकड़ों कल-कारख़ाने देखने में आते हैं। सुबह और शाम काम पर जाते हुए तथा छुट्टी के बाद वापस आते मिल-मज़दूरों का झुण्ड दृष्टिगोचर होता है। मोटर, सायकिल, इक्के आदि इधर से उधर भागते हुए दिखलाई पड़ते हैं। नये-नये पाश्चात्य रंग-ढंग के बँगले, स्कूल, कालेज, प्रेस, मोटर, रेडियो, टेलीफ़ोन आदि हज़ारों क़िस्म की चीज़ें देखने को मिलती हैं। फिर भी जैसा कि कहा जा चुका है, ऐसे बड़े-बड़े शहर जहाँ कि पाश्चात्य वैज्ञानिक सभ्यता की चकाचौंध नज़र आती हो, भारत में बहुत कम हैं। कलकत्ता और बम्बई भारत के सबसे बड़े शहर हैं। इनकी आबादी लगभग तेरह या चौदह लाख है। परन्तु योरप-अमेरिका में इनसे कहीं बड़े-बड़े शहर हैं।

यद्यपि भारत में आज रेलगाड़ियाँ रेंगती हैं, बिजली और भाप के जादू का वैभव देखने में आता है—फिर भी गाँव में बसा हुआ असली भारत अभी ग़रीबी की ही दुनिया में कालयापन कर रहा है। हाँ, उसकी इन झोपड़ियों के दाँएँ-बाएँ कुछ पुरातन भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं, जिनको देखकर उसकी पुरातन गौरव की याद से जी भर जाता है और मस्तिष्क श्रद्धा से झुक जाता है।

आइए, इस स्तंभ के आगे के प्रकरणों में इस अद्भुत् महादेश के प्रत्येक अंग को अलग-अलग लेकर विस्तार-पूर्वक उनका अध्ययन करें—देखें, अतीत के भव्य पटल पर दिव्य अक्षरों में अपना इतिहास लिखानेवाले इस अप्रतिम राष्ट्र का आज दिन कैसा स्वरूप है—किस प्रकार एक नवीन युग का यहाँ धीरे-धीरे आविर्भाव हो रहा है?

भारत का अंतिम दक्खिनी सिरा—कुमारी अंतरीप

जहाँ हिन्द महासागर की लहरें उछल-उछलकर मानो भारतभूमि के चरण पखारने के लिए होड़ करती रहती हैं।
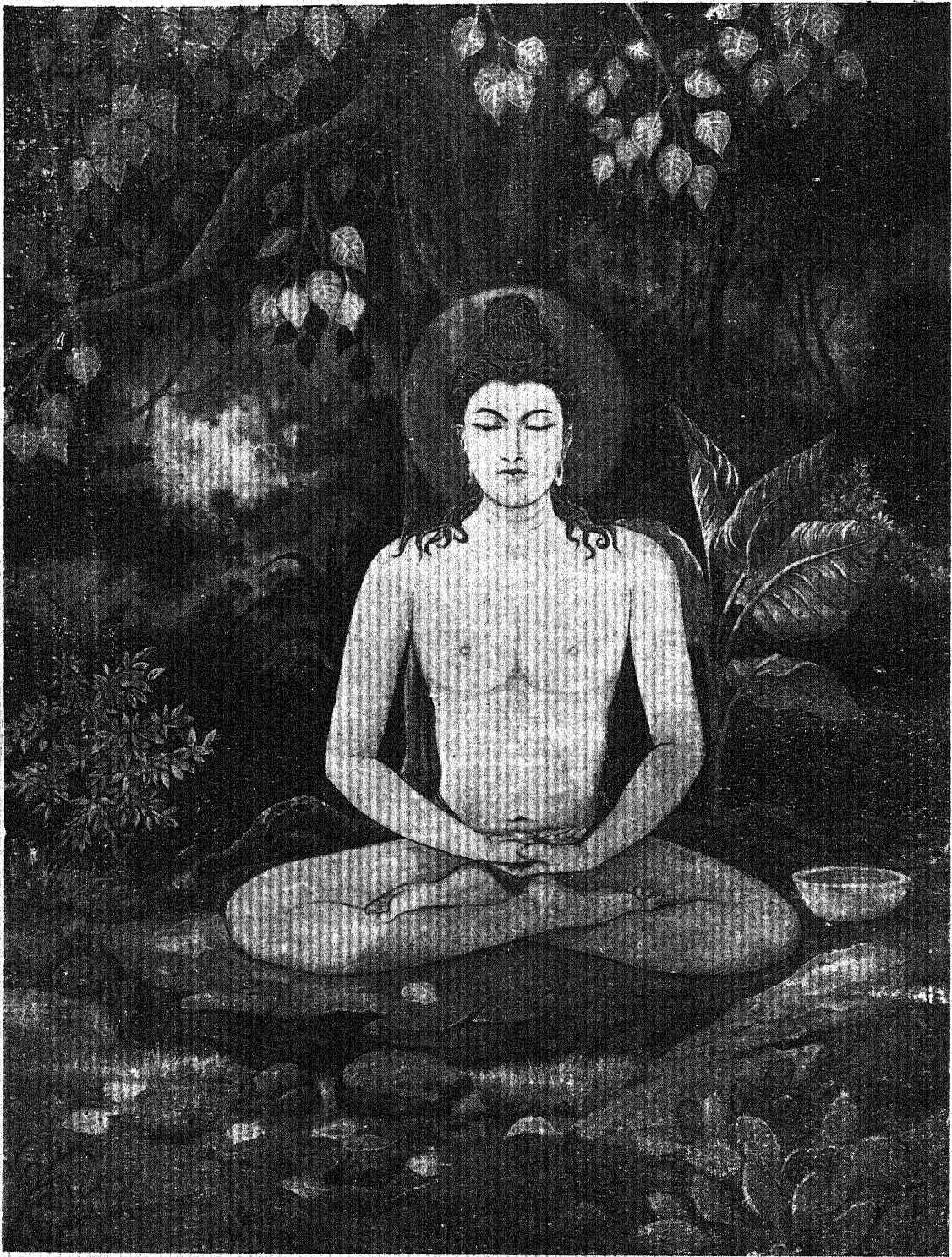
महात्मा बुद्ध

संसार के दु:खों से मानव की मुक्ति की खोज में जिन्होंने सब-कुछ त्याग दिया और अंत में गया के समीप एक पीपल के वृक्ष के नीचे वह आत्मज्ञान या बोध प्राप्त किया, जिसका प्रकाश आज भी करोड़ों नर नारियों को इस अंधकार में मार्ग दिखा रहा है ।
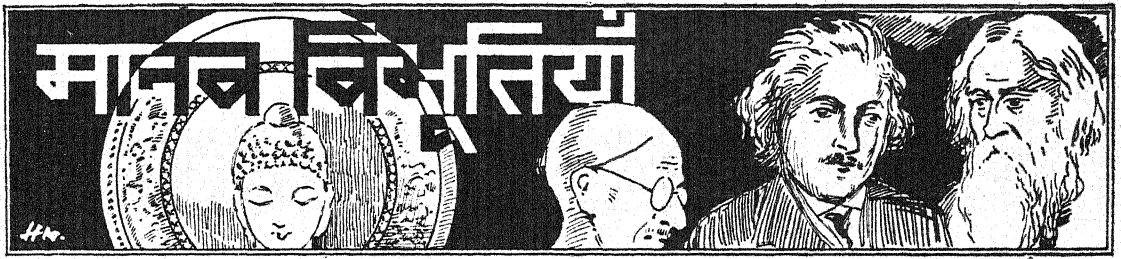
गौतम बुद्ध

इस स्तम्भ में हमें क्रमशः मनुष्य-जाति के उन सुदृढ़ आधार-स्तम्भों का परिचय मिलेगा, जिन्होंने हमारी इस सभ्यता की इमारत में समय-समय पर सहारा देकर इसे असमय ही ढह पड़ने से बचाया और इसको ऊँचा चढ़ाकर भविष्य का निर्माण किया है।

एकछत्र राज्य के अपरिमित वैभव के बीच जो पैदा हुआ—जिसके चारों ओर सुख ही सुख का वातावरण हो—वह एक अपाहिज को देखकर, एक बीमार की कराह सुनकर, इतना प्रभावित हो उठे कि इन सारे दुःखों के निवारण का मार्ग खोजने के लिए अपने विलास-वैभव को छोड़कर दुःख का कँटीला रास्ता पकड़ ले, स्त्री-पुत्र को बिलखते छोड़कर स्वेच्छापूर्वक जङ्गलों की ख़ाक छाने—ये हमारे कल्पना में आ सकनेवाली बातें नहीं हैं; क्योंकि हम नित्य ही अपाहिजों को देखते, दुखियों की पुकार सुनते, बीमारों को कराहते पाते और उनकी करुण पुकार को इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं। पर हम में और महापुरुषों में—युग-निर्माण करनेवालों में—यही तो अंतर है कि जो हम नहीं देख सकते उसे भी वे देख सकते हैं, और जो हम नहीं कर सकते वह भी वे कर सकते हैं।

आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले की बात है। कपिलवस्तु के राजमार्ग पर एक रथ चला जा रहा है और रथी कुछ हक्काबक्का-सा इधर-उधर ताक रहा है। चारों ओर सन्नाटा है, सिवा इसके कि रथ के चलने की आवाज़ आ रही हो, जिसके कि अभ्यस्त रथी और सारथी दोनों ही हैं। अकस्मात् किसी ओर से एक कराहने की आवाज़ आई और रथी बोल उठा—"सारथी, रथ रोक दो! देखो, यह कौन कराह रहा है!"

रथ रुके-रुके कि सामने ही पड़ा एक व्यक्ति, जिसके अंग-प्रत्यंग में पीड़ा हो रही थी, बुरी तरह तड़पते दिखाई दिया। रथी तुरन्त ही रथ पर से कूद पड़ा और उस बीमार आदमी के पास जा खड़ा हुआ। वह उसे बड़े ग़ौर से देखने लगा और उसके मन में एक विचार उठा—'अरे, यह आदमी किस कष्ट में है? क्यों यह कराह रहा है? मैं तो नहीं कराहता, मेरे भी तो हाथ-पैर इसी आदमी की तरह हैं!' और उसके मन में इन प्रश्नों और शंकाओं का समाधान ढूँढ़ने की एक आकुल उत्कंठा जग उठी। वह उदास मन से आकर रथ में बैठ गया। पीछे-पीछे सारथी भी आकर अपनी जगह पर बैठ गया, और रह-रहकर वह रथी की ओर देखने लगा, मानो आज्ञा की राह देख रहा हो कि रथ हाँके या न हाँके और हाँके तो किधर हाँके! रथी के मन में एक बेचैनी होने लगी। वह बार-बार सोचता था कि आख़िर आदमी कराहे क्यों? क्यों वह इतना परवश है कि इस कराहने पर उसका काबू नहीं है?

रथी सारथी की ओर मुड़ा—"सारथी, यह आदमी हमारी-तुम्हारी तरह क्यों नहीं बोलता है? इसकी आँखों में क्या हो गया है कि वह हम लोगों की तरह देखता नहीं? यह अन्तर क्यों?"

"वह बीमार है, राजकुमार।"

"बीमारी क्या वस्तु होती है, सारथी?

"उसके शरीर की रचना जिन अवयवों से हुई है, उनमें कुछ अव्यवस्था पैदा हो गई है, कुमार! इसी को बीमारी कहते हैं।"

रथी के शरीर में एक कँपकँपी-सी दौड़ गई। वह एकाएक बोल उठा—"तो क्या मैं भी इसी तरह बीमार पड़ सकता हूँ?"

"इस पर किसी का क़ाबू नहीं है, प्रभु।"

रथी ने रथ को वापस करने की आज्ञा दी। लगातार वह बेचैनी के साथ सोच रहा था कि आख़िर इस जीवन

का उपयोग ही क्या, जिसमें इतनी परवशता, इतनी लाचारी भरी पड़ी है ? एक राजा है, एक भिखारी है, एक स्वस्थ है, एक बीमार है ! और इन सब दुःखों के निराकरण का कोई साधन मनुष्य के हाथ में नहीं है !

युवावस्था के आगमन तक भी, राजमहल या रनवास के वैभव और आराम को छोड़कर, बाहर की दुनिया में कैसा सुख-दुःख है इसकी हवा भी जिसे न लगी हो वह बार-बार एक-पर-एक इसी तरह की घटनायें देखने लगा और उसके विचारों में क्रान्ति की एक आँधी उठ खड़ी हुई। उसके मन में अपने चारों ओर के प्रति विद्रोह का एक प्रबल भाव जाग उठा। वह यह भी देखने लगा कि उसकी चिन्ता को बदल देने को और उसकी विचारधारा की गति दूसरी दिशा में मोड़ देने को उसके स्वजनों ने लक्ष्मी की सारी शक्ति लगा रक्खी है। और यह देखकर उसके मन का विद्रोह और भी प्रबल हो उठा। वह अब कोई भी बन्धन मानने को तैयार नहीं था। उसके मन में एक दृढ़ता आ गई। इन सब अनिवार्य कहलानेवाले दुःखों का निवारण अवश्य होना चाहिए। पर तब मन में यह भी विचार उठता था कि—'कैसे ?' पर इस शंका को उसकी दृढ़ता मानने को तैयार नहीं थी। उसकी तो पुकार थी कि चाहे जैसे भी हो, मानव के उद्धार और सुख की दवा खोजना आवश्यक है। यह अब उसके लिए असह्य था कि मनुष्य इसी तरह परवशता में पैदा होता रहे और मरता-जीता रहे। ऐसे जन्म और जीवन से लाभ ही क्या ?

और इसी तरह के अंतर्द्वन्द्व के फलस्वरूप एक दिन रात को उसका विद्रोह इतना प्रबल हो उठा कि उसने सब-कुछ छोड़ देने का कठोर निश्चय कर लिया। सोते से वह उठ बैठा। जी में एक अजीब कड़वाहट-सी पैदा होने लगी। पास ही सरल भोले विश्वास को लिये सो

गौतम का महाभिनिष्क्रमण

मानव के कल्याण तथा सत्य की खोज के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने का इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही कोई दूसरा मिलेगा।

रही पत्नी और उसकी छाती से चिपटे हुए अबोध नन्हें शिशु का मायामय सुन्दर मुखड़ा उसके चित्त को रह-रहकर अपनी ओर खींच रहे थे। पर वह अंतिम निर्णय कर चुका था। अब वापस फिरने की गुंजाइश न थी। माया के पाश को उसने अपने आभूषणों या केश-पाशों ही की तरह काट फेंका। द्वार तक पहुँचते-पहुँचते ममता उसके जी में फिर दबकी-दबकी-सी उठने लगी। उसे मालूम हुआ मानो उसकी यशोधरा उसे पुकार रही है, उसका राहुल हाथ फैलाये उसकी ओर दौड़ा आ रहा है, और चलते-चलते वह ठिठक गया। मन की इस उथल-पुथल को वह सँभाल नहीं पाया और फिर शयन-कक्ष में वापस आ गया। किन्तु मन में फिर आँधी उठी—ना, ना, इस बंधन को तोड़ना ही होगा, वरना मनुष्य के दुःखों का निराकरण कैसे हो पायगा ? और मन की सारी शक्ति लगाकर एक झटके के साथ वह चल दिया।

उसे निर्वाण चाहिए, दरिद्रता, रोग और मृत्यु से छुटकारा चाहिए—और इसी को खोजने वह निकला। पर राजमहल छोड़ते ही उसके सामने यह प्रश्न विकराल रूप में उठ खड़ा हुआ कि आख़िर वह कहाँ खोजे यह निर्वाण ? कहाँ जाय उसकी तलाश में ? उसे याद आई तीर्थस्थानों की, बड़े-बड़े धर्मस्थानों की और अपने प्रश्नों के समाधान के लिए काशी, प्रयाग आदि सब-कुछ उसने छान डाला। पर उसके जी में विद्रोह की आग और भी अधिक प्रचण्ड हो उठी जब उसने देखा कि निर्वाण का मार्ग बताने का दावा लेकर खड़े इन देवस्थानों और धर्मस्थानों में बलि की होड़ चल रही है, और दुराचार का बाज़ार गर्म है ! उसने देखा कि पुरातन वैदिक धर्म अपने उच्च आदर्शों से बहुत नीचे गिर चुका है। पुरोहितशाही ने तरह-तरह के पूजा-पाठ और पाखण्ड फैला रक्खे हैं। जातियों का बन्धन मानवता के विकास में बाधा बनकर अड़ रहा है। मंत्र-तंत्र और जादू-टोना आदि अन्ध विश्वास घर करते जा रहे हैं। इस प्रकार पुरोहित लोग मिथ्या धारणाओं और आडम्बर के सहारे जनता के दिमाग़ों पर शासन कर रहे हैं और मानव-कल्याण का मार्ग बताने की अपेक्षा वे राज्य-शक्ति प्राप्त करने की ओर अधिक प्रवृत्त हैं।

एशिया के सूर्य—महात्मा बुद्ध

और यह सब देखकर उसे बड़ी निराशा हुई। इन धर्मध्वजियों की दूकानों से दूर हटकर निर्जन वन के एकान्त की शरण लेने ही में उसे एकमात्र सही राह दिखाई दी। वर्षों तक उसने इसी तरह जंगलों की ख़ाक छानने के बाद तब एक दिन गया के समीप एक पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगा ली। कहते हैं कि वर्षों की तपस्या, कष्ट-सहन, उपवास और तरह-तरह की अन्य साधनाओं के द्वारा जो वस्तु नहीं प्राप्त हुई थी वही थोड़े दिनों की उस समाधि से सिद्ध हो गई। उसे प्रकाश मिल गया, बोध हुआ, बुद्धत्व की प्राप्ति हुई और उसी दिन से कपिलवस्तु का वह राजकुमार संसार में 'बुद्ध' के नाम से प्रख्यात हो गया। जिस वृक्ष के नीचे उसे 'बोध' हुआ था, वह भी संसार में 'बोधि वृक्ष' के नाम से अमर हो गया।

अब इस खोजी को, जो एक दिन दुःखों का निराकरण और सत्य ढूँढ़ने निकला था, अन्य ऐसे खोजियों की आवश्यकता हुई, जो उसकी खोज और ज्ञान से लाभ उठा सकें। वह सोचने लगा कि किस प्रकार वह

अपना प्राप्त ज्ञान संसार में फैलाए। इसी समय अचानक उसे याद आई उन पाँच साथियों की जो कि उसका साथ छोड़कर इसलिए चलते बने थे कि उनका विश्वास शरीर को उपवास आदि द्वारा व्यर्थ कष्ट देकर कठोर तप करने की प्रणाली से उठ गया था। उसे उन साथियों की याद करके उनकी बुद्धि और समझ पर तरस आई और उनकी खोज में वह निकल पड़ा।

बुद्धत्व-प्राप्त वह संन्यासी राजकुमार जगह-जगह घूमते-फिरते बनारस पहुँचा, इसिपत्तन (ऋषिपत्तन) या वर्तमान सारनाथ के मृगवन में उक्त पाँचों साथी निवास कर रहे थे। उन पाँचों संन्यासियों ने दूर से आते देखते ही आपस में सलाह करनी शुरू की। कोई कहता—'देखो मित्र, वही पथभ्रष्ट संन्यासी गौतम आ रहा है, जो अपनी आदतों से विवश होने के कारण तप से च्युत हो गया था! जिसने सुजाता-नामक स्त्री के हाथ का दिया भोजन ग्रहण कर लिया था, और तप तथा कठोरता का जीवन छोड़कर सुख के जीवन की ओर जो प्रवृत्त हो गया था।' दूसरा कहता—'हाँ, हाँ, वही है! इधर ही आ रहा है। आओ हम लोग मुँह फेर लें। पर ज्योंही वह बुद्धत्व-प्राप्त संन्यासी पास आया, सबके पूर्व निश्चय बदल गए। किसी ने उसका कमण्डलु लेकर एक ओर सँभालकर रक्खा, तो किसी ने आसन बिछाया। कोई पैर धोने को पानी लाने दौड़ा तो कोई खड़ाऊँ लाने गया। इस तरह स्वागत के बाद जब वह संन्यासी अपने लिए बिछाये गए आसन पर बैठा तब उक्त पाँचों संन्यासियों ने उससे बात करने के लिए मुँह खोला। वे उसे 'मित्र' कहकर संबोधित करने लगे।

बुद्ध ने कहा—'संन्यासियो, तथागत को उसके नाम से अथवा 'मित्र' कहकर मत पुकारो। वह तुम्हें शिक्षा देगा, धर्म का उपदेश करेगा। अगर तुम उसकी बातों पर ध्यान दोगे तो दीर्घजीवी होवोगे, अपने आपको पहचान सकोगे, जीवन का रहस्य जान सकोगे।'

वे बार-बार शंका करने लगे। पर अन्त में उनकी सब शंकाओं का समाधान हो गया, और उन लोगों ने शिक्षा ग्रहण करना शुरू कर दिया। प्रबुद्ध संन्यासी बोले—जिन्होंने संसार को त्याग दिया है, उन्हें दो प्रकार की अति से बचना चाहिए। यह दोनों अति क्या हैं? एक तो है सुख और विलास में प्रवृत्त जीवन, जो मनुष्य को नीचे ले जानेवाला है। दूसरा, व्यर्थ के बलिदान का जीवन, जो कष्टप्रद और उपेक्षणीय है। संन्यासियो, इन दोनों अति के मार्ग को छोड़कर तथागत ने एक मध्यम मार्ग पाया है, जो बुद्धि, शान्ति, ज्ञान, सम्बोधि और निर्वाण का मार्ग है। यह मध्यम मार्ग क्या है? यह है अष्टाङ्गिक सन्मार्ग, अर्थात् सम्यक् दृष्टि, सत्सङ्कल्प, सद्वचन, सदाचरण, साधु-जीविकावलम्बन, आत्मसंयम, सत्विचार और सच्चिन्तन।

और यही शिक्षा अपने जीवन के शेष पैंतालिस वर्षों में कौशल से विदर्भ और राजगृह तक घूम-घूमकर वह देते रहे। शिक्षार्थियों और ज्ञान-पिपासुओं की भीड़ उनके पास लगने लगी। ख़बर फैलते देर न लगी कि एक नवीन संन्यासी समता का उपदेश करता है और कहता फिरता है कि ज्ञान प्राप्त करने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है। अभी तक मठ और राज्य ने ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार को एक वर्ग-विशेष तक सीमित कर रक्खा था, अतएव इस विद्रोही वाणी पर निम्न श्रेणी के लोग प्रसन्नता से नाच उठे।

इस नई आवाज़ को सुनकर पुरोहितों और मठाधीशों के कोप की आग भड़क उठी। राजों की भी भृकुटियाँ तन गईं और इस नवीन संन्यासी की राह में रोड़े अटकाने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र रचे गए। पर कोई सफल नहीं हुए। उन दिनों शिक्षा संस्कृत में होती थी, जिससे साधारण जनता लाभ नहीं उठा सकती थी। बुद्ध ने अपनी शिक्षा जनता की भाषा में देना प्रारंभ किया। अतएव इस धार्मिक प्रजातंत्र के सम्मुख एकतंत्र का पुराना क़िला जड़मूल से काँप गया और सभी विरोधी एक-एक करके आकर इस नवीन धर्म में दीक्षित होते गए।

अन्त में एक दिन राजा शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु का शृङ्गार होना शुरू हुआ। उनका प्रवासी पुत्र गौतम (राजकुमार सिद्धार्थ) बुद्धत्व प्राप्त कर लोक-शिक्षक के रूप में आज वापस आ रहा है। उसकी पत्नी यशोधरा—पिछले कितने वर्षों से पति की प्रतीक्षा के पथ पर आँखें बिछाये रहनेवाली यशोधरा—ख़ुशी और मान की भावना से आज भरी जा रही है। वह आए। पर सभी को नवीन धर्म में दीक्षित कर फिर चले गए।

इस तरह पैंतालिस वर्ष लगातार धर्म-प्रचार करते-करते एक दिन कुशीनगर (वर्तमान गोरखपुर ज़िले का 'कसया' नाम का क़स्बा) की राह में 'पावा' नाम के एक गाँव में अन्त में निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

अब तक उनके लाखों अनुयायी हो चुके थे। उनके भस्मावशेष आठ भागों में विभक्त किये गए। उन्हें गाड़कर उसके ऊपर आठ स्तूप बनाये गए। और इस तरह एक महान् जीवन, एक युगान्तरकारी व्यक्तित्व का अन्त हुआ।

उत्तरी ध्रुव की विजय

मनुष्य को सदैव ही कहानी सुनने का बड़ा चाव रहा है, और इन कहानियों में सबसे अधिक रोचक, शिक्षाप्रद और दिल दहलानेवाली कहानियाँ स्वयं उसी की इस कठोर यात्रा के मार्ग में पड़नेवाले समय-समय के ख़तरों तथा उस समय उसके द्वारा प्रदर्शित साहस, वीरता, उदारता, त्याग और बलिदान की कहानियाँ हैं। इस स्तंभ में वही अमर कथाएँ—मानव-जाति की आत्मकथा के पन्नों पर अमिट अक्षरों में लिखी हुई सच्ची घटनाएँ—चुन-चुनकर आपको सुनाई जा रही हैं।

पूरे छः फ़ीट लंबे डीलडौल और उन्नत विशाल मस्तक-वाला एक युवक संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) की राजधानी वाशिङ्गटन की कबाड़ियों की गली में स्थित एक किताबों की दूकान पर नई-पुरानी किताबों के पन्ने उलट रहा है। साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, जीवनियाँ—सभी कुछ पर उसकी आँखें गड़-सी जाती हैं। मानो उसकी निगाह में इन सबमें कोई विशेष अंतर नहीं है, उसके लिए इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ जाता कि वह किस किताब को उठा रहा और किसको हटा रहा है! दूकानवाला पास आता है। पूछता है—'किस विषय की पुस्तक आपको चाहिए?' पर कोई उत्तर उसे नहीं मिलता। वह कुछ अचरज-भरी निगाह से युवक की ओर देखता है—सोचता है, सनकी तो नहीं है! पर युवक का एक किताब को हटाकर दूसरी के पन्ने उलटना-पलटना ज्यों-का-त्यों जारी है!

यह बात भी नहीं है कि अभी वह इतनी कच्ची उम्र का हो कि छोकरों की तरह बिना किसी लक्ष्य के इधर-उधर भटकता और व्यर्थ की उलट-पुलट में समय गँवाता रहता हो। उन्तीस साल का हट्टा-कट्टा पूरा नौजवान—फिर बाक़ायदा संयुक्त राष्ट्र के नौ-सेना-विभाग की वरदी पहने हुए, और उस पर स्पष्ट रूप से इस बात को सूचित करने-वाला चमचमाता पदक या चिह्न लगाये हुए कि वह उक्त विभाग का एक इंजीनियर है! तब कौन इस बात की शंका करने की धृष्टता कर सकता है कि उसे कम-से-कम इस बात का भी ज्ञान नहीं है कि वह किस ओर जा रहा है।

किन्तु बात दर असल कुछ ऐसी ही थी कि युवावस्था के साहसपूर्ण भाव से प्रकाशित राबर्ट पेरी की इस ओजपूर्ण मुखमुद्रा की तह में रह-रहकर इस बात का भाव उठता रहता था कि आख़िर वह किधर की ओर जा रहा है? उसे अपना लक्ष्य ज़रा भी स्पष्ट नहीं था। केवल जीवन में धड़ाके का—संसार की आँखें चकाचौंध कर देनेवाला—कोई काम कर दिखाने की एक धुँधली-सी महत्त्वाकांक्षा भीतर-ही-भीतर रहकर उसे आगे की ओर ठेलती रहती थी, और मानो कहती रहती थी कि यदि तुम्हें अपने कार्य पर जुट पड़ना है, तो यही वक़्त है।

यह बात नहीं थी कि एक अस्पष्ट-सी आशा की डोर के सहारे रास्ता टटोलकर बढ़नेवाले इस नवयुवक को अपनी शक्तियों पर किसी प्रकार का अविश्वास रहा हो। अपने जन्म-स्थान की पहाड़ियों के कंकड़-पत्थरों की नित्य की छानबीन और छोटी-सी डोंगी में समीप की समुद्री खाड़ी की सैर ने बचपन ही में उसके मन में दृढ़ आत्मविश्वास की जड़ जमा दी थी। किन्तु वह भी उसी प्रांत और स्थान में पैदा हुआ था, जहाँ पचास वर्ष पूर्व उसके देश के राष्ट्रीय कवि लाङ्गफैलो ने वनों की सघन छाया में स्वप्नों की माला गूँथते हुए अपना बचपन बिताया था। अतएव उन पहाड़ियों और वृक्षों के प्रभाव से

वह भी नहीं बच पाया। वह भी स्वप्नों की जाल बुनने लगा। किसी ने कहा ही है कि किशोर अवस्था की आकांक्षाएँ और स्वप्न आँधी की तरह बलवती होते हैं। ये स्वप्न हमारे इस चरितनायक को भी अपने उस पहाड़ियों-से घिरे छोटे-से प्रदेश से दूर कहाँ-से-कहाँ उड़ा ले गये। और उसके बाद तो क्या स्कूल और कालेज में, और क्या नौ-सेना विभाग के साहसपूर्ण अनुभवों से पूर्ण नौकरी के दिनों में—सब कहीं उन स्वप्नों का ताँता बँधता ही गया और धीरे-धीरे ये स्वप्न महत्वाकांक्षा का रूप लेने लगे। नौ-सेना-विभाग की कुछ ही दिनों की नौकरी में उसने अपनी योग्यता की काफ़ी धाक जमा दी। जंगी जहाज़ों के लिए एक घाट बन रहा था। उस काम का एक लाख रुपये में ठेका लेने पर भी एक ठेकेदार उसे अधूरा ही छोड़कर भाग गया था। राबर्ट पेरी ने उसे अठारह हज़ार रुपये ही में बनवा दिया। किन्तु यह सब-कुछ होने पर भी उसको अपने मन में चैन नहीं था। वास्तव में हमारे चरितनायक की दशा उस व्यक्ति की तरह थी, जिसके मन में भारी आकांक्षाएँ हों, किन्तु जिसे यह न सूझ पड़े कि किस ओर उन्हें वह प्रेरित करे। यही कारण है कि ऊपर हम उसे कबाड़ियों की दूकानों पर अनमने भाव से किताबों के पन्ने उलटते देख चुके हैं।

आख़िर एक मैली-सी पुस्तिका के शीर्षक पर पेरी की आँखें गड़ गईं। यह एक साहसी अन्वेषक के सुदूर उत्तर की साहसपूर्ण यात्राओं की कहानी थी। शीर्षक था "ग्रीनलैंड (हरित द्वीप) का भीतरी हिम-प्रदेश।" यह कोई विशेष उत्तेजनापूर्ण शीर्षक तो नहीं था, किन्तु फिर भी इस पर नज़र पड़ते ही पेरी का दिल बाँसों उछलने लगा। उसने वह पुस्तिका ख़रीद ली। इसमें वर्णित सुदूर हिम-प्रदेश ने केवल इसी एक बात पर उसका ध्यान ज़ोरों से अपनी ओर खींच लिया कि अब भी पृथ्वी की सतह पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से भी अधिक लंबा-चौड़ा एक विशाल भू-भाग विद्यमान है, जहाँ अभी तक किसी गौर वर्ण के मनुष्य का क़दम भी नहीं पड़ा है!

उसकी आकांक्षा भड़क उठी। वाशिङ्गटन नगर के बड़े-से-बड़े पुस्तकालयों की अलमारियाँ उसने छान डालीं और रात-दिन उत्तरी ध्रुवप्रदेश की खोज तथा उत्तर-पश्चिम की राह से एशिया को जाने का रास्ता निकालने की सदियों पुरानी समस्या पर वह मसाला ढूँढने लगा। किन्तु इन सब किताबों से उसे जो मसाला मिला वह कोई बहुत आशाप्रद नहीं था। एक के बाद एक साहसी अन्वेषक पिछले तीन सौ वर्षों से इस प्रयत्न में उत्तर की बर्फ़ीली दीवारों से हार खाकर अपना बलिदान चढ़ा चुके थे। १८४५ में सर जान फ्रैंकलिन दो ब्रिटिश जंगी जहाज़ों को लेकर पहले-पहल ध्रुवप्रदेश की ओर गये थे। पर हिम-पर्वतों ने इन दोनों जहाज़ों सहित फ्रैंकलिन और उनके दल को निगल लिया और इस बात का पता कहीं चौदह साल बाद लगा, जब एक दूसरा दल ध्रुव की खोज में वहाँ पहुँचा। इसी तरह क्रमशः कई साहसी अन्वेषक गये और हार मानकर लौट आए या वहीं ख़त्म हो गये। ये बातें किसी की भी हिम्मत पस्त कर सकती थीं। लेकिन पेरी को तो निराशा के बदले इनसे उत्तेजना ही मिली।

उसकी कल्पना उत्तेजित हो उठी। यदि ग्रीनलैंड का भीतरी भाग अभी सचमुच ही खोजने को बाक़ी है तो क्यों न वहाँ जाकर अपने साहस और भाग्य की परीक्षा की जाय? संभव है, यह ठीक उत्तरी ध्रुव ही तक फैला हो।

बस, उसने फ़ौरन ही नौ-विभाग को छः महीने की छुट्टी की दरख़्वास्त लिख भेजा। अधिकारी गण राज़ी न थे, पर उसकी दृढ़ता के आगे उनकी एक भी न चली। आख़िरकार ह्वेल मछली का शिकार करनेवाले एक जहाज़ ने १८८६ के जून मास में उसे ग्रीनलैंड के पूर्वी किनारे पर डिस्को नामक द्वीप में जा उतारा। वहाँ डैनिश लोगों की बस्ती है। पेरी ने किसी तरह डैनिश जाति के एक नौजवान को अपने साथ चलने के लिए राज़ी कर लिया।

दस घंटे की कठोर यात्रा के बाद ये लोग जहाँ बर्फ़ शुरू होती थी, वहाँ पहुँचे। अब बदन को कँपा देनेवाली ठंडी हवाओं, आँखों को चौंधिया देनेवाली सूर्य की रोशनी, घने कुहरे, और बर्फ़ की बौछार का सामना होने लगा। इस तरह दिन-पर-दिन उस बर्फ़ की मरुभूमि को पार करते और चढ़ाई करते हुए ७५०० फ़ीट की ऊँचाई पर ये लोग पहुँचे। पर यहाँ हिसाब लगाने पर पेरी को मालूम हुआ कि वह अपने रवाना होने की जगह से १२० मील आ पहुँचा है और अब उसके पास केवल छः दिन का खाना बचा है! हिसाब के ये आँकड़े साधारण आँकड़े न थे। अब और आगे बढ़ने का अर्थ था भूखों मरना! तो क्या उसे वापस लौटना पड़ेगा? क्या इतने दूर तक आने का यह परिश्रम, यह कष्ट, व्यर्थ ही होगा? श्वेत-नील झाँईवाले ध्रुवप्रदेश की ओर सतृष्ण आँखें गड़ाये पेरी चुपचाप खड़ा था और साथ का डैनिश नौजवान एक अचरज-भरी दृष्टि से उसकी ओर निहार रहा था।

पेरी की ध्रुवप्रदेश की भिन्न-भिन्न यात्राओं के मार्गों का मानचित्र

इस नक़शे में राबर्ट पेरी को १८८६ की ध्रुव-प्रदेश की प्रथम चढ़ाई से लेकर १९०९ में अंतिम विजय तक के विभिन्न जाने और आने के मार्ग कटावदार रेखा द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। जिस स्थान पर वह जिस सन् में पहुँचा था, अथवा जिस सन् में जिस मार्ग से गया था, इसका भी उल्लेख आपको इस नक़शे में स्थान-स्थान पर लिखे गये सन् के अंकों से मिलेगा।

(बाईं ओर के चित्र में) उत्तरी ध्रुव का विजेता, राबर्ट पेरी।

उत्तरी ध्रुव - अप्रैल - ६, १९०९
मील
१०० २०० ३०० ४००
ग्रीन लैंड सागर
अप्रैल १९०६
१९००
१९०२
कोलंबिया अन्तरीप
ग्रांटलैंड
ग्रीन लैंड
स्मिथ साउण्ड
बेफिन की खाड़ी
१९०५-६ और १९०८-९
१८८६
बेफिन लैंड
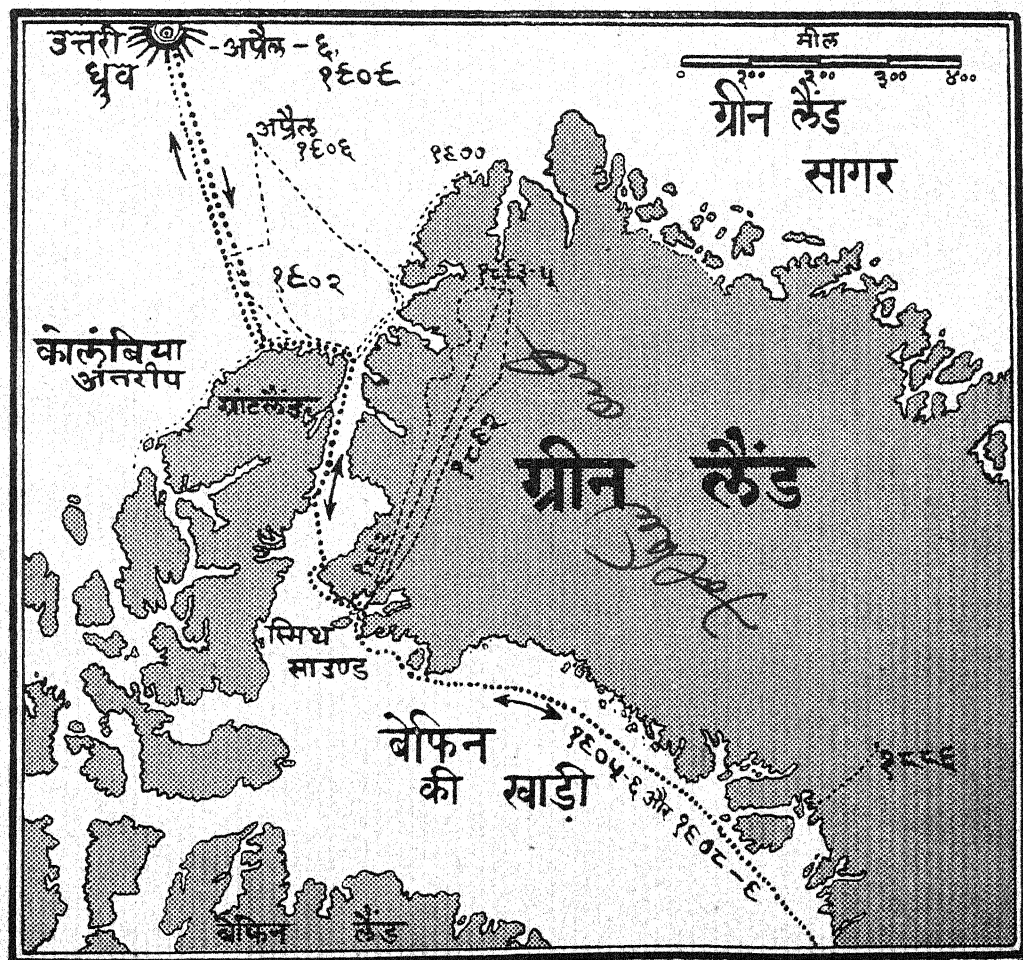
इस तरह अपने पूर्वगामी अन्वेषकों की तरह इसका भी यह पहला प्रयास विफल ही रहा।

१८९१ में न्यूयार्क से फिर एक दल उत्तरी बर्फ़ीले प्रदेश की खोज के लिए रवाना हुआ। पर लोगों ने इस पर कोई ख़ास ध्यान न दिया। हाँ, एक बात कुछ लोगों के लिए ज़रूर खटकनेवाली थी। वह यह कि इस दल के साथ पेरी की नवविवाहिता स्त्री जोज़फ़ाइन भी थी।

मेल्वील नामक खाड़ी में जाकर जहाज़ सामने बर्फ़ आने के कारण रुक गया। पर पेरी ने डायनामाइट से बर्फ़ तोड़-कर रास्ता बना लिया। अब जहाज़ आगे चला। एकाएक बर्फ़ की चट्टान का एक टुकड़ा उछलकर पेरी के पैर में लगा और टँखने की ऊपर की उसकी दोनों हड्डियाँ टूट गईं। वह लँगड़ा हो गया, पर उसका साहस नहीं टूट पाया। जहाज़ किनारे लगाया गया। तट पर बसनेवाले 'सील' के शिकारी 'एस्किमो' लोगों से जान-पहचान बढ़ाई गई। जाड़ा काटने के लिए झोंपड़े तैयार किए गए। और ध्रुव-प्रदेश की लंबी 'छः महीने की रात' काटकर फिर धावा बोल दिया गया।

पेरी ने केवल दो आदमी और सोलह कुत्तों को अपने साथ लिया। फिर वही बदन को काटनेवाली हवा, बर्फ़ की वर्षा, कुहरे का अंधकार, सूर्य की किरणों की चका-चौंध! पर अब वह हार माननेवाला न था। हफ़्तों बीत गए। अंत में एक ऊँचे पठार के कगार पर जाकर वे रुक गए। और एक अपूर्व दृश्य मानों नीचे से उठ-कर उनके सामने फैल गया। मीलों लंबा बर्फ़ का धवल मैदान! और उसके बीच, आज तक मनुष्य की आँखें जिन पर न पड़ी थीं, वे हरित झाईंवाले जल के असंख्य नाले, नदियाँ, सरोवर और झरने!! साथ के कुत्ते तक ख़ुशी से मानो पागल हो उठे।

१८९२ की चौथी जुलाई को वह ग्रीनलैंड को लाँघकर उत्तरी महासागर की बर्फ़ीली चादर के किनारे जा खड़ा हुआ। किंतु अब भी ध्रुव कितना अधिक दूर था, कितना अगम्य!

विवश हो उसे इस बार भी बर्फ़ की शिलाओं से हार मानना पड़ी। न्यूयार्क में वापस आने पर नौ-विभाग के मंत्री ने कहा—"बस करो, पेरी! अब फिर से इस बेवक़ूफ़ी को न दोहराना। अपनी नौकरी का काम सँभालो। बोलो, कहाँ तुम्हारी ड्यूटी बाँधी जाय?"

उत्तर मिला—"उत्तरी ध्रुवप्रदेश में, श्रीमान्!"

और जून, १८९३, में वह फिर चल दिया। इस बार भी जोज़फ़िन साथ थी। वहीं उसका पहला पुत्र भी पैदा हुआ! किंतु फिर वही आपदाएँ, फिर वही विफलता!

१८९३, १८९५, १९००, १९०२, १९०५—साल पर साल बीतते गए और एक-एक इंच करके वह अपनी इस कठोर यात्रा पर आगे बढ़ता गया। बार-बार वह रवाना होता, फिर वापस न्यूयार्क आता। फिर से आलोचकों के तानें सुनकर उसका दिल फटने-सा लगता और अपने साथी एस्किमों और कुत्तों को लेकर वह फिर से बार-बार उस बर्फ़ की चादर को पार करने के लिए दौड़ने लगता था। पर अब उसकी भी आशा की डोर टूटने लगी, साहस का बाँध खिसकता नज़र आया। पर विधाता ने तो उसकी मस्तिष्क की रेखाओं पर 'ध्रुव का विजेता' ये शब्द अंकित कर रक्खे थे। १९०८ के जून में वह अपने देश के राष्ट्रपति के आशीर्वाद के साथ फिर रवाना हुआ। इस बार ध्रुव निश्चय किया कि बिना लक्ष्य तक पहुँचे वापस न आऊँगा। छः हफ़्तों बाद स्टीमर "रूज़वेल्ट" बर्फ़ की शिलाओं के बीच रास्ता काटते हुए ध्रुव महासागर के तट पर जाकर रुक गया। 'छः महीने की रात' बीती, और फरवरी २२, १९०९, को जब थर्मामीटर का पारा शून्य से ३१ अंश नीचे था, पेरी और उसके साथी ने अपनी अंतिम चढ़ाई शुरू की। वही बर्फ़ीली चादर फिर सामने थी। किन्तु २० वर्ष का अनुभव भी तो साथ था। अब वह आँधी, वह बौछार, वह अनशन मामूली बातें थीं।

थर्मामीटर का पारा शून्य से ६० अंश नीचे आ पहुँचा है। फिर भी ध्रुव अभी १३३ मील दूर है। १३३ मील! ज़रा सोचिये, एक शहर से दूसरे शहर तक रेल या मोटर की सड़क के १३३ मील नहीं—ध्रुवप्रदेश के कुहरे, आँधी, बर्फ़ के १३३ मील! पर उधर थर्मामीटर का पारा ज्यों-ज्यों क्रमशः नीचे-से-नीचे उतरता जा रहा है, पेरी के दिल की आग भड़ककर तेज़ होती जा रही है। अब वह लक्ष्य से सिर्फ़ ३५ मील की दूरी पर है। पर ज्यों-ज्यों ध्रुव समीप आता जाता है, हाथ-पैर ढीले पड़ते जा रहे हैं।

अंत में अप्रैल ७ का वह प्रातःकाल, और पृथ्वी की छत—उत्तरी ध्रुव—का वह अद्भुत् दृश्य! चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़—कुहरा और अंधकार! पेरी को अपने पर विश्वास नहीं हो रहा था। क्या इसी के लिए सदियों से देश-देश के लोग अपनी बलि चढ़ाते रहे?

बर्फ़ की शिलाओं की एक टेकड़ी-सी बनाकर उस पर संयुक्त राष्ट्र का झंडा उसने खड़ा किया और एक अतृप्त दृष्टि से उसे निहारते हुए वापस दक्षिण का रास्ता पकड़ा।

अपने इतिहास के आरंभिक काल ही से मनुष्य अपने आस-पास की इस अद्‌भुत् दुनिया के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करता आया है। उसकी यह जिज्ञासा-वृत्ति ही उसे आगे बढ़ने की ओर प्रेरित करती है। हज़ारों प्रश्न नित्य ही हमारे मन में उठते हैं और उनका समाधान सहज ही में हम नहीं कर पाते। इस विभाग में क्रमशः उन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया जायगा।

हमारे शरीर में हड्डियाँ क्यों हैं?

यदि हम एक ऐसे आदमी की कल्पना कर सकें, जिसके एक भी हड्डी न हो और जो केवल मांस का बना हो तो उस आदमी की क्या दशा होगी? वह पृथ्वी पर एक मांस के लोथड़े की तरह निर्जीव पड़ा रहेगा, क्योंकि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बचाकर उसके मांस के शरीर को खड़ी रखनेवाली चीज़ केवल हड्डी ही है। इस पृथ्वी के खिंचाव से रक्षा करने के अलावा हमारी हड्डियों का ढाँचा हमारे शरीर की एक ख़ास आकृति भी बनाता है।

क्या सूर्य की तरह पृथ्वी का भी अपना प्रकाश है?

इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वी का भी अपना प्रकाश कभी था, पर अब नहीं है। सृष्टि के क्रमिक विकास के साथ पृथ्वी भी पहले सूर्य की तरह गर्म और दाहक थी, पर धीरे-धीरे ठंडी हो गई है। अतः उसका अपना प्रकाश समाप्त हो गया है। अब वह केवल सूर्य के प्रकाश को ही प्रत्यालोकित करती रहती है।

हमारे शरीर में कितना रक्त है?

आदमी के शरीर में उसके शरीर के वज़न का बारहवाँ अंश या तेरहवाँ अंश रक्त का है। इस रक्त का एक चौथाई भाग कलेजे में और तीन चौथाई शेष शरीर में होता है। कलेजे की बाँयीं ओर की नस से होकर बहनेवाले ख़ून की रफ़्तार एक मिनट में तैंतिस गज़ होती है, पर सबसे छोटी नसों में ख़ून की गति इसका एक हज़ारहवाँ भाग मात्र ही रह जाती है।

तार के खंभों से 'सन-सन' शब्द क्यों निकलता है?

चूँकि खंभों के बीच तार पर हवा का दबाव निरन्तर पड़ा करता है और तारों से स्वभावतः एक कम्पन-ध्वनि भी निकला करती है, अतः हवा के दबाव और स्वाभाविक कम्पन से पैदा हुई वह ध्वनि आकाश में उन पोपले खंभों में प्रतिध्वनित होती रहती है, जिससे मालूम होता है कि खंभों से शब्द निकल रहा है। बहुत से लोग इन खंभों से निकलनेवाली ध्वनि के आधार पर मौसम का भविष्य बतला सकने का दावा करते हैं। कहते हैं कि ऊँची चीत्कारपूर्ण ध्वनि से ख़ूब गहरी वर्षा होने की संभावना का बोध होता है।

आकाश नीला क्यों है?

सुनने में यह कुछ अजीब-सा ज़रूर लगेगा, पर आकाश को यह नीला रंग सूर्य से मिला है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि इतने प्रकाशमान सूर्य में नीला रंग कहाँ से आ गया! बात असल यह है कि सूर्य का प्रकाश विभिन्न रंगों की किरणों का समूह है जो सब मिलकर उज्ज्वल प्रकाश उत्पन्न करते हैं, और हवा में धूल के अगणित कण सदा ही उड़ते रहते हैं जो सूर्य की किरणों से टकराकर नीले रंग को छोड़कर और सभी रंगों को अपने में घुला लेते हैं। जो नीला रंग धूल द्वारा नहीं घुल पाता, वही शून्य आकाश का रंग हो जाता है। इसी से आकाश नीला दीखता है।

रात को अँधेरा क्यों होता है?

अगर तुम अपने एक हाथ में एक गेंद लो और दूसरे हाथ में एक दीपक, तो देखोगे कि गेंद के जिस भाग की ओर प्रकाश है उस भाग में उजाला है और शेष की ओर अँधेरा है। इसी तरह तुम्हारी यह पृथ्वी-रूपी गेंद सूर्य-रूपी दीपक के चारों ओर घूमती रहती है और जिस तरफ़ सूर्य रहता है उस तरफ़ उजाला और बाक़ी ओर अँधेरा रहता है। हम जिस स्थान पर रहते हैं वह इस बड़े गेंद पर किसी एक निशान की तरह है और जब सूर्य इस पृथ्वी-रूपी गेंद के दूसरी ओर प्रकाश देता है तो हमारे हिस्से में अँधेरा हो जाता है और उसे ही हम रात कहते हैं।

चन्द्रमा में धब्बे क्यों दिखाई देते हैं ?

अगर तुमने कभी चन्द्रमा की ओर ग़ौर से देखा होगा, तो तुम्हें उसके ऊपर काले-काले धब्बे भी ज़रूर दिखलाई दिये होंगे। भला इतने प्रकाशमान नक्षत्र पर यह दाग़ क्यों? विज्ञान के पंडितों का कहना है कि चन्द्रमा भी इस पृथ्वी की तरह मैदान, घाटियों और पहाड़ों से भरा एक लोक है। दूरबीन से देखने पर इन सबके चिन्ह साफ़-साफ़ दिखलाई पड़ते हैं। और यह जो काले-काले धब्बे दीखते हैं उनमें से अधिकांश बड़े-बड़े ज्वालामुखियों के मुहानों के चिन्ह हैं, जो बहुत ही विस्तृत और बड़े हैं। इनमें से कई एक तो बीसियों मील के घेरे में हैं। इसके अलावा वहाँ जो पहाड़ हैं, उनकी छाया भी इन धब्बों में शामिल है। दूरबीन से देखने पर इन पहाड़ों की छाया और रोशनी के मिलने की जगहें साफ़-साफ़ दिखलाई पड़ती हैं।

जाड़े में मुँह से भाप क्यों निकलती है ?

हमारे शरीर के अन्दर पानी का अंश काफ़ी मात्रा में है, जो साँस द्वारा भाप बनकर बाहर निकला करता है। इसे गर्मियों में हम नहीं देख पाते, पर जाड़ों में देख पाते हैं। इसका कारण यह है कि गर्मियों में बाहर की हवा गर्म रहती है, इसलिए हमारे मुँह से निकलनेवाली भाप भी उसमें आसानी से मिल जाती है और उसमें कोई विकार नहीं पैदा होता। जाड़ों में चूँकि बाहर की हवा ठंढी रहती है इसलिए हमारे मुँह से जो भाप निकलती है वह उससे टकराकर घनी हो जाती है। इसी कारण जिस भाप को हम गर्मी में नहीं देख पाते, उसे जाड़े में देख सकते हैं।

क्या आकाश का कहीं अंत भी है ?

ज्योतिष-विज्ञान के जानकार लोगों ने कई तारों की जो दूरी बतलाई है उसी से अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि आकाश अनंत है। बहुतेरे तारे जो दिखलाई देते हैं, उन्हीं की दूरी इतनी बतलाई गई है कि उन्हें मीलों की संख्या में व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं। उनकी दूरी बतलाने के लिए 'प्रकाश-वर्ष' का प्रयोग किया जाता है, जिसका मतलब होता है, उतनी दूरी जितनी कि प्रकाश वर्ष भर में तै करता है। इस पर भी आकाश का अन्त नहीं पाया जा सका है। यदि मनुष्य जितनी बड़ी दूरबीनें अब तक बना सका है, उनकी लाख गुना बड़ी दूरबीनें भी बना सके और उन अगणित तारागणों को उनके द्वारा देख सके, जिनकी दूरी हमारी कल्पना से भी परे है, तब भी शायद आकाश के छोर से वह उतना ही दूर रहेगा, जितना कि आज है, क्योंकि शून्य मनुष्य के माप की हर व्यवस्था से परे है।

तेल पानी की सतह पर क्यों तैरता है ?

सुनने में यह बात अजीब-सी मालूम होती है कि एक द्रव पदार्थ दूसरे द्रव पदार्थ पर तैर सके। पर कोई चीज़ पानी की सतह पर तैरती है या नहीं, यह एक या दो बातों पर निर्भर है। पहली बात तो यह है कि वह चीज़ पानी में घुल जायगी या नहीं? दूसरे, पानी से उसका वज़न कम है या ज़्यादा। अगर नमक का एक टुकड़ा पानी में छोड़ दिया जाय तो वह फ़ौरन् ग़ायब हो जायगा, क्योंकि नमक पानी में घुल जाता है। अगर हम लकड़ी का एक हल्का टुकड़ा पानी में डालें तो वह तैरता है क्योंकि वह पानी में घुल नहीं सकता और लकड़ी का तौल भी पानी के तौल से हल्का है। यही बात तेल के साथ भी है। तेल और चर्बी पानी में घुलते नहीं और चूँकि तेल उतने पानी से हल्का है जितने पानी में वह तैरता है, इसलिए उसका तैरना संभव होता है।

रेल में ख़तरे की ज़ंज़ीर कैसे काम करती है ?

रेल के हर डिब्बे में ऊपर एक ज़ंज़ीर लगी होती है जो ख़तरे की ज़ंज़ीर कही जाती है और जिसका उपयोग कोई संकट उपस्थित होने पर किया जाता है। उसे खींच देने पर ट्रेन खड़ी हो जाती है, इतना तो लगभग सभी जानते हैं, जिन्हें रेल में सफ़र करने का कभी भी मौक़ा मिला है। पर ऐसा किस तरह होता है और क्योंकर होता है, इसे बहुत कम लोग जानते होंगे। जानने की कोशिश भी शायद ही कोई करता हो। यह होता यों है कि जब ज़ंज़ीर खींची जाती है तो उससे संबंधित एक यंत्र ट्रेन को धीमी कर देता है, जिससे ड्राइवर समझ जाता है कि कहीं-न-कहीं कुछ ख़राबी है। इंजिन में लगा हुआ एक पुर्ज़ा उसे इसकी चेतावनी देता है। अर्थात् ज़ंज़ीर खींचने से एक प्रकार का ब्रेक-सा लगता और साथ ही गाड़ी के दोनों सिरों के डिब्बों में एक प्रकार का चेतावनी का इशारा भी मिलता है। अगर ज़ंज़ीर ऐसे समय में खींची जाय जब कि ड्राइवर ब्रेक का उपयोग कर रहा हो तो उसका कोई असर न होगा।